महामात्य माधव

☆

[विजयनगर उपन्यासमाला]

महामात्य माधव

गुणवंतराय आचार्य

अनुवादक

परदेशी

वोरा एन्ड कंपनी, पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड,
३, राउन्ड बिल्डिंग, कालबादेवी रोड, बम्बई २.

प्रथम संस्करण,
१९६२

मूल्य : ५.००

प्रकाशक :

के. के. वोरा,
वोरा एण्ड कम्पनी,
पब्लिशर्स प्रा० लि०,
३, राउण्ड बिल्डिंग,
बम्बई २.

मुद्रक :

अनंत जे. शाह,
लिपिका प्रेस,
कुर्ला रोड,
बम्बई ५९

इतिहास का रंगमंच

विक्रम-सम्वत् १३६३ और १३६६ में कृष्णा नदी के उस पार अलाउद्दीन खिलजी की सेनाएँ उतरीं। खिलजी ने परस्पर लड़ने-झगड़नेवाले और एक दूसरे को हराकर स्वयं सप्तसामन्तचक्रचूड़ामणि बनने के दिवास्वप्न देखनेवाले राजाओं के राज्यों को लूटा और उन पर अपना अधिकार स्थापित किया।

विक्रम सम्वत् १३७९ में तुरुष्कों के प्रयास फिर से तीव्र हुए, उग्र हुए और भीषण हुए। कृष्णानदी के दक्षिणी तट से कन्याकुमारी तक लूटमार, अग्निज्वाला और तलवार के ताण्डव दैनिक दृश्य बन गए और इस पथक-प्रान्तर पर घना गहरा धूम छा गया। इसके परदे के नीचे इतिहास के पृष्ठ धुँधले और अस्पष्ट बन गये!

यह गहरा अन्धकार पन्द्रह-बीस वर्ष तक छाया रहा। इस अवधि में घटित घटनाओं, प्रसंगों और युद्धों के विषय में जिस जिसने जो कुछ कहा, उल्लेख किया, वह प्रत्येक दूसरे कथाकार, इतिहासकार और उल्लेखकर्त्ता के विषय से विचित्र है।

इस अंधकार में हम भगवान कालमुख विद्याशंकर का हाथ थामकर धीरे धीरे प्रकाश की ओर अग्रसैर हुए।

अन्धकार और प्रकाश के मध्य विजयनगर का उदय-सन्ध्याकाल अर्थात् 'मदुराविजय।'

विक्रम सम्वत् १३६५ के लगभग मलिक काफूर ने दक्षिण पर आक्रमण कर मलाबार पर अपना अधिकार किया। वहाँ उसने जलालुद्दीन एहसान शाह नाम के तुर्क को अपना सूबेदार नियुक्त किया।

जलालुद्दीन एहसानशाह ने विक्रम सम्वत् १३६७-६८ में, पाण्ड्यों का राजनगर मदुरा फतह किया और उसे मलाबार की सूबेदारी का प्रमुख नगर बनाया। यह सूबेदार मदुरा के देवमंदिर श्रीरंगम् में ही रहने लगा!

विक्रम सम्वत् १३७३-७४ में दिल्ली में भयंकर अव्यवस्था उत्पन्न हुई। सुल्तान खिलजी और उसके वारिस विनष्ट हुए और दिल्ली की सल्तनत मलिक गाज़ी के हाथ में आई, जो उस फ़करुद्दीन का बाप था, जो बाद में मुहम्मद तुग़लक के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

दिल्ली की इस अव्यवस्था और अराजकता से लाभ उठाकर जलालुद्दीन एहसानशाह ने घोषित कर दिया कि अब वह आज़ाद है। उसने अपनी सूबेदारी को मदुरा की सल्तनत का नाम दिया और स्वयं मदुरा का पहला सुल्तान बना।

उसने अपनी सल्तनत में तुर्की किसान, तुर्की व्यापारी, और तुर्की प्रजाजन बसाए और हिन्दू किसानों, व्यापारियों और लोगों की ज़मीन-जायदाद, मालमत्ता छीनकर तुर्कों को दे दिया। मदुरा में बसनेवाले प्रत्येक तुर्क पुरुष और स्त्री के लिए सैनिक-शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। इस प्रकार उसने मदुरा में तुर्की सल्तनत की स्थायी स्थापना का प्रयास किया।

लेकिन बेईमानी और दगाबाजी का रास्ता हमेशा खतरे से खाली नहीं है। इसलिए मसल मशहूर हुई—"अगर तू धोखेबाजी से सुल्तान बन सकता है तो मैं क्यों नहीं बन सकता ?" इस प्रकार सुल्तानों की परम्परा शुरू हुई।

तास नाम के एक अमीर ने, जिसका दूसरा कोई उपनाम नहीं मिलता, जलालुद्दीन एहसानशाह को मार डाला और खुद सुलतान बन गया।

सुल्तान तास को एक अमीर ने अपनी बहन की खूबसूरती के फन्दे में फँसा लिया और ऐश और मोहब्बत की कई रंगीन रातों के बाद एक रात बहन के उस भाई ने सुल्तान का सिर काट कर किले की दीवार पर लटका दिया और गयासुद्दीन के नाम से खुतबा पढ़वाया।

इस गयासुद्दीन को उसके भानजे नासिरुद्दीन ने मारा।

इसी नासिरुद्दीन को भालारी बिबोया ने मारा, क्योंकि उसने होयसलराज, राजसंन्यासी वीर बल्लालदेव को धोखे से मारकर, उनका सिर किले की दीवार पर टाँग दिया था। इसलिए बिबोया ने वीर बल्लालदेव का बदला लिया।

नासिरुद्दीन के बाद उसका चाचा गयासुद्दीन दमगनी, कथाकाल में, मदुरा की सल्तनत का सुल्तान बना।

कथाकाल विक्रम-सम्वत् १४०२-३ के लगभग के है।

उन दिनों दिल्ली के तख़्त पर मुहम्मद तुग़लक बैठा हुआ था।

और देवगिरि उर्फ दौलताबाद में दिल्ली का सूबेदार शासन करता था।

यह राज्य शासन बहुत अव्यवस्थित था। मलिक और अमीर आपस में लड़ते थे और कभी कभी तो खुलेआम बगावतें होती थीं और खून और कत्ल रोज के कारनामे बन गए थे।

अतएव विजयनगर के साम्राज्य को कृष्णा नदी के उस पार से तत्काल भय नहीं था।

विजयनगर के 'भगवद् विरूपाक्षदेवसान्निध्यात् सकलवर्णाश्रमधर्ममंगलं परिपालयतु' महामंडलेश्वर के रूप में राय बुक्काराय थे।

बुक्काराय के छोटे भाई कुमार कम्पनराय टोंडाई मण्डल अर्थात् द्रविण प्रदेश के सूबेदार थे। उनका अमात्य आचार्य सायण और दण्डनायक गोपभट्टी था। उसकी राजधानी चन्द्रगुट्टी के दुर्ग में थी।

उसका एक भाई मुण्डाप्पा वनवासी हजारी जिले का सूबेदार था। उसकी राजधानी बदामी में थी। उसका अमात्य और दण्डनायक पण्डित मल्लिनाथ था।

पूर्व समुद्र का सामुराय सोवन्नानायक था।

श्रवणवेलगोला के वीर वणिकों के पृथ्वी श्रेष्ठी और विजयनगर साम्राज्य के पृथ्वी श्रेष्ठी के पद पर वायीजन श्रेष्ठी था। उसकी ओर से वीर-वणिकों पर शासन-प्रबन्ध उसकी पुत्री गोमती करती थी। गोमती का पति बिबोया था।

समस्त विजयनगर साम्राज्य के महामात्य आचार्य माधव थे।

मदुरा की उस छोटी सी सल्तनत का इतिहास में विस्तृत उल्लेख नहीं मिलता, जो खून और दगाबाज़ी से भरा हुआ है। खुद मुसलिम नामानिगारों ने भी विस्तार से उल्लेख नहीं किया है, परन्तु मदुरा की सल्तनत का खूनी पंजा जनता पर इस प्रकार गहरा और गहरा पड़ा था कि लोगों ने तमिल और मलियालम भाषाओं में कई लोकगीत और कथागीत लिखे।

इन लोक और कथागीतों का रचनाकाल विक्रम सम्वत् १४०० और १४१० के मध्य में है। इसलिए ये गीत समकालीन माने जाते हैं।

★

निवेदन

आज का भारतवर्ष जिन संकटपूर्ण समस्याओं के संघर्षण से गुजर रहा है, ठीक ऐसी ही समस्याएँ, सात-आठ सौ वर्ष पूर्व, विजयनगर धर्मराज्य के समक्ष उपस्थित हुई थीं।

विजयनगर के 'धर्मराज्य' से यह तात्पर्य न ग्रहण किया जाए कि यह राज्य केवल धर्मराज्य था, धर्मनिरपेक्ष नहीं; विजयनगर राज्य सही अर्थों में धर्मनिरपेक्ष राज्य था, क्योंकि उसका नियम था—सभी धर्मों और मतों का मान और मान्यता। और 'विरूपाक्षदेव प्रभु की छाया में सकल वर्णाश्रमों और धर्मों का मंगल' महामंडलेश्वर बुक्काराय के निरीक्षण में सम्पन्न होता था।

तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों ने कुछ इस तरह पलटा खाया कि देश के सम्मुख भारत के झगड़े, विदेशी आक्रमण की चिंताएँ, 'पाँचवें कॉलम' का खतरा, धर्म के असहिष्णु स्वरूप और ग़रीबी का नग्न-नृत्य आदि अनेक प्रश्न उठ खड़े हुए परंतु उस काल में एक अद्वितीय, विराट् महापुरुष सत्ता का सूत्रधार था! प्रकाण्ड पंडित, ज्ञान-विज्ञान का अखण्ड सूर्य, राजनीति और धर्मनीति का प्रखर खिलाड़ी और इन गुणों पर भी, महत्तर गुणवंत कि सर्वस्व का त्यागी, वीतरागी, पूर्ण विरागी—आचार्य माधवाचार्य!

महामात्य माधवाचार्य ने अपनी महामेधा के पुण्य-फल-स्वरूप समाज, जाति और देश की इन सभी समस्याओं और प्रश्नों का हल-उत्तर और अनन्त विजय, वैभव, शक्ति और गौरव का सुख-कोष प्रदान किया।

कैसे और किस प्रकार माधवाचार्य ने अपने समय की समस्याओं का निदान पाया और राष्ट्रविरोधी तत्त्वों का दमन किया—प्रस्तुत उपन्यास उस महान् कीर्तिकथा का साक्षी है।

विक्रम सम्वत् १३७३-७४ में दिल्ली में भयंकर अराजकता का बोल-बाला हुआ। इसमें सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी और उसके कुल का नाश हुआ। तब सत्ता मलिक गाज़ी के हाथ में आई। इसके बाद इसका बेटा

मलिक फ़करुद्दीन गद्दी पर बैठा, इतिहास जिसे 'मुहम्मद तुग़लक' के नाम से जानता है।

अराजकता के इस काल से लाभ उठाकर मदुरा के सूबेदार जलालुद्दीन एहसानशाह ने अपने-आप को स्वतंत्र सुल्तान घोषित कर दिया। इस कृतघ्न सुल्तान को 'तास' नामक एक अमीर ने मार डाला। मगर तास को भी अपने कुकर्म का कुफल मिलना ही था। बात यों हुई कि तास का एक अमीर सरदार मित्र था। उसने अपनी बहन के रूपजाल में तास को फँसाया और फिर एक रसीली किन्तु काली रात में बहन और भाई ने मिलकर तास का सिर काट कर दुर्ग के द्वार पर लटका दिया और भाई साहब ग़यासुद्दीन के नाम से मदुरा के तख्त पर आ बैठा।

ग़यासुद्दीन को उसके भाँजे नासिरुद्दीन ने कत्ल किया और स्वयं सुल्तान बना। नासिरुद्दीन ने दग़ाबाजी और धोखे-छल से होयसल राजवंश के सर्वस्वत्यागिसम्राट्, परमप्रतापी, राजसंन्यासी वीर बल्लालदेव तृतीय का सिर काट लिया और दुर्ग के तोरणद्वार पर टाँग दिया। तब स्वतंत्रता के एक लड़ाके भालारी बिबोया ने अपने नेता का बदला लिया और नासिरुद्दीन का काम तमाम किया। नासिरुद्दीन के बाद उसका चाचा ग़यासुद्दीन दमग़ानी तख्तनशीन हुआ।

यही इस उपन्यास की अमर कथा का सूत्र है।

कथाकाल का आरम्भ है—विक्रम के संवत् १४०२ और १४०३ के आसपास का।

आशा है, रोचक इतिहास के आधार पर लिखित यह अपूर्व कथानक हिन्दी पाठकों के रुचिरस और रंजन का पात्र बनेगा। मूल गुजराती उपन्यासपृष्ठों के सचित्र हिन्दीकरण का भरपूर प्रयत्न मैंने किया है और गुजराती से हिन्दी में अनूदित, मेरे कई अनुवाद प्रयासों में, यह सर्वाधिक परिश्रम-सम्पन्न अनुवाद है। त्रुटियाँ मेरी हैं और उन्हें दंडित या क्षमा करने का अधिकार आपका है!

परदेशी

अनुक्रम

१ ★ नगर नायक

पर्वतीय प्रदेश में चार-छः घुड़सवार चले जा रहे थे। उनका मार्ग पहाड़ियों के किनारों पर, झाड़ियों में से घाटियों में होकर गुज़रता था। साँझ झुक आई थी। अस्तमान सूर्य का लाल-लहू आकाश में फैल गया था। पहाड़ियों के पीछे ऐसी सघन लालिमा छा गई थी, मानो दूर कहीं घनी आग जल रही है। आकाश में लाल-लाल रोशनी पसर रही थी और धरती पर भूरे रंग का अँधियारा तेज़ी से छा रहा था।

और यह भूरा अँधियारा बड़े वेग से काला रंग ग्रहण करता जा रहा था। आस-पास के पेड़-पौधों का हरा रंग काले रंग में पलटता जा रहा था।

एक घुड़सवार अकुलाकर बोला—

"सुबह से घोड़े पर सवार हैं। अब तो कमर टूट गई है। अब हमें और कितनी दूर चलना है ?"

"उमर कोतवाल बेचैन क्यों होते हो ?" दूसरे घुड़सवार ने कहा। घुड़सवार यह नौजवान था। कहने लगा—

"यह तो तुम्हारे अमीर फिरोज़खान की सफ़र है। और फिरोज़खान तो, तुम जानते हो, किस किस्म का आदमी है, सुना है, वह तो लोहे का आदमी है।"

'अरे मुबारक मियाँ, तुम तो नौजवान हो और मैं तो, भले आदमी, फिरोज़खान की नौकरी में नौजवान से अधेड़ हो गया हूँ। वह लोहे का

आदमी है या मिट्टी का, यह तो मुझसे छिपा नहीं है। लेकिन हम तो बिना खाये-पिये सुबह से चलते रहे हैं। भला, घोड़े जब थक गये, तो क्या आदमी नहीं थकेगा ? दो बार हम घोड़े बदल चुके हैं। यह भी कैसी मुसाफिरी है ! और काम भी कैसा ?"

"सुनते हैं, सैयद मंजूरशाह से मिलने जा रहे हैं।" मुबारकखान ने कहा।

मुबारकखान के साथ में था उसका एक नौकर। चाहे उसे नौकर कहिये, खानसामा कहिये, हमराही कहिये, कुछ भी कहिये। उसका नाम था—नागर नायक। बीच में ही वह बोला—

"अरे मियाँ, यह सैयद मंजूरशाह कौन-सा गूलर का फूल है कि मदुरा के सुलतान गयासुद्दीन दमग़ानी के सगे भानजे मलिक फिरोजखान खुद चलकर उसे मिलने जा रहे हैं ! क्या वे खुद सैयद को अपने पास नहीं बुला सकते ? अरे, सुलतान तो क्या, सुलतान के कुत्ते का भी बोलबाला है !"

मुबारक मियाँ ने कहा—

"अरे नागर, तुझे हसन चाचा ने क्या कहा था ?"

"मुबारक मियाँ," नागर ने जवाब दिया—"देखिए मियाँ साहब, ये तो मुसाफिरी की चर्चाएँ हैं। आपके वालिद अमीर हसन चाचा शरीफ़ आदमी हैं। यदि उनकी नाक में मुँह देकर बात की जाए तब भी उन्हें किसी तरह की गंध नहीं मिलती है। उनके लिए तो वीरवणिकों से उनका हिसाब-किताब भला ! शेष तो मुझे विस्मय होता है; सच कहना उमर कोतवाल, आपको भी विस्मय होता होगा ? आखिर क्या बात है कि सुलतान का भानजा, जिसका नाम मदुरा की सल्तनत में बिजली की तरह चमकता है, रात-दिन की सफ़र करके एक मामूली सैयद से मिलने जा रहा है !"

"जाएगा, भाई, जाएगा ! अगर वह मिलने न आए तो, खुद ही जाए ! तू तो जानता है, गरज पड़ने पर गधे को भी..."

"अगर मैं सुलतान का भानजा होता," नागर ने कहा—"तो सैयद को पकड़ मँगवाता, मुश्कियाँ बाँधकर वह मेरे सामने लाया जाता।"

"अरे ऐ उल्लू !" उमर कोतवाल ने कहा—"जिस तरह मेरा मलिक

मदुरा का मालिक है, उस तरह सैयद अपने शहर मग़रूर का मालिक है। और उसके घमंड की कुछ न पूछो। बेवक़ूफ़ों की बस्ती में...! समझे!"

"तो, क्या हमें मग़रूर जाना है?" नागर ने दोनों हाथ ऊँचे उठाकर विस्मय प्रकट किया—"मार डाला!"

"क्यों, किस तरह?" मुबारक ने पूछा।

"अरे खाँ साहब! पूछिए इन उमर कोतवाल से। मगरूर मोपलाओं और मावलाओं का मुल्क है। वहाँ तो चोरों, लुटेरों और पिंडारियों के अलावा और कोई नहीं रहता है।"

उमर कोतवाल हँस दिया—"मस्जिदों में मुल्ला जब अलिफ़, बे, पे, ते, टे पढ़ाते हैं तब यह सिखाते हैं कि मगरूर होना नहीं और मग़रूर जाना नहीं। आज उसी मग़रूर की ओर हम बढ़ रहे हैं।"

"मुबारक मियाँ! नागर ने डरे हुए चेहरे और उत्सुक नजरों से पूछा—"जिन्दा लौट सकेंगे न?"

"पगले, खुद फिरोज़खान तशरीफ़ ले जा रहे हैं। क्या उनकी वालिदा को उनकी फ़िक्र नही? और क्या हमारी जान चली जाएगी और उनकी बच जाएगी?"

"नहीं, लेकिन, कुछ तो विचार कीजिए, तुर्क की तरह भूत भविष्य की ओर से आँख न मूँद लो, ज़रा आगा-पीछा भी सोच लो। आज तीस सालों से मलाबार की सूबेदारी चल रही है और पच्चीस सालो से मदुरा की सल्तनत अपना फर्ज अदा कर रही है। पच्चीस साल में पाँच-पाँच सुलतान आकर चले गए। और पाँचों ने किया क्या? खुरासान से, तातार से, गुजरात से, दौलताबाद से तुर्क किसानों, व्यापारियों और सौदागरों को बुलवाया। फिर उन्हें स्थानीय मूलवासियों की ज़मीन छीनकर सौंप दी। इन मुसीबतजदों में हिंदू मुसलमान, कुरुम्बा, वेलालूर, गौड़ और बीदर वगैरह थे। इनका माल-असबाब, ज़मीन-जायदाद, खेत-खलिहान छीन-छीनकर, इन नए सौदागरों, मलिकों और विदेशियों को दे दिया गया, जिसकी कोई दाद न फरियाद! अरे, हमारे इन हसन चाचा का सारा मालमत्ता, हवेली, काफिला, घोड़े वगैरह सब कुछ छीनकर नए सौदागरों को सौंप दिया गया।

ये तो हसन चाचा जबरदस्त आदमी हैं और वीर वरिणकों से इनके पुराने ताल्लुक हैं, इसलिए इन्होंने अपना काम फिर से सजा लिया। और इसे भी वे कौन-जाने कब छीन लें। और जिनकी ज़मीनें छीन ली गई थीं, जिनकी जायदादें लूट ली गई थीं, वे सब कुरुम्बा, वेलालूर, हिंदू, मुसलमान और पिंडारी भागकर मलाबार में जा बसे। अब, हमें कोई जिन्दा छोड़ दे, इस बात पर यक़ीन नहीं होता ! अल्लाह, अल्लाह कीजिए !"

उमर कोतवाल ने कहा—

"अब चुप रहिए ! चुप रहिए ! तुम्हें जो शक है, क्या उसका अंदेशा हमारे मन में नहीं है ? ज़रूर है, मगर मुंह से कहना...पगले, मग़रूर में सैयद मज़ूरशाह का बोलबाला है। वे जैसा कहते हैं, वैसा ही करते हैं। ये मोपला, मावला और पिंडारी ! समझे ?"

'लेकिन, वहाँ जाने की ज़रूरत ही क्या है ? इस मसान नगर मग़रूर जाने से कांची जाने में कम खतरा है। पांड्यों के हाथ में पड़ जानेपर, वे, अधिक से अधिक, मार डालते हैं, लेकिन ये तो बड़े जालिम हैं, जीवित जला देते हैं और खाल खिचवा लेते हैं। फिर आपके कोतवाल मलिक फिरोज़खान को क्योंकर यह दुर्बुद्धि आई ? सुलतान नहीं, तो उसका भानजा ही सही, यदि एक बार इकबाल के हाथ में पड़ गया तो क्या वह इसे जिन्दा छोड़ देगा ?"

उमर कोतवाल ने कहा—

"अरे, तू तो खुद भी डरता है और दूसरों को भी डरा देता है। जब हम रवाना हुए तो हमने कसम ली थी कि हम कहाँ जा रहे हैं, इस राज़ को पोशीदा रखेंगे।"

"क्या...क्या ?"

"चुप रह।" मुबारक ने कहा—"दीवार के भी कान होते हैं। बेवकूफ़, ग़यासुद्दीन दमग़ानी की सल्तनत में पेड़ों के भी कान होते हैं।"

"ठीक ! चुप रहेंगे।" मानों रूठ गया है इस प्रकार नागर मुँह चढ़ाकर चुप रह गया।

उसकी यह दशा देखकर उमर कोतवाल ज़ोर से हँसा—

"अरे, तू लड़का है या लड़की ? इस तरह मान-मनौवल करता है....।" अचानक उमर कोतवाल का चेहरा उतर गया और मानो उनकी हँसी टूट कर बिखर गई..."यह पीठ, अब तो टूट कर टुकड़े हो गई है !"

"अरे, मुबारक !" उस घुड़सवार ने आवाज़ दी, जो इस काफ़िले के आगे चल रहा था। उसका सिर उसके सीने पर ढला था।

"आया सरकार !" मुबारक ने जवाब दिया। फिर नागर से कहा—"मलिक फिरोज़ मुझे बुला रहे हैं। मैं जाता हूँ।"

मुबारक और नागर स्वामी और सेवक की अपेक्षा समवयस्क प्रतीत होते थे। दोनों का एक दूसरे पर बड़ा विश्वास था। मुबारक की उम्र बाईस-तेईस वर्ष की थी। वह मदुरा के एक वृद्ध सौदागर का एकलौता बेटा था और बुढ़ापे में पैदा हुआ था। नागर उससे कुछ बड़ा और सौदागर की तरफ से मुबारक की देखभाल के लिये नियुक्त किया गया था।

जब मुबारक फिरोज़ के निकट पहुँचा, तब अंधकार इस तरह घिर आया था कि एक दूसरे का मुँह देख लेना भी मुश्किल था।

मलिक फिरोज़खान लम्बा-तगड़ा, पहाड़ी बदन का कद्दावर आदमी था। उसकी आवाज़ पहाड़ी थी और मिजाज़ भी पहाड़ी था। उसे देखकर ऐसा लगता था मानों खुरासानी आबहवा का एक टुकड़ा दक्षिण में आ पहुँचा है।

"मुबारक !" फिरोज़ बोला—"जरा देख तो सामने जंगल में कुछ दिखाई देता है ?"

"इस अँधेरे में ?"

"देख तो सही। जरा आँखें टिका कर देख।"

घोड़े पर बैठ कर मुबारक ने फिरोज़खान द्वारा निर्देशित दिशा की ओर देखा। कुछ देर तो उसे कुछ दिखाई न दिया किन्तु कुछ पल पश्चात् जुगनू-जैसा एक दीपक तीन-चार बार चमक कर जैसे बुझ गया। पुनः अगम अंधकार छा गया।

"मलिक साहब, ऐसा लगता है, कोई एक दिया दो-चार बार चमक गया है।"

"मैं कबसे यही देख रहा हूँ ! दो, तीन, चार बार मैंने देखा । इसीलिये तुमसे पूछा आखिर यह क्या बला है ?" मलिक फिरोज का स्वर चिंता के भार से बोझिल था ।

"हुजूर, दिया है और कुछ नहीं, लेकिन वह जिस तरह चमक रहा है उससे लगता है, उसकी चमक किसी बात का संकेत है । मेरा यह शक है ।"

"इन जंगलों पर इकबाल शाह की हुकूमत है और वह सल्तनत के बरखिलाफ़ बाग़ी बना हुआ है । शायद उसे हमारी उपस्थिति की खबर मिल गई है....लेकिन ऐसा कैसे हो सकता है ?" मलिक फिरोज मानो मन ही मन बात कर रहा था ।

मुबारक बोला—"मुझे पूरी खबर तो नहीं मिली, लेकिन मेरे चाचा कहा करते थे कि इकबाल को कुछ बातों का पता चल जाता है, कुछ का नहीं चलता और किस वक्त वह कहाँ रहता है यह कोई नहीं बता सकता ।"

"मदुरा की सल्तनत में इकबाल शाह सोने की थाली में लोहे की मेख की तरह है ।"

"जी ।" इस विधान के विरोध में नकार का प्रयोग असम्भव था और इस सत्य को सारी दुनिया जानती थी ।

"अब मुकाम करेंगे ?" मुबारक ने पूछा ।

"नहीं, घोड़ों को नदी में पानी पिला दो । तुम लोग पीना चाहो तो पी लो । जो कोई शराब पीना चाहे, उसे दो दो अंगुल शराब नाप कर दे दो और फौरन आगे बढ़ो ।"

"जी, सरकार ।" मुबारक ने कहा—"उमर कोतवाल को खबर दे दूँ ?"

"हाँ, उन्हें मेरे पास भेज दो," और इसके बाद मानो मलिक को अपने ही हुक्म का अर्थ समझाने की जरूरत महसूस हुई हो, इस तरह वह कहने लगा—"समझ गया न मुबारक ? यहाँ पड़ाव डालने का मतलब है सारी रात का जागरण । इससे तो यही बेहतर है कि मंजिल तय कर के मग़रूर पहुँच जावें ।"

फिर कुछ देर चुप रह कर और दूसरों को सन्तोष दिलाने के स्वर में जैसे अपने ही मन को परितुष्ट करने का प्रयत्न कर रहा हो, उस भाँति मलिक बोला—"यही रास्ता सलामत है। हमें यह खयाल न था कि मंज़िल इतनी लम्बी होगी और इकबाल शाह के जंगलों में रात का अँधियारा घिर आयेगा। मगर अब तो....।"

उमर कोतवाल की सूचना के अनुसार उनके साथ के दो साधारण सवार अपने घोड़ों से नीचे उतर गये और छहों घोड़ों की रास थाम कर खड़े हो गये। उन्होंने उन्हें नदी में जल पिलाया। खुद भी पिया। पानी की मशक भर ली और तैयार होने लगे, तभी कई काली आकृतियों ने उन्हें घेर लिया—"खबरदार!" काली आकृतियों में से एक बुलन्द आवाज़ उठी।

अचानक चाबुक की आवाज़ें आईं। उनके घोड़ों पर चाबुकों की मार पड़ने लगी। भय और विस्मय की दशा में घोड़े अपना साज-सामान फेंक-कर तितर-बितर हो गये। भगोड़े घोड़ों में से एक के पैरों की ठोकर से उमर कोतवाल गिर पड़ा। वह मुबारक पर गिरा था इसलिये मुबारक भी चिल्लाया। तभी एक जोर का चाबुक गूंजा और मलिक फिरोज़ की चीख हवा में उठकर सो गई।

क्या हुआ, कैसे हुआ, क्यों हुआ, इस रहस्य को समझने-बूझने का कोई प्रयत्न करे, तब तक तो छहों आदमी बंदी बना लिये गये। और उनके हाथों में और बदन पर रस्सियाँ बाँधकर, काले आकार उन्हें उस गहन अंध-कार में खींचकर ले जाने लगे।

ये काले काले आकार, सभी घुड़सवार थे। उनके घोड़े रास्ता काटने लगे। ऐसा प्रतीत होता था, ये घोड़े इस अँधेरी रात से भली भाँति परिचित हैं और कंकर-पत्थरों में चलने के अभ्यस्त हैं।

मलिक फिरोज़, मुबारक, उमर कोतवाल, नागर नायक और उनके दोनों सवार पैदल चल रहे थे। पंथ अपरिचित था और अंधकार सघन था। उनके दोनों हाथ पीठ पर बँधे थे और मजबूत रस्से एक एक घुड़सवार ने सावधानीपूर्वक थाम लिये थे।

पैदल चलने वाले इन छहों जन में से कोई भी कुछ कहता—सुनता न था। तनिक भी रुकता न था। पीछे रह जाने पर गिरकर घसीटने का भय था। अंधेरे में अधिक आगे चलने पर घोड़ों की ठोकरों का डर था। जमीन पर गिर जाने पर उठने के लिये हाथ का सहारा ले सकने की सम्भावना न थी।

जब किसी को ठोकर लगती तो वह बेचारा चीख उठता। अगर कोई खड्ड या टेकरी पर ठोकर खाकर गिर पड़ता तो घसीटा जाता और इसी दशा में अपनी राह काटता और तब उसे पकड़ कर रखनेवाला घुड़सवार कुछ देर के लिए रुक जाता।

यदि कोई बन्दी दूसरे बंदी से बात करने की कोशिश करता तो घुड़सवार उसके बंधन की रस्सी को जोर से धक्का देता और बातूनी बेचारा जमीन पर मुंह के बल गिर पड़ता।

अब तक खड्डों और टेकरियों पर चुपचाप चलनेवाले ये लोग इस समय एक टेकरी पर चढ़ते प्रतीत हो रहे थे।

मानो कोई वात्याचक्र उन्हें अगम अंधकार में भूतों के लोक में ले जा रहा है, इस प्रकार ये लोग सर्वथा मौन और स्तब्ध चल रहे थे, मात्र अश्व-पग-ध्वनि ही फैल रही थी।

एक एक खड्ड को पार कर, एक एक टेकरी पर चढ़कर, एक एक झाड़ी से निकल कर यह झुण्ड गिरता-उठता, घावों से लहू बहाता, कपड़ों की चिन्दियाँ उड़ाता अंत में तीन टेकरियों की ओट में खड़े हुए एक विशाल और ऊँचे वृक्ष के नीचे आ पहुँचा। वहाँ मिट्टी का एक छोटा-सा दिया जल रहा था। उसकी लौ हवा के झोंके से बुझ न जाय, इसलिए दो तीन पत्थरों की ओट बना दी गई थी।

दीपक के प्रकाश में एक व्यक्ति बहीखाता लिख रहा था। जमीन पर एक गादी बिछी थी और तकिया लगी थी। उस पर बैठा हुआ व्यक्ति न तो अधिक लम्बा था न ही नाटा था। न वह मोटा था, न ही दुबला था। उसका वर्ण शुद्ध श्याम रंग का था और वह छोटा-सा कौपीन पहने था। उसके कानों में हीरे के आभूषण थे। ग्रीवा में असली सोने की बनी हुई दो

सेर वज़न की माला थी। उस माला के नीचे, ठीक छाती पर एक हीरा झूल रहा था। इस व्यक्ति की पाँचों अँगुलियों में भी हीरे की अँगूठियाँ थीं।

वनवासी पहाड़ों के बीच में, घोर बन में काली काली आकृतियों के मध्य में विराजित इस व्यक्ति का यह स्वरूप देखकर बंदी भी कुछ देर के लिये आश्चर्यचकित रह गये। उनके मन में यहाँ प्रदर्शित किसी और दृश्य को देखने का अनुमान था, किन्तु दीपक के झिलमिल प्रकाश में घाटियों की छाया में, बहीखाता लिखनेवाले विचित्र व्यक्ति के दर्शन का अनुमान तो कदापि नहीं था। इस व्यक्ति के पीछे लम्बे भाले, तेज तलवारें और तीर-कमानधारी, सात-आठ विरंगी, नख से शिखा तक काली पोशाक पहने सैनिक काले आकारों की एक पंक्ति के रूप में खड़े थे। ये सब चुप थे और बहीखाता लिखनेवाला विचित्र व्यक्ति भी चुपचाप अपने बहीखाते पर सिर झुकाये, लिखता जा रहा था।

उसके पास जाकर, बंदियों को पकड़नेवाले नायक मुखिया ने झुक-झुक कर तीन बार सलाम की, लेकिन बहीखाता लिखनेवाले व्यक्ति ने सिर उठाकर नहीं देखा।

कोर्निश बजा कर नायक ने बड़े अदब से कहा—"सरकार!"

उस व्यक्ति ने सिर उठाकर देखा।

मदुरा के भाँति-भाँति के आन्तरिक विद्वेषों और युद्धों से परिचित और पारंगत उमर कोतवाल के मुख से निपट आश्चर्य और पूर्ण परिचय के शब्द प्रकट हुए—"अरे, कौन? वरजांग सेट्ठी? आप यहाँ?"

"हाँ, वरजांग सेट्ठी कहो, इकबाल कहो, चाहे जो कहो। किन्तु मुझे पहचान कर, बुलानेवाले तुम कौन हो?"

"मैं उमर नायक। क्यों, आप मदुरा आये थे और सुलतान नासिरुद्दीन का मैं कोतवाल—उमर नायक!"

"याद आया, याद आया। तुम्हीं उमर नायक हो? सुलतान की मुलाकात के लिये, मुझसे एक सौ बराह की कणिक (रिश्वत) माँगनेवाले, तुम्हीं हो न?"

"अरे सेट्ठी, इस वक्त यह बात!"

"सब्र रखो, उमर कोतवाल, सब्र रखो ! मैं तो जात का बनिया और फिर सेट्ठी, उस पर जाति-भ्रष्ट होकर तुर्क बना। हिसाब रखना, जमा-उधार लिखना, यही तो मेरा काम, मेरी परम्परा, मेरे बाप-दादाओं की रीति। जो हिसाब नहीं रखता है, वह कैसा सेट्ठी ? इसलिये, तुम छहों आदमियों में किससे मेरा कितना लेना निकलता है, यह मैं अपनी बहियों में देख रहा था।"

"बहियाँ ? लेन-देन ?...

"हाँ जी, जमा-उधार लिखे बिना बनिये का काम नहीं चलता। अरे कोई सुजात !...कहाँ गया सुजात पिंजारा ?"

"हाज़िर सरकार !"

पीछे खड़े हुए काले आकारों में से एक काला पुरुष आगे बढ़ आया।

"मेरी इन बहियों में लिखा है कि तेरी लड़की से उमर नायक ने....।"

सुजात ने एक सुदीर्घ निःश्वास लिया।

"समझा, समझा ! तू भी मेरी तरह पुराने हिसाब-किताब रखनेवाला आदमी है। इस उमर नायक को ले जा। सौ बराह के बदले में, प्रतिशोध में सौ कोड़े मारना, जा।"

मलिक फिरोज़ बोला—"इकबाल, जानते हो यह कौन है ? मैं कौन हूँ ?"

"ये कौन हैं यह मैं जानता हूँ, मुसीबत की बात तो यही है ! तुम.... तुम कौन हो, यह भी भला मैं कैसे नहीं जान सकता ? तुम सुलतान ग़यासुद्दीन दमग़ानी के भानजे मलिक फिरोज़ हो। अरे भई सुजात, तू अब राह न देखना। जिसकी नसों में वीर-वणिकों के लहू का एक भी बूँद बहता होगा वह आदमी पुराना लेन-देन बाक़ी नहीं रखेगा। तू अपना काम कर। यहाँ तो बातों के व्यालू बनेंगे !"

इस नितान्त लापरवाही के सम्मुख मलिक फिरोज़ एकदम चुप रह गया। उसकी समझ में यह न आया कि जहाँ उसके राजकीय सम्बन्धों का ताप नहीं पहुँचता है, जहाँ स्वयं उसके नाम की धाक धराशायी है, वहाँ क्या किया जाय ?"

"मेरे हाथ धोखे में बाँध दिये गये हैं, वरना, वरना...।"

करजांग सेट्ठी उर्फ इकबाल जोर से हँसने लगा—"हा हा हा हा! तुर्क होकर दगाबाजी की फरियाद करता है..? मदुरा के सुलतान का सेवक धोखेबाज़ी के खिलाफ़ फरियाद करे, यह ताज्जुब की बात है! वाह रे भाई वाह! वाह रे मियाँ वाह!"

"मेरे हाथ में एक शमशीर देकर देखो!"

"क्या तुम मुझे कर्नाटक का राजसंन्यासी बल्लालदेव समझते हो? अथवा राजस्थान का कोई राजपूत समझ बैठे हो? या मैं पाण्ड्य संघ का कोई नायक हूँ? आखिर तुमने मुझे क्या समझा है मियाँ मुबारक खान?"

इस प्रकार स्पष्ट रूप से अपने नाम का उच्चारण सुनकर मुबारक अवाक् रह गया।

करजांग ने अपनी बात जारी रखी—"अरे मियाँ! कोई राजपूत तुर्क की चालाकी का मुकाबला नहीं कर सकता। राजपूत तो अपने कुल-गौरव और युद्ध के नियमोपनियमों से अनुशासित अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता। उस बेचारे के सामने एक गाय खड़ी कर दो, तो चाहे जितना बाँका लड़ाका वीर होगा, तुरंत हथियार रख देगा। मरना ही वह चाहता है कि यह उसकी समझ से बाहर है कि जीवित रहकर फिर से शत्रु को पराजित किया जा सकता है। मियाँ, तलवार की परम्परा, द्वन्द्व युद्ध और आभीर की बात उसे शोभा देती है, मुझे नहीं। मेरे लिये तो, यह देखो, यह बहीखाता खुला है, जितना जितना इसमें उधार लिखा है उतना उतना जरूर जमा किया जायगा।"

"इस वक्त अगर मेरे हाथ में तलवार होती...।"

उधर उमर नायक की चीखें हवा में गूंज रही थीं। उन्हें सुनकर निष्ठुरतापूर्वक अट्टहास कर इकबाल ने कहा—"अगर तुम्हारे हाथ में तलवार होती तो तुम क्या करते, यह तो खुदाताला को मालूम है मलिक फिरोजखान, लेकिन तुम्हारे हाथ खाली हैं इसका कोई उपाय नहीं। यों तो बुआ के मुंह पर मूँछें होतीं तो सारा गाँव उन्हें चाचा कहता, लेकिन मूँछें नहीं, क्या किया जाय?"

"तुम, तुम...नीच हो !"
"मंजूर, और ?"
"तुम, तुम बहादुर नहीं, डरपोक हो...।"
"मंजूर, फिर ?"
"फिर, फिर...।" फिरोज की जीभ लड़खड़ाने लगी ।

"समझे मियाँ मलिक फिरोज़, समझ गये न ! तुम तो दो ही गालियाँ देकर ठण्डे पड़ गये ? बड़े सुलतान का भानजा इतनी जल्दी खामोश हो गया ! अरे यार, पाँच पचास गाली देते तो कुछ उधार लिख दिया जाता और हिसाब के चुकारे में, तुम्हारी जीभ काटकर तुम्हें हाथ में रख दी जाती ।"

यह धमकी इतने ठण्डे कलेजे से दी गई थी और तनिक भी बेचैनी के बिना दी गई थी कि मलिक फिरोज़ तो इसे सुनकर ठण्डा पड़ गया । अब उसे खयाल आया कि वह एक और ही प्रकार के इन्साफ करनेवाले एवं और ही प्रकार के काजी के पास आया है !

उसने कहा—"मुबारक, तू चुप रहना । इस बिगड़ैल आदमी को फ़िजूल ...फिजूल...।"

बरजांग हँसा—"हाँ, अब समझे, मलिक साहब ! मुँह से निकलती गालियाँ किस तरह बंद हो गईं ! मेरे हिसाब-किताब की यही बलिहारी है मियाँ साहब ! और मुबारकखान की बात तुमसे अलग है । मैं जब मदुरा के सुल्तान से मिलने आया था तब मुझे किसी किस्म की उम्मीद न थी । तुम भी मेरे उस हाल से अपनी बराबरी करते हो ? कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली !"

इकबाल के शब्द मलिक फिरोज़ के कान में चुभने लगे । उसके भाल पर बल पड़ने लगे । लेकिन इस समय वह ऐसे स्थान पर खड़ा था जहाँ किसी को इस बात की परवाह या फिक्र न थी कि उसके भाल पर बल पड़ते हैं अथवा उसके चेहरे पर झुर्रियाँ । पिंजरे में बंद सिंह की भाँति उसकी तड़प, स्वयं उसके लिये ही कष्टकर थी । मलिक फिरोज़ इस कष्ट को सहने के अतिरिक्त और कुछ न कर सका ।

मुबारक के कान में उमर कोतवाल की एक और चीख आई । एकाएक उसने कोई निश्चय किया और कहा—"इकबाल मियाँ अथवा इकबाल सेट्ठी,

जिस किसी नाम से तुम अपने को पहचानते हो, अगर तुम्हें अपने आप पर इतना एतबार है और हिसाब लिखने में तुम्हारी इतनी दिलचस्पी है तो बताओ मेरे वालिद का तुम्हारे यहाँ कुछ जमा निकलता है ?"

"हाँ है।" इकबाल ने कहा—"तुम्हें देखना हो तो आकर देख सकते हो, है या नहीं ?"

"तो मैं अपने वालिद की तरफ से माँग पेश करता हूँ कि सारे जमा-खर्च का हिसाब कर दो।"

"मानी ?"

उमर कोतवाल को कोड़े की जो सजा दी जा रही है, उसे बंद कर दो।"

इकबाल ने मजाक में कहा—'मियाँ भाई, तुम अपने बाप के असली बेटे हो। मैं यह देखना चाहता था कि तुम में अपने बाप का असर है या नहीं ? इसीलिये तो मैंने तुम्हारे बाप की भलमनसाहत का जिक्र किया.... मियाँ भाई, अकारण जो बात करे, वह वणिक नहीं !"

"तो ?"

"अब तो तुम्हारे वालिद से मेरी भेट होने पर ही इस तथ्य का पता चल सकता है कि उन्होने तुम्हें जमा खातिर करने का कोई अधिकार भी दिया है या नहीं ? लेकिन एक बात कहूँगा—अभी उमर कोतवाल है।"

मुबारक ने कहा—"हम तो उस ओर जा रहे थे।"

"मगरूर जा रहे थे न ?"

"मगरूर ? तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?" मलिक फिरोज ने साश्चर्य पूछा।

"सैयद मंजूरशाह से मिलने के लिये तुम लोग मगरूर जा रहे थे, यह बात सच है ?" इकबाल ने अधिक जाँच की।

फिर इकबाल ने उत्तर की प्रतीक्षा न कर, एक दोरंगी की ओर देखा।

दोरंगी वह चला गया।

कुछ देर तक कोई कुछ न बोला। दोरंगी वह वापस आया। उसने सिर्फ इतना ही कहा—'पधार रहे हैं !"

तब इकबाल ने मलिक फिरोज़ से कहा—

"मैंने मगरूर तक जाने की तुम्हारी मुश्किल आसान कर दी है; मलिक साहब, सैयद मंजूरशाह खुद यहाँ पधार रहे हैं !"

२ ✱ सैयद मंजूर शाह

सैयद मंजूर शाह ऊँचे-पूरे और सुदृढ़ शरीर के व्यक्ति थे। मेंहदी से रंगे उनके केश लाल थे और कंधों से नीचे तक झूलते थे! दाढ़ी के बाल भी मेंहदी से रंगे थे और छाती से नीचे तक पहुँचते थे। उन्होंने काला कुरता पहना था। गले में तसबीरों की लड़ें थीं। हाथ में भी एक तसबीर थी। दूसरे हाथ में मोटा छल्लेदार चिमटा था। पैरों में जूते थे।

"क्यों इकबाल? मुझे याद किया?"

"सैयद साहब! आपके मेहमान आ गए हैं!"—और इकबाल ने अंगुलिनिर्देश-द्वारा मलिक फिरोज को बताया।

सैयद मंजूरशाह ने मलिक फिरोज की ओर देखा और अपना सिर हिलाया। और फिर नक्कारे-जैसे गहन स्वर में कहा—"इकबाल! हमारी यह मुलाकात खानगी है।"

"जो!" इकबाल का चेहरा उतर गया। लेकिन उस पर सम्मान और अदब का नकाब पड़ा था। बिना कुछ कहे, कोर्निस के बाद वह चला गया।

मलिक फिरोज इस परिवर्तन को देखता रह गया! मोपलाओं के महाधूर्त और महाशठ इस नेता को सैयद मंजूरशाह के सामने इतना विनम्र और विनयी देखकर मलिक के मन में सैयद के प्रति सम्मान-भाव बढ़ा।

उसने तुरन्त शिकायत और फरियाद करना उचित समझा—"सैयद

साहब ! यह इकबाल आपकी इतनी इज्जत करता है लेकिन इसने मेरे साथी उमर कोतवाल को कोड़े लगवाए हैं ।

सैयद ने पूछा—'उसके बहीखाते में उमर से कुछ लेना निकलता है ?"

"निकलता है ! मगर..."

"तब यह चर्चा बन्द करो । इकबाल दूसरे सब मामलों में समझदार सयाना है मगर लेन-देन के मामले में पागल है । हम अपनी बात आगे बढ़ायें—"

"लेकिन मेरे देखते, मेरे साथियों को कोड़े लगाए जाएं, तो मेरी क्या इज्जत रह जाएगी ?

"अपने मानापमान के सिवाय इकबाल दूसरे किसी के मानापमान का विचार नहीं करता । अपने पुराने हिसाब का लेन-देन उसका अपना मामला है, मैं उसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता । बात यह खत्म हुई मलिक साहब !"

"ठीक ह !" मलिक फिरोज ने अनिच्छापूर्वक स्वीकार किया । दूसरा कोई उपाय नहीं था । अपनी लम्बी सफ़र की थकान को भुलाने का कोई रास्ता उसके पास नहीं था । इकबाल और सैयद के सम्मुख मतभेद प्रकट करने से कोई लाभ नहीं था । अच्छा तो यही निर्णय था—कि वक्त आने पर फिरोज भी अपना हिसाब चुकवाएगा, इस बात की गाँठ मन में बाँधकर वह चुप रह गया । हँसकर बोला—"आपकी बात ठीक है ! मैंने तो यों ही यह जिक्र किया था । अब अपनी बात—मेरी इस सफर की मंशा और मतलब तो आप जानते हैं ?"

पहले मैं आपसे एक सवाल पूछूँगा मलिक साहब ! आप जवान हैं और मैं अधेड़ आदमी हूँ । आपके साथी हमारी बातचीत सुन सकते हैं ? इसमें क्या आपकी सुरक्षा है ? क्या उन पर आपका इतना यक़ीन है ?"

"जी ! उमर कोतवाल मेरे दरोगा हैं और मेरे जाँनिसार हैं । इनके यहाँ हाज़िर रहने का अर्थ है : ये मेरे मामलों के जानकार हैं । मुबारक खान हमारे शाह सौदागर के बेटे हैं । कौन कह सकता है, कब इसकी जरूरत पड़ जाए ! इसलिए बेहतर है कि ये भी सारी चीजों से परिचित रहें । अगर मैं लम्बे सफ़र से महरूम रह जाऊँ तो जानकार होने पर उमर

कोतवाल उस काम को पूरा कर सकते हैं। मेरी गैरहाज़िरी में मुबारक को कोई कदम उठाना पड़े, अतः यह भी परिचित रहे, ठीक है!"

"अच्छा!" सैयद ने कहा—"और चौथे आदमी के बारे में आपने कुछ न बताया?"

"इसकी सिफारिश मुबारक खान ने की है। मुबारक खान के सौदागर पिता ने भी सिफारिश की थी। इसलिए, ज़्यादा हाल मुबारक ही बता सकता है।"

मुबारक खान बोला—"जी, नागर नायक दक्षिण के पंचद्रविड़ ब्राह्मणों का वंशज है। विचार और व्यवहार की दृष्टि से यह दीन का पक्का और सच्चा मुरीद है—इसे मोमिन कह सकते हैं। अजीज़ या अहल भी कह सकते हैं, जैसी आपकी मर्ज़ी!

"मेरी देखरेख रखने के लिए मेरे वालिद ने इसे साथ में तैनात किया है। वालिद का हुक्म है कि हरेक मामले में यह मेरे साथ रहे। इसको हरेक मामले की उतनी ही जानकारी रहे, जितनी मुझे। आप तो जानते हैं, हम आपके हमदीन और हमदिल हैं। लेकिन सौदागरी के लिए वीर-वणिकों से लेनदेन और बातचीत करनी पड़ती है, इसलिए मजबूरन कुफ़्र को भी साथ में रखना पड़ता है। नागर नायक यों तो काफ़िर है, मगर कुरान के कल्मे से लेकर, दोरंगी की शान और सिपाहगिरी की आन में यह हमारे हमदीन को भी पीछे रख सकता है। सैयद साहब, इसकी ईमानदारी पर तनिक भी अविश्वास नहीं किया जा सकता!"

मंजूर शाह ने कहा—"जहाँ तक मेरा खयाल है, यह प्रश्न महत्वपूर्ण नहीं है। मैं तो तुम्हारे लिये ही पूछताछ कर रहा था और अगर तुम्हें अपने साथियों से सन्तोष है तो मेरी नाराजगी का कोई कारण नहीं।"

"इस बारे में आप बेफिक्र रहें। वणिक जिस तरह पत्थर पर पच्चीस बार पीटने पर ही एक वराह स्वीकार करते हैं उस प्रकार हैं ये मेरे साथी। हम इनकी तरफ़ से बेफिक्र हैं, आप भी निश्चिन्त रहिये।"

लक साहब, आपका पैग़ाम मुझे मिला था और उसी वक्त मैंने

आपसे मिलने की तैयारी की, यही भरपूर जवाब है। अब आप क्या कहना चाहते हैं ?"

मलिक फिरोज़ ने कहा—"सैयद साहब, काफिरों ने दग़ाबाज़ी की और मेरे बड़े भाई को मार डाला, लेकिन जब आज के सुलतान और मेरे मामा उनके हाथ में पड़ गये थे तब उन्होंने इन दोनों को कत्ल नहीं किया। क्यों नहीं किया, यह मेरी समझ के बाहर है। काफिरों के दिलों को समझना खुदाताला के लिये भी मुश्किल है! अगर वे हमें कत्ल कर देते तो आज कुछ करने को शेष नहीं रहता, मुझे और आपको मलाबार के इन जंगलों और पहाड़ों की मुसीबतों के बीच मिलने की जरूरत नहीं रहती। मगर काफिर हैं कि हमारी मुसीबतें बढ़ाते ही आ रहे हैं। और सुलतान गयासुद्दीन को जिन्दा छोड़कर उन्होंने हमारी मुश्किलें और भी बढ़ा दी हैं।" फिर कुछ देर ठहर कर, मलिक चिढ़कर बोला—"क्या कहते हैं, आप सैयद साहब ?"

"मैं सुन रहा हूँ, आप अपनी बात जारी रखिये।"

"आपके सामने यह रोशन है कि अपने मरहूम भाई सुलतान नासिरुद्दीनशाह के वक्त में, मैं मलाबार का सूबेदार था। उन्हीं दिनों आपकी और मेरी पहचान हुई थी और आप जानते हैं कि पहले ही दिन से मेरी आपकी दोस्ती की गहरी नींव पड़ी। आपका क्या कहना है सैयद साहब ?"

"मैं सुन रहा हूँ।"

"सूबेदार के रूप में मेरी कारगुज़ारी आपको मालूम है। मैंने वीरवणिकों के साथ होनेवाले व्यापार की राह खोल दी और माबदौलत सुलतान के हुक्म के अनुसार, जिनकी ज़मीनें चली गई थीं, उनकी मजदूरी का इन्तजाम किया। व्यापार बढ़ने से लोगों को काम मिला और सल्तनत को कई तरह के महसूल मिले। इन्हीं महसूलों से हुकूमत का खर्च निकला। सबको हिसाब से अपनी तनख्वाह और अपना खर्च मिलता। मैंने मोपलाओं के लिये मसजिदें बनवाई। यह बात भी आपको रोशन है।"

"सुनता हूँ।"

"आप जानते हैं, मेरे बड़े भाई सुलतान नासिरुद्दीन शाह धोखे में कत्ल कर दिये गये। उनके बाद तमाम शरियत और कानून के अनुसार तख्त का हक़ मेरा था, लेकिन मेरा मामा गयासुद्दीन दमग़ानी अपना मालिकाना हक़ जता कर गद्दी पर बैठ गया। उस गयासुद्दीन का कारोबार आप जानते हैं। रिआया भूखों मरती है। वीर वणिकों का व्यापार बंद हो गया है। महसूल की आय बंद हो गई है। उसने बाहरी खुरासानी और दूसरे हमदीन लोगों को बुलाकर मूल निवासियों की जमीन-जायदाद इन विदेशियों को सौंप दी। अब लोगों के पास न कोई धन्धा है न कोई कारोबार। अगर हमारे हमदीन दोरंगी के तौर पर नाम लिखाते हैं तो उन्हें न तो हथियार मिलते हैं, न मसनद मिलती है, न इज्ज़त ही मिलती है। इस तरह हमदीन दोरंगियों के सबब हमदीन रैयत परेशान हो रही है। इस वक्त सल्तनत के दो जबरदस्त दुश्मन हैं—दक्खन में लंका का राजा, उत्तर में विजयनगर के सुरत्राण बुक्काराय।"

"बुक्काराय...?" सैयद ने पूछा।

"जी हाँ, हिन्दू सुरत्राण बुक्काराय ने हम सबके सुनते सुलतान गयासुद्दीन से कहा है—मैं मदुरा में आऊँगा। यह अगर चढ़ाई की धमकी नहीं है, तो और क्या है? उमर कोतवाल, तुम क्यों कुछ कहते नहीं?"

"बजा है सरकार। उस वक्त गैरहाज़िर था और मैंने भी बुक्काराय के अलफाज़ अपने कानों सुने हैं।"

"तो सैयद साहब, अब आप क्या कहना चाहते हैं?"

"सुन रहा हूँ।"

"इसलिये मेरा इरादा है कि मैं अपने हक की सल्तनत अपने मामा से छीन लूँ, क्योंकि सीधी तरह वे देंगे नहीं। लड़कर ही लेनी पड़ेगी। उसके बाद तख्त पर बैठकर मुझे लंका और विजयनगर के खौफ से सल्तनत को बचाना होगा। ठीक है, सैयद साहब?"

"सुन रहा हूँ।"

"वीर वणिकों के साथ हमारी तिजारत फिर से शुरू होनी चाहिये। सरकारी फौज, कारकूनों और मलिकों के चढ़े हुए वेतन आदि का चुकारा

होना चाहिये। खेत और जमीन आगे से किसी बाहरी विदेशी को नहीं मिलनी चाहिये, चाहे वह हमदीन ही क्यों न हो और इसके बाद खलीफा साहब के पास आप जैसे आमील और इल्मी वकील भेजकर, मदुरा की सल्तनत के लिये उनकी मेहर की इल्तिजा करनी चाहिये। क्यों, आपका क्या कहना है सैयद साहब ?"

"सुन रहा हूँ।"

"मुझे जो कुछ कहना था, कह चुका। अब आप क्या कहते हैं ?"

"सुनता हूँ।"

मलिक कुछ बेचैन हो गया। बोला—

"सुनता हूँ की बात अब पूरी हुई, सैयद साहब ! मैंने सुना है कि आप भी गयासुद्दीन के जुल्मों से तंग आ गये हैं। आपकी एक अज़ीज और प्यारी बाँदी को सुलतान उडा ले गया है और उसे उसने अपने पास रख लिया है। यह भी मैंने सुना है कि आप सुलतान से नाराज हैं। अब, मैं आपके मुँह से सुनना चाहता हूँ कि आप कहाँ तक मेरे साथ हैं ?"

"मैं वहाँ तक आपके साथ हूँ, जहाँ तक आपका खयाल है। और मैं कहाँ हूँ, इस सवाल का कोई महत्व नहीं। महत्व की बात तो यह है कि आपने अपनी बातचीत में मुझे कहाँ तक शामिल किया है ?"

मलिक फिरोज़ ने आगे कहा—"सैयद साहब, जिन दिनों मैं इस प्रान्त का सूबेदार था उन दिनों मैंने बहुत कुछ देखा है और जब सुल्तान गयासुद्दीन दमग़नी ने मुझे अपनी इस निज़ामत से हटा कर मदुरा वापस बुलाया और बाहरी तौर पर देखने पर बड़ा नजर आने वाला ओहदा—दीनी खर्च, खैरात और लंगर का काम मुझे सौंप दिया तब कई फकीरों, दरवेशों और अलमस्तों से मेरा काम पड़ता है। उन्हीं से मैंने सुना है, क्योंकि खुले कान रखकर बैठने वाला आदमी चाहे जहाँ बैठा हो, वह सुन सकता है—तो मैंने सुना कि सुलतान से आपको कोई मोहब्बत नहीं है बल्कि दुश्मनी है। लोग कहते हैं कि आपकी वह बाँदी या 'रखैल' कर्नाटकी थी। वह आपका मन बहलाती। क्या नाम था उसका ? मुबारकखान, उसका क्या नाम था ?"

सैयद के दढ़ियल चेहरे पर यदि कोई भाव प्रकट हुआ हो, तब भी उसे देख लेना असहज था लेकिन उस वक्त पल भर के लिये उसकी आँखों से निकल निकल कर ज्वालाएँ भौहो के नीचे छिप गईं।

"उसका नाम...आनंदी।" मुबारक ने कहा।

"हाँ। आनंदी कर्नाटकी, आपकी वह...वह...बाँदी, गोली, दोस्त, बेगम, चाहे जो कहिये...खातून...मलका, चाहे सो कहिये....।"

जैसे जख्म पर किसी ने नमक भर दिया हो और आवाज़ तड़प उठती है, उस तरह तनी हुई आवाज़ में सैयद ने कहा।—"आप जो कुछ कहना चाहते हों वही कहिये। मैं सुनता हूँ। यह नाम बताने के सिवाय, या इसे बार बार याद करने के सिवाय और भी कुछ कहना चाहते हैं आप? कहें, तो मैं सुनूंगा?"

"जी बेअदबी के लिए माफ़ कीजिये।" मलिक फिरोज़ ने कहा—दर-असल तो मैं सुलतान से आपकी नाराज़गी के सारे कारण बातफसीला गिना रहा था। इस तफसील में मैंने यह नाम पहले रखा है। सुलतान ने आपके शागिर्दों और मुरीदों की तमाम ज़मीन और जायदाद अपने दोरंगियों को दे दी है। मेरे वक्त में मलाबार की जो ज़मीनें आपके अधिकार में थीं, नये सूबेदार ने दूसरो को बख्श दी हैं। मलाबार की मसजिद आलम के खुतबा का काम भी दूसरे को सौंप दिया है। सुलतान की नाराजगी और नापसन्दगी सबके सामने ज़ाहिर हो चुकी है। मैंने यह भी सुना है कि आपने अपने मुरीदों को इकबाल से मिल जाने की सलाह दी। यह भी सुना है कि द्वारसमुद्र और कर्नाटक और हालबिड्डु में हिन्दूराज्य की ज़ुलमोसितम की सम्भावना से डरकर भागनेवाले मावला लोगों से आपने सम्पर्क स्थापित किया है। और सुना है कि आपने इकबाल को मावलाओं और मोपलाओं का आज़म बनाया है। और सब जानते हैं कि इकबाल उतना ही पानी पीता है, जितना आप पिलाते हैं।"

"वह जब पानी पीना चाहता है, तब मुझसे पूछता नहीं, मलिक!"

"सैयद साहब, मैं तो मामूली दास्तान सुना रहा हूँ। आप अब भी सूबे-दार की सलाम के लिए जाते हैं और अब भी जुम्मा की नमाज़ मगरूर में

पढ़ते हैं। आप अब भी सूबेदार की फौज में मौलवी का काम करते हैं लेकिन आपका दिल खट्टा हो गया है। खट्टे दिलवाले दो बिरादर मिलें और अपने सुख-दुःख की चर्चा करें, इसमें कोई बुराई नहीं।"

"मलिक, अगर तुम मुझसे सिर्फ सुख-दुःख की बातें करने के लिये आये हो, तो वे हो चुकीं। तुम कितने परेशान हो, यह मैंने जाना। मैं कितना परेशान हूँ, यह तुमने जाना। यों, हमने एक दूसरे की परेशानी का परिचय पाया। अब हमारे पास कहने-सुनने के लिये नई बात नहीं है। इसलिये आप वापस जा सकते हैं!"

मलिक फिरोज़ क्षण भर के लिए अवाक् रह गया। उसने सोचा कि उसकी मीठी जबान, उसकी हमदर्दी वगैरह, उसकी तमाम बातें इस अनुभवी सैयद के दिल पर असर डालने में असमर्थ हैं। इसलिये अच्छा है कि वह खुलकर बात करे। मंज़ूरशाह, चाहे जितनी भी ऊष्मा प्रदर्शित करने पर भी अपने हृदयकपाट खोलनेवाला नहीं है।

मलिक फिरोज़ के मन में यह बात थी कि अगर हमदर्दी दिखाने पर सैयद मंज़ूरशाह अपने मन की बात कह दे तो उस पर सहज ही यह प्रभाव डाला जा सकेगा कि मलिक फिरोज़ ने यहाँ तक आकर, उसपर उपकार किया है। लेकिन उसका दाँव खाली गया। मलिक फिरोज़ उपकार जता कर कम से कम मूल्य चुकाना चाहता था, परंतु अब उसने देखा कि षड्यन्त्र की कोई बात कहनी सुननी है, तो तुरन्त कह देनी चाहिये। षड्यन्त्र का नियम है एक ही बैठक में सारी चर्चा समाप्त हो जाय, उसकी कोई अवधि नहीं होती। उसे स्थगित नहीं किया जा सकता। इतनी बात आज हुई, अधिक बातें कल होंगी—इस तरह के वचन-वायदे षड्यन्त्र के लिए अननुकूल हैं; इस लिये षड्यन्त्र में चाल यह रहती है कि सामनेवाले की बात अधिक से अधिक जान लें तो कीमत कम से कम चुकानी पड़े।

लेकिन वर्त्तमान सुल्तान से नाराज़ होने के कारण रहने पर भी सैयद ने अपने दिल की बातों को बाहर न झलकने दिया! अतः मलिक को पश्चात्बुद्धि का पछतावा हुआ कि उसने अपनी गणना के प्रतिकूल, अधिक प्रमाण में अपने हृदय को खोलकर रख दिया है!

अब तो आधे डूबे और आधा और डूबने पर ही छुटकारा है, यह सोच-कर मलिक चिन्तित हुआ—अगर इसी वक्त यह बात बनती नहीं है तो सैयद की अपेक्षा उसके सिरपर भारी खतरा मँड़रायेगा !

गयासुद्दीन दमग़ानी उसका मामा था। वह पहाड़ी डीलडौल और क़द का व्यक्ति था। पहाड़ जैसा ही कठोर था। उसकी निर्दयता से उसके किमान बहुत भयभीत रहते थे। जब उसके दोरंगी किसानों से लगान वसूल करते वक्त, उनपर भयंकर अत्याचार करते, तब वह खड़ा देखता, हँमता रहता। उसके दोरंगी कुरुबा-किसानों की अँगुलियों के पौरों पर जलती मशाल रख देते या उनके नखों के नीचे जलती सुइयाँ चुभो देते अथवा उनके घुटनों में लकड़ी फँमाकर, उनसे उसके हाथ उल्टे बाँध देते। तब वह खड़ा-खड़ा अट्टहास करता और कुरुबा लोगों की बहू-बेटियों से, लगान के बदले, वासना का सौदा करता।

गयासुद्दीन दमग़ानी उसका मामा था लेकिन सही बात तो यह थी कि सुल्तान के न तो कोई भानजा होता है और न सुलतानी भानजे का कोई मामा होता है। इस सचाई से फिरोज़ बेखबर न था। यों तो उसका बड़ा भाई भी सुलतान था और उम समय क्या वह मलाबार का सूबेदार न था ? इसलिये उसे वाक्चातुरी के दुर्ग में से बाहर आना पड़ा। फिर बड़ी कठि-नाई पर उसे यह समझ में आया कि अपनी बातचीत के दौरान में वह व्यग्रता दिखा गया और सैयद मंजूरशाह ने उससे लाभ उठाया है। यह फिरोज़ का कटु अनुभव था।

इस कटुता को हृदय में छिपा कर और बाहर बाहर स्वस्थता का प्रद-र्शन कर, बोला—"तो सैयद साहब, मैं ठहरा सिपाही, एक वार और दो टुकड़े, मेरा काम। इसमें बताइये आपका सहयोग मुझे मिल सकेगा ?"

"किसमें ?"

'किममें ?" मलिक फिरोज़ तनिक भी निराशा के लिये तैयार न था। उसका खयाल था कि ज्योंही मैंने अपनी बात चलाई, त्योंही, सैयद उसके प्रवाह में बह जायेगा। इस दृष्टि से फिरोज़ निराशा के लिये प्रस्तुत न था।

क्षणभर के लिये उसको यह न सूझा कि बातचीत की शतरंज की चाल में सैयद के सामने वह कौन-सा प्यादा रखे ?

"किसमें ? आप मुझसे पूछते हैं किसमें ? तो क्या अब तक की मेरी फिज़ूल गई ?"

"मलिक साहब, अब तक की आपकी बात आपकी परेशानियों के बाबत थी और किसी की परेशानियों के प्रति सहानुभूति न बतानेवाला पत्थर-दिल कौन आदमी होगा ?"

मलिक तो अवाक रह गया। पलभर के लिये आशंकित हुआ कि सैयद के पास आने में उसने कहीं भयंकर भूल तो नहीं की है ? सुलतान मामा और भानजे की बात चलाकर, भानजे को मामा सुलतान के गुस्से की आग में धकेलकर सैयद सुलतान का पिट्ठू तो नहीं बनना चाहता है ?

उसने मुबारक की तरफ देखा। नागर नायक को देखा। उमर कोतवाल तो बेचारा अपने ही घावों को सहला रहा था सो, दूसरे के दर्द को क्योंकर समझता !

नागर नायक ने कहा—"मलिक साहब, अगर आपकी इजाज़त हो, तो मैं कुछ कहूँ ?"

"तेरे मालिक को अब कुछ नहीं कहना है, ऐसी सूरत में तू क्या कहेगा ?"

मुबारक को सैयद के प्रभाव से चकित और सकपका-सा देखकर फिरोज ने तिरस्कारपूर्वक कहा—"तू क्या कहना चाहता है ?"

"मुबारक मियाँ, आपकी इजाज़त हो तो मैं कुछ कहूँ ?"

"मलिक साहब तुझे इजाज़त देते हैं।"

"देखिए भाई, मैं न तो सुलतान का भानजा ही हूँ और न मोपलाओं का सैयद ही हूँ। मैं तो रहा बंदा सिपाही, दोरंगी। यह तो मुबारक मियाँ की मेहरबानी है कि वे मुझे सिपाही की जगह नायक बनाकर साथ में रखते हैं, किन्तु, चाहे जो हो, हूँ तो मैं सिपाही। इसलिये मैं सीधी बात ही समझ सकता हूँ—एक घाव और दो टुकड़े। दाइन से पेट छिपाने से क्या फायदा ?"

"यानी ?" मलिक ने कड़क स्वर में पूछा।

"मलिक साहब, मतलब यह है—आपके अधिकार का राज्य आपके मामा से छीन लेना है। आप उसे वापस लेना चाहते हैं। सैयद साहब भी कुछ चाहते हैं। जल्दी से दोनों अपनी बात कह दीजिए। मलिक साहब, आप ही बता दीजिए अगर तख्त हासिल करने में सैयद साहब आपके मददगार साबित हों तो आप बदले में उन्हे क्या देंगे और आप भी सैयद साहब, बतला दीजिए कि क्या आप चाहेंगे ? अगर एक दूसरे से अपने दिल छिपाकर बैठेंगे तो सुबह होने तक भी किसी बात का फैसला नहीं होगा। आगे जैसी आपकी मरजी !"

मलिक फिरोज मुँह फेरकर सुनता रहा। पांच पीढ़ी के उस षड्यन्त्रकार को ऐसी सरल बात भी समझ में न आई। उसे महसूस हुआ—अपना रहस्य दूसरे को बता देना, उचित है ? विपक्षी के हाथ में अपनी गर्दन रख देना कहाँ तक ठीक है ? यदि हम दूसरों की बात और नीयत जान सकें, किन्तु दूसरा कोई हमारी नीयत का हाल न जान सके, तभी हम सुरक्षित रह सकते हैं। इसीलिए नागर नायक का कथन सुनकर उसका चेहरा उतर गया।

लेकिन सैयद मंजूरशाह एकदम खड़ा हो गया—"वाह खूब ! जिस जगह हमारी अक्ल ने काम न दिया उस जगह की गाँठ को इस सिपाही ने काट दिया। इसकी बात कितनी साफ और सीधी ! वाह मेरे प्यारे, वाह !! यदि मुबारक खान को तेरी जरूरत न हो, तो आज मेरे रिसाले में, मैं तुझे अपना मीर मुंशी बनाऊँगा ! सुनिए मलिक फिरोज, मुझे इस सिपाही की बात पसन्द आई। अगर हम अपने ही तरीके पर बातों की खींचतान करते तो तना हुआ तार भी नहीं टूटता... मेरी बात आप जानते हैं। मेरी मर्जी है कि मगरूर और उसके आसपास की पाँच सौ गाँवों की मसनद मुझे मिले। मेरी उपाधि खान उमरा रहे, मेरी सीमा से गुजरने वाले काफिलों का महसूल मेरा। है कबूल ? कबूल हो तो हाथ में उठाइये कुरान !"

"कबूल !' मलिक फिरोज के मन में आशंका थी कि शायद मंजूरशाह सारा मलाबार मांग बैठेगा, उसके बजाय उसने सिर्फ पाँच सौ गांवों की

मसनद की शर्त रखी, आधे मलाबार से ही सन्तोष कर लिया। हालाँकि शर्त से मदुरा की सल्तनत की सीमा छोटी पड़ जाती थी परन्तु...।

"आपकी बात मुझे स्वीकार है, सैयद साहब ! मेरी भी एक शर्त है—यदि मदुरा की सल्तनत कभी विजय नगर पर आक्रमण करे अथवा मुल्क पर कब्जा करे अथवा पूर्वी-समुद्र की ओर एंबी और नैपाल तक अपनी सीमा बढ़ाये, तब आप इस काम में भारी मदद करेंगे। हमारी मदद के लिए मसनदी फौज हमें देंगे।"

"कबूल !" सैयद ने कहा—"एक बात तो आप जानते हैं न मलिक फिरोज, आपको याद दिलाता हूँ। उस बात को मैंने अपनी शर्त में नहीं रखा; क्योंकि इस बात को आप पहले पूरी करेंगे, शर्त के रूप में नहीं लेकिन कर्त्तव्य के रूप में, उसके बाद ही आप सल्तनत के तख्त पर सुल्तान बनकर बैठ सकेंगे।"

"बताइये।"

"कर्नाटकी आनंदी को पूरे सम्मान और अदब के साथ, आप मुझे सौंप देंगे।"

"ओह, यह कौन-सी बड़ी बात है ! अगर आप ने न फरमाया होता... तब भी...बहिश्त की उस हूर को और आप की मोहब्बत की कहानी को मदुरा में कौन नहीं जानता ?"

"तब आप अपनी चाल, कब चलना चाहते हैं ?"

"जब भी आप चाहें।"

"इसी वक्त। इकबाल, इधर आओ।"

"इकबाल ? भला, उससे क्या काम ?"

इकबाल अन्दर आया। उसने सैयद के पैर चूमे।

"इकबाल।" सैयद ने कहा—"कह देना अपने साथियों, मोपलाओं और मावलाओं, कुरुबाओं और जासूसों को और तमाम को कि अब तुम्हारी मुसीबत के दिन पूरे हो गये। अब तुम्हारे चैन का चाँद, आसमान में चमकने ही वाला है। लुटे हुए लोगों को उनके खेत-खलिहान वापस मिल जायेंगे। हारे हुए लोगों को उनकी बहन-बेटियाँ वापस मिल जायेंगी। भागे

हुए लोगों के अपमान का बदला लिया जायेगा। नष्ट सम्पत्ति का हर्जाना चुकाया जाएगा। न्याय के लिए पंचायत बैठेगी और वह जिस प्रकार चाहेगी, न्याय किया जायेगा। आज से मदुरा के सुल्तान मलिक फिरोज़खान हैं। दुखियों के दुख के दिन अब दूर होनेवाले हैं।"

"आमीन, आमीन, आमीन !" इकबाल ने आशीर्वचन का उच्चारण किया और पूछा—"और इक़बाल को इस काम में क्या मिलेगा सैयद साहब ?"

"इक़बाल को सैयद अमीर उमरा मंज़ूर शाह के पाँच सौ गाँवों की मसनद में व्यापार, काफिलों की बढ़ती और मुनाफे का हक दिया जायेगा।"

"आमीन, आमीन, आमीन !" इक़बाल ने सैयद की ओर हाथ जोड़ कर आसमान की ओर हाथ जोड़े—"सैयद साहब, वह कब मिलेगा ?"

"इसका जवाब तुझे मदुरा के सुल्तान, मलिक फिरोज़ उर्फ नासिरुद्दीन तृतीय देंगे। आज से तुम्हारी और तुम्हारे सभी मोपलाओं, मालिवाओं की खिदमत इनके कदमों में है। ये मदुरा के भारी सुलतान हैं और तुम सब लोग इनके खादिम हो।"

"और।" उमर कोतवाल अपने आपको रोक न सका। उसने वेदना से भग्न मुख किन्तु कुटिल स्वर में कहा—"और मैं मदुरा के सुलतान की फौज का सिपहसालार हूँ।"

"कुछ देर पहले आप मुसाफिर और मैं लुटेरों का आज़म था। अब आप सिपहसालार हैं और मैं तावेदार सिपाही हूँ। वक्त वक्त का काम करता है कोतवाल साहब, बलिहारी वक्त की ही है !"

३ ★ महामात्य माधव

आनेगुण्डी का विशाल दुर्ग । हाथी जितना बड़ा तो इस दुर्ग की दीवारों का निचला भाग था । दुर्ग में विशाल और खुला हुआ मैदान था । ठेठ सामने, कोने में छोटी हवेलियाँ थीं ।

अनेक पराजयमालाओं, अनेक अन्तःकलहों और अनेक उतार-चढ़ावों की सर्वांगीण विलोचनताओं में से एक नई श्रद्धा के आधार पर एक समर्थ महाराज्य की रचना हो रही थी । इस महाराज्य का महानगर अभी निर्माणावस्था में था । आगामी दस वर्ष में भी इसका निर्माणकार्य पूरा होनेवाला नहीं था । दुर्ग की दीवारों पर, चार योजन से भी अधिक दूरी से काम्पिली गढ़ के खँडहर दृष्टिगोचर होते थे । पूर्व में कुछ ही दूर पर पम्पापति का क्षेत्र था और भगवान् कालमुख विद्याशंकर की समाधि के दर्शन होते थे !

इन दोनों के मध्य में आजकल पाँच लाख होलेय, दो लाख राज, बावन हजार बढ़ई, बहत्तर हजार लोहार, इक्यावन हजार मिस्त्री, तीन लाख पालेर मजदूरिनें, डेढ़ लाख भिश्ती, तीन लाख गाड़ियाँ, पाँच लाख बैल, एक लाख गाड़ीवान वेलालुर चीटियों की भाँति चल रहे थे । रात-दिन काम चल रहा था । रात में कारीगरों की सुविधा के लिये जो मशालें जलाई जाती थीं, उनकी रोशनी दौलताबाद की सीमा तक पहुँचती थी और लोगों में यह कहा जाता था कि कोटगिरि के वनों में एक बरगद की छाया के नीचे बैठा हुआ

सूबेदार इस्माइल इस रोशनी को एकटक देखा करता और इसका मर्म समझने का प्रयत्न करता। रोष में आकर कई बार वह ज़मीन में भाला गाड़ देता, कई बार बरगद के नीचे काठ का छोटा-सा नगर बसा कर भस्म कर देता।

कई बार दक्खन में दिल्ली की अन्तिम छावनी दौलताबाद की निज़ामत का सूबेदार इस्माइल मुख सुलतान मुहम्मद को समझाता कि इस नये साम्राज्य को उठने से पहले ही बर्बाद कर देना चाहिये। साम्राज्य के इस राजनगर में सर्व प्रकार से सम्पन्न, पाँच सौ महादेव धामों को तुरन्त विनष्ट कर देने के लिये सुल्तान मोहम्मद को प्रेरित करता।

लेकिन सुलतान मोहम्मद के सामने कई परेशानियाँ थीं। बड़ी से बड़ी मुसीबत यह थी कि सुलतान मुहम्मद इसलिये निर्धन था कि सुलतान अलाउद्दीन का अनन्त राजकोष कहीं गायब हो गया था। और जब सुलतान निर्धन होता है, तब उसके अमीर और मलिक वफादार नहीं रहते। दिल्ली, मालवा और अन्य सभी स्थानों में असन्तोष की आग उठ रही थी और विस्फोट होने में विलम्ब नहीं था।

इनमें गुजरात तो साफ़-साफ़ सुलग रहा था। वहाँ मलिक तग़ी और हकीम जफरखान का बलवा काबू में नहीं आ रहा था। तीन सूबेदारों को मार दिया गया था। सरकारी खजाने लूट लिये जाते थे और दो बार तो सुलतान को भी प्राण बचाकर भाग जाना पड़ा था। तग़ी चमार, ज़फर खान और उसके साथी बलवा फैलाने के लिये गाँव-गाँव, घर-घर घूम रहे थे। पाटन की निजामतें भी अपने अपने शहर में शरण ले रही थीं। तुर्क कोई अकेला निकल न सकता था। कहीं मदद भेजी न जा सकती थी। कोई अमीर या मलिक खेत तक न जा सकता था।

सुलतान के लिये यह हालत भयंकर थी। गुजरात के इस बलवे से मालवा भी भड़क रहा था। दिल्ली में खलबली मची थी, दौलताबाद (देवगिरि) काँप रहा था। मोहम्मद तुग़लक ने दौलताबाद को अपनी राजधानी बनाने का निश्चय किया और इस निश्चय के विरुद्ध, गुजरात के तग़ी चमार ने तुर्कों से बदला लेकर अपना विरोध प्रदर्शित किया। दिल्ली

से जो लोग दौलताबाद के लिए चले थे; उनमें से बहुत कम लोग दौलताबाद जीवित पहुँचे और जो पहुँचे वे रास्ते में लूट लिये गए थे।

इसलिये सुल्तान मुहम्मद तुग़लक अपनी परेशानियों में लगभग पागल था। इस वक्त उसे विजयनगर की ओर देखने तक की फ़ुर्सत न थी।

और तग़ी चमार विजयनगर से निरन्तर सहायता पा रहा था—आदमी, हथियार, धन और अन्य सामग्री बराबर उसके पास पहुँच रही थी। राज-संन्यासी वीर बल्लालदेव का पुत्र वल्लभदेव इस समय गुजरात में था। वारंगल के कृष्णाजी नायक का पितृव्य-भ्राता प्रलय नायक भी गुजरात में घूम रहा था। गुजरात-विद्रोहियों से विजयनगर का सम्बन्ध अखण्ड रहे, इस हेतु वनों और पर्वतों में कृष्णाजी नायक का सम्बन्धी कपाय नायक के पचहत्तर पांडच नायक, महत्व के स्थानो में अपनी चौकियाँ डाल कर पड़े थे।

इसलिये सुलतान मुहम्मद तुग़लक को विजयनगर में दिलचस्पी नहीं थी। दौलताबाद का सूबेदार कांटगिरि के बरगद के नीचे, काठ के नकली विजयनगर-साम्राज्य को जलाता हुआ आसपास की खबरो की छाया में विचार-मग्न था। उसके विचार का विषय था—सुलतान गयासुद्दीन से अपनी लड़की की शादी करके अफ़ग़ान मलिक ने मदुरा से अपना सम्बन्ध स्थापित किया है...।

और तुरुष्क सल्तनत की इस अवस्था में, आने गुण्डी में विजयनगर के सूत्रधार अपने साम्राज्य की व्यवस्था कर रहे थे।

ऐसे आने गुण्डी के दुर्ग के प्रांगण में, पर्णकुटी-जैसे एक कुटीर के सम्मुख, एक दिन एक अति वृद्ध और जर्जरित व्यक्ति आकर खड़ा हो गया। लगता था कि वह थका हुआ है। भूखा भी वह होगा, क्योंकि वह अपना पेट दबा रहा था और बड़ी लकड़ी के सहारे लड़खड़ाता खड़ा हुआ था।

वह वृद्ध था। उसका कद ऊँचा था। उसकी दाढ़ी और मूछों के बाल बढ़े हुये थे। सिर के केशों में लम्बी सफर की धूल सनी हुई थी। उसके नेत्र व्यथित प्रतीत होते थे।

वृद्ध ने पुकारा—"अरे नायक!"

"क्यों भाई ?"

"सामी !" वृद्ध ने काँपती हुई वाणी में कहा—"मैं मिलना चाहता हूँ।"

"किससे मिलना है ?"

"जो हमारी बात सुने।"

"आप कहाँ से आ रहे हैं ?"

"बड़ी दूर से। ठेठ येलु से।"

"आपको क्या काम है ? बतायेंगे ?"

"सामी, हम अपनी कष्ट-कथा कहते-कहते थक गये हैं। जो हमारी रामायण सुनकर, कुछ करने को प्रस्तुत हो, उसी से हम कुछ कहेंगे, सुनेंगे।"

"सामी !" नायक ने कहा—"मैं आपको व्यर्थ ही नही पूछ रहा हूँ ! आपकी बात सुनकर ही मैं बता सकता हूँ कि आपको किसके पास जाना चाहिए ?"

पर्णकुटीर से किसी ने पूछा—"क्या है, अमाराम ?"

"अमाराम, तुम अमारक्त हो ?" वृद्ध ने पूछा।

लेकिन वृद्ध को उत्तर देने के बजाय अमाराम पर्णकुटीर में गया, और कुछ देर के बाद लौटकर आया—

"चलिए, सामी !" उसने कहा। "महामात्य माधव आचार्य के पास।"

"माधव अमात्य के पास ?" वृद्ध ने आकाश की ओर हाथ जोड़े—"हे प्रभो, आखिर कोई सुननेवाला मिला !"

अमाराम के पीछे-पीछे वृद्ध चला।

पर्णकुटीर में एक लम्बा बरामदा था। उसमें दो कमरे भी थे। एक कमरे में एक युवती इधर-उधर घूम कर रसोई की तैयारी करती प्रतीत होती थी।

दूसरे कमरे में कई पुस्तकें, प्रतियाँ, कागज चारों ओर रखे थे। और कई प्रतिलिपिकार पंक्तिबद्ध, मुक्त-शिखा, नंगे-बदन बैठे लम्बी लेखनियों से कुछ लिख रहे थे—भोजपत्र पर नकल कर रहे थे। एक पत्र लिखा जाने पर दूसरा व्यक्ति पुस्तक के अनुसार उसकी जाँच करता। इस प्रकार लगभग पच्चीस तीस प्रतिलिपिकार और संशोधक अनवरत कार्य कर रहे थे।

—सबके बीच में एक नवजवान बैठा था। वह पदासन पर बैठा था। बड़ा सावधान और सचेत प्रतीत होता था। उसका मुंह बंद था। आँखें शांत गंभीर थीं। चार-पाँच-दस व्यक्ति अपने-अपने स्थान पर जो कुछ पढ़ रहे थे, उसे सुनकर यह शतावधानी महाविद्वान् सबकी त्रुटियाँ—स्वरदोष, लिपिदोष और अक्षरदोप पकड़कर सशोधित करवाता !

दोनों कमरों के बीच के द्वार के निकट, दीवार के सहारे साधारण कुशासन पर यह तरुण तपस्वी बैठा था। ब्राह्मण प्रतीत होता था। उसके भाल पर बड़ा त्रिपुंड सजा था। गले में रुद्राक्ष की पतली मालाएँ थीं। शिखा मुक्त थी। उसकी अवस्था पच्चीस से अधिक न थी। उसका चेहरा, लम्बा, पतला और नुकीला था। उसकी त्वचा का रंग, इस प्रदेश के लोगों के रंग से अधिक गौर था। उसके सामने एक काष्ठपटल रखा था, जिस पर एक खुली पोथी रखी थी। समीप के एक आधार पर कुछ भोजपत्र, ताम्रपत्र तथा बांस की नलिकाएँ थी। दूसरी ओर के एक आधार पर लाल कपड़े में राजकीय पत्र-पत्रक रक्षित रखे थे। उसके आसन और आधार के मध्य में बांस की एक बड़ी नली पड़ी थी। नली बहुत बड़ी थी, जो या तो किसी विशेष प्रकार के बांस से बनी थी, अथवा, किसी वृक्ष के तने को छेदकर बनाई गई थी।

दर्शन में वह दुर्बल और गंभीर प्रतीत होता था। उसके चेहरे पर, सिवाय एकाग्रता के दूसरा कोई भाव दृष्टिगोचर न होता था। उसकी आँखें, नीले भूरे रग की थीं और, मानो किसी गहरे कुएँ में आप नजर डालते हों, इस प्रकार की प्रतीत होती थीं।

उसकी देहयष्टि पतली थी। उसके हाथ और पग प्रमाण की अपेक्षा अधिक लम्बे प्रतीत होते थे। उसकी उँगलियाँ पतली लेखनी-जैसी थीं। और उस पर, उसके नख गुलाब की पँखुड़ियों-जैसे लगते थे।

दोनों कमरों के द्वार के बीच की, उसके आसन के पीछे की दीवार पर एक तलवार लटक रही थी, उसके निकट सन्यासी के कपड़े लटक रहे थे। एक अँगरखा और एक पायजामा भी था। भगवा रग की पगड़ी भी थी,

जिस पर नख-जैसी हीरकमाला के पन्द्रह हीरों के बीच में, कबूतर के अंडे जितनी बड़े-बड़े नीलम की राजकीय मुद्रा थी।

वृद्ध इस दुबले आदमी को देखता ही रह गया!

अमाराम ने दोनों हाथ नीचे झुकाकर कहा—"महामात्यजी, अतिथि आए हैं।"

यह व्यक्ति, यह तरुण तपस्वी, भगवान् कालमुख विद्याशंकर का शिष्य और विजयनगर साम्राज्य का महामात्य, माधव आचार्य, मायणसुत माधव था!

"विराजिए!" माधव ने कहा—

"अमाराम, अतिथि के लिए आसन बिछाओ।"

अमाराम ने आसन रख दिया। वृद्ध दोनों हाथ जोड़कर उस पर बैठ गया।

वृद्ध मानो निराश हो गया! अरे राजा का यह महामात्य इतना ग़रीब—दीन दरिद्र है, इससे क्या राहत मिलेगी? इसे कहा जाए, या नहीं? वृद्ध सोचता रहा।

"स्वस्थ होइए। जलपान कीजिए। फिर जो कुछ कहना हो कहिए।"

वृद्ध चुप रहा। भीतर से एक युवती आकर जलपात्र रख गई।

माधव ने कहा—"देवी दीपावली, यह अतिथि दूर से आए हैं। इन्हें मधुकरी-जैसा पदार्थ कुछ दे सकेंगी? आवास में और कोई है?"

"जी, अभी लाती हूँ।"

वृद्ध तो उस नारी को मूढ़वत् देखता रहा। मात्र एक वस्त्र, और कोई शृंगार नहीं! शोभा नहीं, कान में कर्णफूल नहीं, गले में कंठी नहीं। हाथ में बाजूबंद नहीं। पग में पायल नहीं। अंग पर रेशमी अम्बर नहीं। आसपास कोई दास नहीं, दासी नहीं। किसी प्रकार का शृंगार या वैभव नहीं। फिर भी उसका वदन, मानो उसे देखते ही रहिए!

महामात्य की पत्नी देवी दीपावली—सो क्या यही है वह?—वृद्ध विस्मय और विचार में पड़ा था।

वृद्ध को देखकर महामात्य माधव उसका भाव समझ गए। उनके नित्य-

गम्भीर वदन पर स्मिति की रेखा झलकी। उन्होंने कहा—"अतिथि, यह घर ब्राह्मण का है। सरस्वती की इस पर्णकुटी में दूसरा अन्न प्रवेश नहीं पा सकता। मेरा धर्म ब्राह्मण का है। विद्या के विशाल भांडार पर धूलि का जो ढेर लग रहा है, उसे दूर कर देने को प्रयत्नशील मैं एक अकिंचन ब्राह्मण हूँ।"

"लेकिन, मुझे...मुझे तो यह बतलाया गया था कि आप महामात्य हैं। तभी मैं यहाँ आया। ब्रह्मदेव, मेरा कार्य शासन-सम्बंधी है, किसी स्वाध्यायी ब्राह्मण की पाठशाला का नहीं।...शायद किसी ने मुझ से परिहास किया है। मेरी मज़ाक की है।"

"किसी ने भी तुम्हारी मज़ाक नहीं की। पूर्वजन्म के शेष कर्मों को भोगना ही पड़ता है। अतएव कर्म के बन्धन वश और स्वर्गीय गुरुदेव की आज्ञा से मैं विजयनगर साम्राज्य का महामात्य बना हूँ।"

"परन्तु क्षमा करिये महामात्य जी, मैंने तो यह कल्पना की थी कि इतने बड़े साम्राज्य का महामात्य अपनी पदवी के अनुरूप वैभव के बीच में रहता होगा! उत्तर में तुर्क गर्जन कर रहे हैं। सिर पर मौत के नगारे बज रहे हैं। ऐसी दशा में सेना और प्रबन्ध कुछ दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है।"

"अतिथि, आप नक्कारों को, प्रताप को, दास-दासियों को इतना अधिक महत्त्व देते हैं? क्या यह उचित है? कर्नाटक राज्य के पास नक्कारों की क्या कमी थी? अपने वज़न जितने ही हीरे वे सिर से पैर तक धारण करते किन्तु आप जानते हैं कि उन नक्कारों और हीरों ने और उस वैभव ने उन्हें तुर्कों के चरण चूमने से नहीं रोका। गुजरात के राजा रायकर्ण के पास क्या नक्कारों की कमी थी? सुनते हैं, सिर्फ उसकी तलवार की मूँठ पर सवा सेर हीरे जड़े हुए थे, फिर भी वे हीरे तुरुष्कों के सामने रायकर्ण के पलायन को न रोक सके। यादवराज रामचंद्र क्या नक्कारों के प्रताप से वंचित थे? किन्तु वे देखते रह गये और तुर्क सब कुछ लूटकर ले गये! अतिथि, मेरे पास सदैव समयाभाव रहता है। यदि आप महामात्य से बातचीत करना चाहते हों तो मुझ से कीजिये और महामात्य के राजकीय प्रताप से अपनी

कष्ट-कथा कहना चाहते हों तो दौलताबाद के सूबेदार इस्माइल मुख, मदुरा के सुलतान गयासुद्दीन अथवा दामिलवन के शम्बूरराय से कहिये।"

"अविनय क्षमा कीजिये महामात्य जी! हम दुःख की ज्वाला से जले हुए हैं और घर-बार की दृष्टि से लुटे हुए अपाहिज हैं। कोई हमारी कथा सुनने-वाला नहीं। आप हमारी बात सुनने के लिए तैयार हैं? अविनय क्षमा कीजिए।"

"इसमें अविनय की क्या बात है? यदि कोई बात आप की समझ में न आई, तो मैंने उसका स्पष्टीकरण कर दिया। याद रखिए, आप अपनी बात महामात्य से कह रहे हैं। साथ ही, एक ब्राह्मण से भी कह रहे हैं। संयोगवशात्, यदि महामात्य कुछ न कर सका, तो भी ब्राह्मण की शुभ-कामना तो आपको अवश्य मिलेगी।"

"महामात्य जी, मेरा नाम है कुमार रेड्डी। मैं तोलू के रेड्डियों का श्रेष्ठि हूँ। हम लोग अपनी जाति के अतिरिक्त किसी से लग्न सम्बन्ध स्वीकार नहीं करते। हमारे इस आचार से आप परिचित हैं किन्तु अब दामिलराज शम्बूरराय ने हमसे एक कन्या की माँग की है। वह कहता है, यदि रेड्डियों की किसी कन्या का मुझ से विवाह होगा, तभी मैं उन्हें अपने पथक में रहने और व्यापार करने दूंगा। हमने उसके सामने रायरेखा की दुहाई दी तो वह कहने लगा कि रायरेखा को मैं नहीं मानता और न मैं विजयनगर का सामन्त ही हूँ। न उसका रायस् ही हूँ। अब यह शम्बूरराय और दूसरे वन-राजा मदुरा के सुलतान से मिल गये हैं और अपनी सेना में तुर्कों की भरती भी कर रहे हैं। नैपाल (जीञ्जी के सम्मुख समुद्र में एक द्वीप नैपाल के नाम से विख्यात है) और मयलापुर (आज का मद्रास) में उसने नौकाओं की भारी तैयारी की है और वहाँ के रेड्डियों के सामने भी इसी प्रकार की मांग रखी है। इसलिए हम लाखों वराह की अपनी सम्पदा, स्थावर-जंगम जायदाद छोड़कर चले गये हैं।"

"अमाराम।" महामात्य माधव ने पुकारा—"ये कुमार स्वामी राज्य के अतिथि हैं। इनके सभी साथियों का सर्व प्रबन्ध किया जाय। जाइये कुमार स्वामी, आप नागदेव के साथ जाइये।"

"जी, लेकिन मेरी बात...।"

"अब वह हमारी बात है, रेड्डी! आपको विजयनगर राज्य में विश्राम मिलेगा।"

"लेकिन हमारी दौलत....हमारा व्यापार—हम कुल सवा सौ परिवार यहाँ आये हैं!"

"मैंने कह दिया न, आप सबको यहाँ उचित विश्राम मिलेगा। क्या विश्राम शब्द में सभी बातों का समावेश नहीं है?"

"जी लेकिन....।"

"देखिये, अपने साथियों से कहिये कि किसी को कुछ खोना न पड़ेगा।"

"जी।"

"और नागदेव, कुमार कम्पन को मेरे पास भेज दो।" महामात्य माधव ने आदेश दिया।

"जी।"

नागदेव चला गया। अतिथि भी गया। थोड़ी देर में ही राय बुक्काराय का छोटा भाई कुमार कम्पन वहाँ उपस्थित हुआ।

"कुमार!" महामात्य ने कहा—"अब तुम्हारे लिये अनुकूल अवसर आ पहुँचा।"

"जी, मैं आपके आदेश के लिये उपस्थित हुआ हूँ।"

"तो, जाओ, कावेरी के उद्गम से और वहाँ से नैपाल तक विजयनगर साम्राज्य की सीमा को स्वस्थ करो, निर्भय करो। मैं तुम्हें इस समस्त प्रदेश के अवज्ञाराय के रूप में नियुक्त करता हूँ। तुम्हारे साथ सेनापति के रूप में सायण, मंत्री के पद पर गोपन पंडित और समुद्राधिपति (सामुराय) के रूप में सोवन्ना नायक रहेंगे।"

"जी मैंने इस विषय पर विचार किया है। आपकी आज्ञा हो तो एक शंका पूछना चाहता हूँ?"

"पूछिए।"

"कावेरी प्रदेश के दामिलवन का शम्बूरराय, मदुरा के सुलतान से मेल-जोल बढ़ा रहा है।"

"मदुरा को मैं सँभाल लूँगा । आप अपनी तैयारी कीजिये ।"

"जी ।"

"सायरण आपके साथ में है । गोपन है । सोवन्ना है और तुम स्वयं हो। विजय करो । और कुमार !"

"जी ।"

"अपनी देवी, गंगादेवी को भी साथ ले जाना । वे कवियित्री हैं। ईश्वरेच्छा होने पर उनकी शक्ति के योग्य प्रसंग उन्हें प्राप्त होगा ।"

"जी, मदुराविजय...।"

"श्रद्धा रखो । पुरुषार्थ करो, कुमार कम्पन, तुम्हारा भाग्य विशाल है। इतिहास तुम्हें भूल न सके, ऐसा पुरुषार्थ करना न चूकना । तब इतिहास भी तुम्हें नहीं भूलेगा । इस घटनावली को तुम्हारी सुहागी, सभागी सौभाग्यवती दारा देखेगी । जाओ, विजय करो !"

४ ★ ज्ञान का आलोक

वृद्ध रेड्डी कुमारस्वामी अमाराम के साथ विदा हो गया। कुमार कम्पन भी वहाँ से विदा हुआ, पूर्ण उत्साह के साथ। आज सात साल से संगम बन्धुओं के हाथ बंधे हुए थे। सब को महामात्य माधव का स्पष्ट आदेश था—तुंगभद्रा के उत्तरी किनारे के पार का तुरुष्क-प्रदेश और कावेरी के दक्षिणतट पार स्थित शम्बूरराय का नैपाल, मयलापुर और क्षुब्धरोष का द्रमिलवन तथा मदुरा की सल्तनत मेरा विषय है, अतएव मैं यह देख लूंगा कि यहाँ लोग सताये न जायें। सब मिलकर विजयनगर साम्राज्य को सुदृढ़ करो। रायरेखा पर अमल करो। नयी व्यवस्था, नया प्रबन्ध और नये सैन्य को सुदृढ़ बनाओ।

वीर-वणिक पृथ्वी सेट्टी वायीजन महाराज ने निवृत्ति का विचार छोड़-कर अपने वचन के अनुसार विजयनगर में सोने की वर्षा की थी।

रायबुक्काराय महामंडलेश्वर थे। उनका काम था समस्त विजयनगर की सेना का निर्माण। भालारी बिब्रोया अब श्रवण बेलगोला का श्रेष्ठि था। उसका काम था अपने प्रदेश में हथियार और दारुगोला वगैरह तैयार कराना। इसके अलावा तुरुष्क दूर का हुनर अपने साथ दक्षिण में लाये थे और वे लोग बिरंगियों और बरकन्दाजों का प्रयोग करते थे। ये बड़े अच्छे हथियार थे।

युद्ध का एक सनातन नियम है कि वह शूरवीरों और भूतकाल के इतिहास से प्रेम नहीं रखता। युद्ध का वह नियम यह है कि शस्त्रास्त्र और साधनों की आधुनिकता के सामने योद्धाओं का शौर्य और वीरत्व किसी काम नहीं आता। इसलिए युद्ध में अगर विजय प्राप्त करनी है तो नये नये हथियार चाहिये और उनके प्रयोग में अभ्यस्त सेना चाहिये और शत्रु-सेना के सामने आगे बढ़कर उसके हथियारों से मरने को तैयार रहनेवाले बहु-संख्यक मरणवीर चाहिये।

और इनमें भी यदि कोई नया शस्त्र, विपक्षी ने आज तक जिसे न देखा हो, जिसकी कल्पना न की हो, उस शस्त्र की प्रत्यक्ष-विनाशकता की अपेक्षा उसका परोक्ष भय अधिक काम करता है।

इस लिये बिरंगियाँ ढालना, गोला-बारुद बनाना और उनकी आवाज़ से हाथी और घोड़े न भड़कें, ऐसी तालीम हाथी घोड़ों को देना—यह सब बिबोया शेट्टी का विशेष विषय था।

विजय-नगर राज्य में चार मंडलों की रचना की गई थी—उत्तर, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम। उत्तर मंडल का दंडनायक सोमेश्वर सोलंकी था। पूर्व समुद्र सहित पूर्व मंडल का दंडनायक सोवन्नानायक था। दक्षिण मंडल का दंडनायक अवज्ञाराय कुमार कम्पन था। पश्चिम मंडल का दंडनायक कुमार मराप्पा था। पश्चिम समुद्र का सामुरुप (समुद्राधिपति) लखननायक था। तुंगभद्रा और पश्चिम समुद्र का मध्यवर्ती प्रदेश—जिसमें होनावर और बदामी के दुर्ग थे, उसका सेनापति मल्लिनाथ था। जिस प्रकार कुमार कम्पन का सेनापति सायण आचार्य और मंत्री गोपन आर्य था, उसी प्रकार कुमार मराप्पा के सेनापति के रूप में था कुमार मुडाप्पा और मंत्री भोगनाथ था।

इसके उपरान्त विजयनगर राज्य के समस्त कार्यकारण और व्यवहार के निमित्त सात प्रकृतियाँ रची गई थीं। सप्तप्रकृति का अर्थ था, सात मंत्रियों का मंडल—दुर्ग, बल, धर्म, चमू, देव, आयु और विद्या। इन सातों मंडलों के सात अमात्य और उन पर महामात्य मिलकर विजयनगर साम्राज्य का अष्ट-प्रधान-महामंत्रिमंडल बनता था।

कुमार रेड्डी चला गया।

और कुमार कम्पन भी, सात सात वर्षों के उपरान्त अमूल्य अवसर-प्राप्ति के परमोल्लास में अपनी राजरानी गंगादेवी को शुभ समाचार देने के लिये गया।

अवश्य ही समाचार थे, क्योंकि जैत्र यात्रा (दूसरे राजा से युद्ध) और राघव कर्म (दिग्विजय) ये तो अनादि काल से राजाओं के विषय रहे हैं और राजरानी गंगादेवी ने कवि का मन पाया था। वे संस्कृत की विदुषी थीं और यद्यपि उनकी वय बहुत छोटी थी, तथापि महामात्य माधव यानी माधव आचार्य ने रामायण की प्रति के अंतिम-स्वरूप-निर्णय का कार्य उन्हीं को सौंपा था।

कुछ देर के लिये पर्णकुटी में शान्ति स्थापित हो गई। फिर से माधव आचार्य इसी प्रकार अपने प्रतिनिर्णय, साहित्य संशोधन-व्यवस्था में व्यस्त हो गये, मानो उनकी दृष्टि में राजकाज-जैसी कोई चीज़ ही नहीं थी।

कुछ देर तक उस कुटीर में आचार्य की लेखनी की चड़चड़ाहट के सिवाय कोई अन्य स्वर न सुनाई दिया।

कुछ और समय इसी प्रकार व्यतीत हुआ, फिर वहाँ पधारे—राय बुक्काराय, एकदम सादे कपड़े वे पहने हुए थे। वे आये, और अपनी पोथी पर सिर झुका कर कर्मरत महामात्य को नमन कर, विनतभाव से एक ओर बैठ गये। वे शान्त, स्वस्थ और मौन रहे और प्रतिक्षा करने लगे कि महामात्य अपने कार्य से निवृत्त हों।

अविलम्ब ही महामात्य ने अपना मस्तक उठाया, लेकिन एक ओर रख दी प्रति को तनिक परे सरका दिया और तब कहा—"आइये राजन्!"

"कुमार कम्पन ने मुझे बतलाया कि आपने उन्हें नियुक्त कर आदेश दिये हैं। भगवान्, ये आदेश मुझे प्रदान नहीं किये?"

"राजन्, सब ही आदेशों का भार आप ही पर है। इस समय उचित नहीं कि आप विजयनगर से बाहर पधारें।"

"मैं शिकायत नहीं करता।"

"मैं भी यह भी नहीं कहता कि आप शिकायत कर रहे हैं। राजेन्द्र, आप के महाभाग्य की रचना छोटी-छोटी विजयों के लिये नहीं हुई है। ये छोटे-छोटे कार्य आप छोटे लोगों के लिये रहने दें। आपके महाभाग्य का भार होगा समस्त साम्राज्य की रक्षा और उसके विरुद्ध उठनेवाले परम भयंकर भय के बादलों से लड़ने के योग्य अपनी सेना की सज्जा !"

"जी।"

"सुनिए राजन् ! उत्तर का वातावरण धीरे-धीरे भयावह होता जा रहा है। दिल्ली के सुलतान के पास धन की कमी है। अलाउद्दीन खिलजी की अनेक लूटों का महाभंडार खुशरू खान गुजराती ने कहीं छिपा दिया था। इसलिए आज विश्व की सर्वाधिक धनी सल्तनत कंगाल से कंगाल है। अब वह इस स्थिति में नहीं है कि अपने अमीरों और मलिकों को संतुष्ट कर सके। और राजेन्द्र, आप जानते हैं कि ये सब मलिक और अमीर धन के सूत्र से सल्तनत से बँधे हुए हैं। इनके बीच दूसरा कोई सूत्र नहीं।"

"तब भी क्या इनसे भय है ?"

"सारा वातावरण ही भयावह है। इस समय सुलतान, अमीर और मलिक भीतर ही भीतर, धन के लिए परस्पर लूट-खसोट कर रहे हैं। अतः चारों ओर बलवे और द्रोह फैले हुए हैं। इसके सिवाय दशा ऐसी है कि गुजरात के दावानल को ये बुझा न सकेंगे।"

"तो फिर ?"

"फिर इसका प्रत्यक्ष परिणाम यह होगा राजन्, कि दिल्ली सल्तनत के टुकड़े-टुकड़े होंगे। गुजरात अलग होगा, दौलताबाद अलग होगा।"

"फिर ?"

"फिर राजेन्द्र, हमारे सामने महात्रय का प्रकटन होगा। हमें बहुत-बहुत संग्रह करना है। उनके यहाँ संग्रह—जैसी कोई चीज़ नहीं है। उनकी नज़र आखिर में बारम्बार हिंदुओं पर पड़ेगी, जहाँ से उन्होंने एक बार अनन्त धन की लूट मचाई थी। फिर लूट के लिए इनका मन ललचाएगा, यही महात्रय हमारे खिलाफ खड़ा है। मदुरा तो पका हुआ फल है, राजन् ! वह तो किसी भी समय गिर जाएगा। इस लिए, कावेरी तट के युद्ध राजेंद्र

बुक्काराय के लिए नहीं हैं। आप तुंगभद्रा को अभेद्य बनाइए। साम्राज्य को वज्र बनाइए। राय हरिहर के अधूरे स्वप्न को पूरा कीजिए। राजन्, इस समय आपका दूसरा कोई धर्म नहीं है, दूसरा कोई कर्म नहीं है।"

माधव आचार्य को लगा कि इस कथन से भी राय बुक्काराय को संतोष नहीं हुआ है, अतः उन्होंने कहना जारी रखा—

"राजन्, आप राज्य के राजा हैं। किंतु मैं तो एक जीवन-कर्म ग्रहण किए बैठा हूँ। यह तो भगवान् कालमुख विद्याशंकर का आदेश है। अन्यथा वन-कुटीर में बैठकर, वेद की ऋचाओं को रटनेवाली और लुप्त शास्त्रों की शोध करनेवाली सात पीढ़ियों के ब्राह्मण पंडित का मैं पुत्र आज राज्य का महामात्य न होता। परन्तु आज जाति की रक्षा का प्रश्न है। यदि जाति ही न रही तब फिर वेदों और शास्त्रों का क्या होगा? अंततया वेद, शास्त्र, साहित्य, कला, विद्या, ज्ञान—ये सभी मनुष्य के लिए हैं, उसके कल्याण के लिए हैं। और यदि मनुष्य ही न हों, तब क्या होगा? इन शास्त्रों से हमारा कल्याण होता है, इस दृष्टिकोण को रखनेवाले और माननेवाले, इनमें जीवन-मरण की श्रद्धाएँ रखनेवाले लोग ही न रहेंगे! आज दक्षिण में यही प्रश्न प्रबल है। उत्तर की दशा हमने देखी है और यह भी देखा है कि वहाँ न तो कोई कालमुख विद्याशंकर-जैसा योगी इस युग में हुआ, न कोई राय हरिहर ही पैदा हुआ। न किसी को यह खयाल ही आया कि यह किसी एक राजा अथवा एक विदेशी के मध्य युद्ध का प्रश्न नहीं है, यह तो समस्त जाति और देश की रक्षा का प्रश्न है। हमारे उत्तरापथवासी बंधु एक-मन न हो सके। वे अपने समस्त पथ के समस्त साधनों, समस्त शक्तियों, समस्त सत्ताओं और विधानों का समुच्चय और समन्वय न कर सके। सौभाग्य से हमें तीन विभूतियाँ प्राप्त हुईं—जिन्होंने निजी स्वार्थ, निजी सम्पदा, और वासनाओं का त्याग कर अपने प्रदेश में त्याग का वातावरण तैयार किया। राजसंन्यासी बल्लाल देव ने अपने उत्कृष्ट उदाहरण द्वारा यह बतला दिया कि राज्य, राजसत्ता स्वार्थ अथवा अधिकार का साधन नहीं है; वह तो समस्त जनता की कल्याण कामना का संतुलन पत्रक है। बल्लालदेव का आदर्श उदाहरण देखकर, कई

अन्यान्य छोटे-बड़े सामन्त, नायक, दुर्गपाल और भूमिपति उनके पद-चिह्न पर चले ।"

"जी, परन्तु..."

"राजन्, मेरी बात सुनिए । आज तक मैंने ऐसी बात किसी से न कही । आपसे कहता हूँ, भविष्य में दूसरी बार नहीं कहूँगा । सुनिए, त्याग मनुष्य का स्वभाव नहीं है, मनुष्य की भावना मात्र है । परमार्थ भी मनुष्य का स्वभाव नहीं है, परन्तु भावना है । मनुष्य मात्र का अपने जीवन व्यवहार में द्रव्य, दारा, और व्यवहारादि, पंचसून और पंच प्रकृतियों की आवश्यकता पड़ती है । ये गृहस्थ-जीवन की शोभा हैं । किंतु त्यागी के लिए ये अंतराय हैं । मानव त्याग कक्षा पर प्रतिकाल खड़ा नहीं रह सकता । यह आशा रखना, मनुष्य स्वभाव के विपरीत है कि मनुष्य वर्षों और युगों तक त्याग और त्याग ही त्याग करता रहेगा !

"त्याग का जन्म तभी होता है जब कि मनुष्य के स्वभाव में जो कुछ सर्वशुद्ध है उस सर्व का किसी समय विस्फोट होता है । त्याग सदैव नहीं रहता । अग्नि जितनी अविलम्ब प्रतीत होती है, उतनी ही शीघ्र बुझ जाती है, इस बात को याद रखिएगा । आज हमारे यहां जाति-समन्वय-आन्दोलन चल रहा है । हम सब परस्पर कंधा मिलाकर, कदम से कदम मिलाकर खड़े रहेंगे, तभी जीवित रह सकेंगे, तभी तुर्कों के दावानल को तुंगभद्रा के उस पार रोक कर रख सकेंगे । आज यही हवा फैली हुई है । यही वातावरण तैयार है । जिसके नीचे दुर्गपालों ने अपने दुर्गों का दान किया है । नायकों ने भूमि दी है । और वीर-वणिकों ने धन का त्याग किया है । लोगों ने जाति-पांति के वैमनस्य छोड़ दिए हैं । आज रायस् और बेसवागा का भेद भुला दिया गया है । जिस प्रकार अनेक देवी-देवताओं ने अपनी शक्तियों का त्याग कर, और फिर सभी शक्तियों का समन्वय कर सह्यवासिनी देवी की रचना की है और शेष देवगण की शक्ति की समूह-मूर्ति के समान महाकाली भवानी का अवतार हुआ । महाकाली ने असुरों का संहार किया और प्रजा को निर्भयता दी, इसीलिए हम महानवमी का उत्सव मनाते हैं । इसी प्रकार आज पांड्य संघ के स्वतंत्रचेता संघनायक, जो सदैव तुर्कों से ही नहीं, परस्पर

भी लड़ते रहे हैं, अब पाँच सौ वर्ष का अपना चक्रवर्ती शासन का कुल गौरव एक ओर रखकर संगठित हो गए हैं। सोलंकी, चेर, चोल, कर्नाटकी, सभी सामंत, छोटे-बड़े राजा, दुर्गपाल, समुद्राधिपति, सारंग और अन्य वीर आज अपना-अपना अभिमान, अधिकार और सर्वस्व छोड़ कर स्वेच्छा से एक महा-राज्य के अभिन्न अंग बने हैं, यही इनका परम त्याग है। मनुष्य इस त्याग को पराया धन समझ कर इसका रक्षण करता है।

"और राजन्, मनुष्य मात्र किस लिए त्याग करता है? वह अपने त्याग का बदला अवश्य चाहता है। वह त्याग इसलिए करता है कि उसके पंचसून* और पंचपरिग्रह सुरक्षित रहें। राजन्, यदि यह सुरक्षा न मिली, सुरक्षा का विश्वास न मिला तो मनुष्य का त्याग उसके मन का विष बन जाएगा।

"दीर्घकाल तक त्याग किसी प्रजा समष्टि का मनोभाव नहीं बन सकता। यदि इस भाव के रहने तक हम ने राज्य-साम्राज्य को सूत्रबद्ध नहीं किया, भावी विपत्ति के विरुद्ध सुसज्ज नहीं किया, तो हमारे सभी प्रयास व्यर्थ जाएंगे और स्मरण रखिए कि इस दक्षिणापथ का जितना विनाश तुर्क नहीं कर सकेंगे, उससे अधिक इसके अपने रायस् स्वयं ही करेंगे।"

"महामात्य जी, आप तो सप्तर्षिप्रभव हैं!"

"नहीं राजन्, यह पद तो केवल राजगुरु के लिए ही सर्वमान्य है। इस साम्राज्य में एकमात्र राजगुरु ही सप्तर्षिप्रभव हो सकते हैं। दूसरा कोई नहीं।"

"क्षमा करें महामात्य जी, अब ऐसी भूल नहीं होगी। परन्तु मैं यह कहना चाहता था कि आपका आदेश शिरोधार्य है किन्तु इससे मेरी युद्धेच्छा में कहाँ बाधा आती है?"

"राजन्, हमारी साधन-शक्ति मर्यादित है, अमर्यादित नहीं।

---

* पंचसून—गृह जीवन के पाँच कर्म्म—१–कातना, कूटना, और दलना। २–जलभरना, अग्नि जलाना। ३–बच्चों का लालन-पालन। ४–रोगी की परिचर्या। ५–वस्तु-संग्रह।

पंच परिग्रह—१–पत्नी और परिवार के नारि-समुदाय की ओर सम्बन्धानुसार प्रेम-भाव। २–धरती। ३–पशु। ४–घर। ५–दास-दासी, सम्पदा।

जो राजा अपनी शक्ति की मर्यादा को नहीं समझता है और उसे अमर्यादित मान बैठता है, उसका अवश्य विनिपात होता है। इसलिये राजन्, केवल गौरव, केवल दिग्विजय और केवल राघवकर्म के लिए हमारे पास अतुल बल नहीं है, समय नहीं है; और समय परिवर्तित हो चुका है। युग बदल गया है। अब तो सिर्फ जनरक्षण के निमित्त ही युद्ध हो सकते हैं, किसी राजा या राज्य की प्रतिष्ठा के लिये शोणित की सरिताएँ बहाने के लिए मेरे पास आदमी नहीं हैं, धन भी नहीं और मेरे महामात्य पद के अन्तर्गत इनका समावेश भी नहीं।"

"मैं आपको अपनी बात भली भाँति नहीं समझा सका। मुझे राज्य या विजय की कामना नहीं किन्तु यदि इस समय तुर्कों पर आक्रमण कर दिया जाय तो हम अपने उद्देश्य की पूर्त्ति सहज ही कर सकते हैं, क्या आपको यह प्रतीत नहीं होता?"

"राजन्, यदि हमारे पास महत्त्व के अन्य कार्य न होते तो मैं सहज ही आपकी बात समझ जाता। किन्तु अभी हमें रायरेखा को सुदृढ़ करना है और इस समय तुर्कों पर आक्रमण कर देना परम्परागत राजनीति नहीं है। आज तुर्क पारस्परिक विद्वेष में उलझे हैं और धन उनके आक्रमण का आधा रहा है। उन्होंने बहुत धन लूटा परन्तु उस का समस्त धन भण्डार कहाँ लुप्त हो गया? अब तो सुलतान, अमीर और मलिक—सबके बीच गज-ग्राह का श्रीगणेश हो गया। इन आन्तरिक मतभेदों के कारण स्थान-स्थान पर तुर्कों के बलवे हो रहे हैं। गुजरात का बलवा, मालवा का बलवा, लाट का बलवा, काशी का बलवा और सिन्ध का बलवा....। आज दिल्ली सल्तनत के चारों ओर बलवे की आँधी उठ रही है। स्थल-स्थल पर इन बलवों में मलिक और अमीर भी प्रकट या अप्रकट रूप से भाग ले रहे हैं। अन्तःकलह के कारण प्रत्येक स्थल पर स्थानीय जनता अपना सिर उठा रही है। राजन्, यदि हम इस समय तुंगभद्रा के पास आक्रमण करेंगे तो सभी तुर्क दीन और मजहब के नाम पर एक हो जायेंगे, परिणामतः हम उनकी हिन्दू जनता के अधिक कष्ट के कारण बन जायेंगे; उत्तर में तुर्कों का भार हलका हो रहा है, इस हलकेपन का हम पोषण करेंगे। हमें आज अपने बल का संग्रह

करना चाहिये, इसके विपरीत यदि हम अपने हाथ जला बैठेंगे तो उल्टी तुर्कों की सहायता होगी।"

"जिस समय आपने गुजरात के तग़ी चमार को सहायता भेजी, तब मैं इस बात को नहीं समझ पाया था। तब मुझे लगा था कि हमें अपने बल का एक अंग गुजरात के एक विनोदी× को क्यों देना चाहिए?"

महामात्य माधव मुस्कराए—"शत्रु का शत्रु अपना मित्र है। सम्भव है हमें दौलताबाद के सूबेदार इस्माइलमुख की भी सहायता करनी पड़े!"

"महाराज....।"

"राज्य और राजा के शत्रु नहीं होते हैं, मित्र भी नहीं होते हैं। केवल समय ही उनका मित्र है और समय ही उनका शत्रु।"

"समझा।"

"तो राजेन्द्र, अब आप अपने कर्त्तव्य का पालन कीजिये। उसी पर दृढ़ रहिये। एक बार तुरुष्क सेना जीवन-मरण के अपने संघर्ष के लिए तुंगभद्रा के इस पार अवश्य आएगी। उसका यह संघर्ष अंतिम संघर्ष हो, यह देखना आप का कार्य है, आप का जीवन-सार्थक्य और जीवन-कर्त्तव्य है।"

"जैसी आज्ञा महाराज!"

"विजयनगर को वज्रनगर बनाइये। तुंगभद्रा को वज्र बनाइये। आप का मुख सदा-सर्वदा दिल्ली की ओर रहना चाहिए। दौलताबाद की ओर रहना चाहिये। और आपकी पीठ पर कोई वार न कर जाय, इसकी देख-रेख का कार्य कुमार कम्पन, कुमार मुड़प्पा और कुमार मराप्पा का है।"

"जी महाराज, तो आज्ञा दीजिए।"

"हाँ पधारिए।"

राय बुक्काराय वहाँ से विदा हुए।

कुछ देर के लिए महामात्य अपने कार्य में संलग्न हो गये।

नागदेव अमाराम आया। प्रणाम करके एक ओर खड़ा रह गया।

× विनोदी—वर्णसंकर। उसका प्रयोग धर्मपरिवर्त्तन करनेवाले के लिये होता है।

कलम की चड़चड़ाहट बन्द हो गई। माधव ने नज़र उठाई।

"महामात्य जी!" नागदेव का स्वर कांप रहा था। उसके चेहरे पर भक्तिमय विस्मय छाया था—"महामात्य जी, बाहर महासती वरदाम्मा खड़ी हैं। आप के पास आने की अनुमति चाहती हैं।"

कलम उड़ गयी। पोथियाँ इधर-उधर बिखर गईं। पैर की उतावली की ठेस से ग्रंथ पीठ का पटल उड़ गया। माधव उतावली में खड़ा हुआ—"क्या कहा तुमने नागदेव? महासती वरदाम्मा! होश में हो?"

"महामात्य जी साक्षात् देवी पधारी हैं। मैंने अपनी आँखों तो उनके दर्शन नहीं किये थे, सिर्फ उनके विषय में सुना भर था, परन्तु उनके साथ दुर्गपाल गोपभट्टी भी स्वयं पधारे हैं।"

एक भी शब्द की प्रतीक्षा किये बिना माधव बाहर दौड़ा। उनके-जैसे स्वस्थ और शान्तप्रज्ञ व्यक्ति को इस प्रकार व्यग्रतापूर्वक दौड़ता देख कर, शिष्यमंडल स्तब्ध रह गया।

बाहर आकर वह महासती वरदाम्मा के चरणों में गिर पड़ा—"महादेवी! स्वयं आप? मुझे आदेश दिया होता?"

"वत्स, तू व्यवसाय में निमग्न है अतः मैं आई।"

"मेरा घर पवित्र हुआ।"

महादेवी महासती वरदाम्मा पाँच सौ से अधिक वर्ष की थीं—ऐसी किंवदन्ती लोक में प्रसिद्ध थी। यों भी, एक बात सच थी कि वृद्ध से वृद्ध आदमी भी अपने बचपन से ही महासती के तप की चर्चाएँ सुनी थीं।

महादेवी वरदाम्मा नीलगिरि पर्वत पर रहती थीं। महादेवी सह्यवासिनी के पर्वत का एक गुहाक्षेत्र उनका विश्रामधाम था। किंवदन्ती यह भी थी कि वे पांड्य देश की महारानी थीं। पांड्यों और चोलों के बीच महाविनाशक विग्रह उत्पन्न हुआ, जिससे पांड्यों ने चोलों का घोर संहार किया था। सो, उसके प्रायश्चित्त स्वरूप पांड्य देश की यह महारानी देश छोड़ कर इस पर्वत पर रहकर तपस्या करने लगी थीं। तप करते-करते उन्हें अनेक वर्ष बीते। युग बीते। पांड्यों और चोलों की वे कुलदेवी थीं। चंद्रगुट्टी

के दुर्ग का दुर्गपाल गोपभट्टी उनका परम भक्त और शिष्य था। वर्ष में एक बार गोपभट्टी उनके दर्शन के लिए जाता।

इसी शिष्य को साथ लेकर देवी माधव के आवास में पधारी थीं।

"वत्स," वरदाम्मा ने कहा—"अब मेरा जीवन काल पूरा होनेवाला है इसलिए मैं तेरे पास आई हूँ। वत्स, तूने जिस धर्म कार्य का भार सिर पर उठाया है उसके लिए मेरे आशीष हैं।"

माधव एक भी शब्द न बोला और महादेवी के चरणों का स्पर्श किया।

"वत्स, राजकुमार कम्पनदेव को बुला!" महादेवी ने आज्ञा दी।

नामदेव गया।

महादेवी वरदाम्मा आँखें बंद कर, चिंतन में लीन हुईं।

एक ओर गोपभट्टी और दूसरी ओर माधव धीमे-धीमे उन पर चँवर डुलाने लगे।

राजकुमार कम्पन आया।

माधव ने कहा—

"कुमार, जीवन्त जगदम्बा महासती वरदाम्मा को प्रणाम करो।"

कुमार ने प्रणाम किया।

महादेवी खड़ी हो गईं—कुमार, अब मेरी जीवन लीला समाप्त होनेवाली है। मन ने मुझे संकेत किया है कि पांड्यों की पुरातन भूमि मदुरा की विजय के लिये तुम जैत्र-यात्रार्थ प्रयाण करनेवाले हो। अतएव, मैं तुम्हें एक भेंट देने आई हूँ।

नख से सिर तक लम्बे अपने भगवा अंचल को महादेवी ने देखा। उसके भीतर हाँथ डाला। वृद्ध हाथ में थमी एक तलवार बाहर निकली। मानो शेषनाग ने फन फैलाया हो ऐसी गोमेदक से जड़ी हुई उसकी मूठ थी। शिव कांची के असली लोहे की नीले रंग की उसकी पत्ती थी। और उसे देखकर प्रतीत होता था, मानो उस पर चिऊँटियों की सात-सात पंक्तियाँ चल रही हैं। उस तलवार को उठाकर महादेवी वरदाम्मा ने रहा—"कुमार, लो यह कृपाण! यह पांड्यों का खड्ग है। यह खड्ग तुम्हारी शोभा बनेगा। तुम इस खड्ग की शोभा बढ़ाना।"

कुमार ने खड्ग को दोनों हाथों में झेल लिया। फिर महादेवी वरदाम्मा कुछ देर मौन रहीं। निश्चेष्ट रहीं। दर्शक स्तब्ध होकर देखते रहे। मानो वरदाम्मा की देह से वार्धक्य के अंचल तिरोहित होने लगे। वृद्धा मानो नवयौवना बनी। उनके लोचन जैसे किसी अलौकिक आभा से झिलमिला उठे।

"यह खड्ग......पांड्यों के प्रतापी इतिहास को तुमने लजाया है।" जैसे अति दूर के किसी भूतकाल के रंग मंच पर खड़ी होकर वे बोल रही हैं। इस प्रकार उनका स्वर अस्पृश्य और अपार्थिव था। वह स्वर इतना गहरा था, मानो किसी मानवी के मुख से नहीं, वरन् सुदूर अम्बर से आ रहा है।

"यह खड्ग......पांड्यों के प्रतापी इतिहास को तुमने लजाया है।... अब यह खड्ग अदृश्य हो जाएगा। चाहे जितनी खोज करने पर भी यह किसी को प्राप्त नहीं होगा। यह पांड्यों की यश-गाथा का लौह प्रतीक है, संहार लीला का शस्त्र नहीं। कभी-कभी जब पांड्यों के राजधर्म की रक्षा का सवाल खड़ा होगा, पांड्यों की मानरक्षा का प्रश्न उठेगा, तब-तब यह खड्ग......"

गला मानो रुंध रहा है, इस प्रकार महादेवी का हाथ अपने गले पर फिरने लगा। और धीमे-धीमे जैसे उनकी देह ने फिर से वार्धक्य के अंचल ओढ़ लिए।

लोचन खुले। कुमार कम्पन की ओर देखा। खड्ग की ओर देखा। धीमे-धीमे दोनों हाथ ऊँचे उठाए।

हाथ क्षण भर ऊँचे रहे। फिर अपने-आप नीचे गिरे। महादेवी की पीठ ढली। और वे अपने आसन पर ढल गईं—

"मेरी देह का दहन सह्यवासिनी के तीर्थ धाम में हो! मेरी भस्म को मदुरा के श्रीरंगम् में प्रवाहित करना!"...

महादेवी के लोचन मुंद गए। उनकी जीवन-लीला सम्पूर्ण* हुई!

---

*यह पूर्ण प्रकरण 'मदुरा विजय' के आधार पर लिखा गया है।

५ ★ अनवरी बेगम

अनवर बेगम—या अनवरी बेगम की उम्र पच्चीस से पचास साल के बीच, कुछ भी हो सकती थी।

उन्हें देखकर ऐसा लगा था, जैसे खुदा ने कई खूबसूरत नाज़नीन बनाईं; और फिर एक बदसूरत बला भी बनाना तय किया, यों अनवरी बेगम बन गईं।

उनके कई अंग, अंग के रूप में सुडौल थे, तो कई बेडौल और बेढंगे थे। इस समस्त के समन्वय से इस नारी-देह की रचना हुई थी, यह मात्र कुरूप ही नहीं, किन्तु अपरूप भी था—सप्रमाणता की अपेक्षा यह अप्रमाणता का जीता-जागता नमूना था।

अनवरी बेगम का सिर बड़ा और चौकोर था। उनका मुँह लम्बा और होठ भी लम्बे थे। और उतनी ही लम्बी उनके जबड़े की हड्डियाँ थीं। उनके केश सुन्दर थे परन्तु भाल बहुत छोटा था। भौंह न के बराबर थे। आँखें यों तो छोटी न थीं, लेकिन उनके चेहरे के चौरस चौखटे के गढ़ाव में, वे एक दम छोटी लगती थीं इस पर, मानो कुदरत ने कोई कमी देखकर, उनकी एक आँख टेढ़ी बना दी थी। उनके हाथ की भुजाएँ साधारण आदमी की जंघाओं-जैसी थीं। परन्तु कोहनी से नीचे का भाग एकदम पतला और

असूया उत्पन्न करनेवाला था। और क्षण भर के लिए तो मन में यह भ्रम पैदा होता था कि आप एक नहीं—दो औरतों के दृश्य देख रहे हैं। गर्दन तो उनकी नाम के लिए ही थी, मानो उनके शरीर ने गर्दन के बिना ही अपना काम चला लेने का निर्णय किया था ! क्योंकि गर्दन का जो कुछ भाग शेष था उसे उनकी ठुड्डी की तीन मोटी तहों ने अपने में छिपा लिया था। उनकी कमर तक की बनावट बहुत मोटी और बहुत चपटी थी। इधर उनके इजार के नीचे नज़र आनेवाले पैर जैसे किसी छोटी बच्ची के पैर थे। इन सब से परे, उनकी देह त्वचा, त्वचा के रूप में सुन्दर थी, कोमल थी, जैसे स्वच्छ हाथी दाँत के बासन में दूध की मलाई रखी है !

ऐसी थीं अनवरी बेगम ! कई लोग उन्हें अनवर बेगम कहते। वे मरहूम सुल्तान नासिरुद्दीनशाह और उसके भाई मलिक फिरोज के चाचा की लड़की थीं। वे मलिक फिरोज की बेगम भी थीं।

ऐसी यह अनवरी बेगम अपने आवास, अपनी मंज़िल में अपने खाविंद की राह देखती बैठी थीं।

अनवर बेगम के सामने दीवान पर एक अल्हड़ और हँसमुख छोकरी बैठी थी। लगभग १९-२० वर्ष की वह थी और बेंत की टहनी जैसी और गुलाब के फूल जैसी वह छोकरी बैठी-बैठी कमलदंडवत् अपने हाथों में कुछ गूँथ रही थी।

"रोशन, तू अब भी वैसी की वैसी ही रही।"

"कैसी रही आका।"

"१९ वर्ष की हुई अब तो।"

"तो आका इसमें मेरा क्या कसूर ?"

"बेचारा काजी अपना काजीपन भूलकर तेरी फिक्र में ऊँचा नहीं आता।"

'मेरी फिक्र ? मेरे वालिद को मेरी फिक्र ? आका ! यह क्या कहती हैं आप ! किस की फिक्र ? किसलिए फिक्र ?

"पगली कहीं की !" अनवर बेगम ने कहा—"भला जवान लड़की के बाप को दूसरी फिक्र किस बात की ? तेरी शादी की ही।"

"यह तो आका मैंने अपने वालिद से कह दिया है कि कोई घर जमाई ढूँढ़िए तो मैं ना न करूँगी। बाकी मैं अपने वालिद को छोड़कर दूसरे किसी लबार के घर नहीं जाऊँगी।"

"परन्तु लबार के घर जाने को तुझे किसने कहा ? तेरे वालिद मदुरा के काज़ी साहब हैं। और अमीर उल उमरा हैं। क़ाज़ी साहब उमरावखान के खानदान को शोभा दे सके, ऐसा ही दामाद ढूँढ़ा जाएगा। लबार कहाँ से आएगा ?"

"आका, जब मैं सात साल की थी तब माँ जन्नतनशीन हुई, यह बात मुझे आज भी याद है। उस दिन मेरे वालिद बहुत रोये थे। सात साल की मैं छोटी-सी लड़की, उन्हें चुप रखने में, अपना रोना भूल गई थी। आका, आँखें बन्द करने पर, वह पलंग, उस पलंग पर मेरी माँ की लाश, उस लाश पर सिर टिका कर ज़ोर-ज़ोर से रोते हुए मेरे वालिद—यह सब आज भी आँखों के सामने घूम उठता है। इन्साफ के आसन पर बैठकर मेरे वालिद कई तरह के गुनाहगारों और काफिरों को कोड़े की सजा देते और फांसी की सजा देते, उन्हीं वालिद को इस तरह रोते देखकर कोई भी आश्चर्य में पड़ जाएगा। और तब से आका, मैं पलंग पर नहीं सोती और न किसी को सोते ही देख सकती हूँ।"

—इतना कहते-कहते रोशन का सुन्दर मुख बर्फ जैसा सफेद और ठंडा पड़ गया—"मेरे वालिद ने, मेरी माँ के मरने के बाद दूसरी शादी नहीं की। कई अमीर, मलिक और दिल्ली के खानखानाओं की लड़कियों के लिए इनकार कर दिया। उन्होंने कहा—मेरी मंजिल का चिराग़, मेरे घर की रोशनी—मेरी रोशन है। अब शादी नहीं करना चाहता। घर में नौकर-चाकर और गुलामों के होने पर भी उन्होंने खुद ही मेरी देखभाल की। अब ऐसे वालिद को छोड़कर, जाऊँ मैं दूसरे का घर बसानें के लिए ? अपने वालिद का घर छोड़कर, उजाड़ कर ? आका, वालिद की मंजिल छुड़ाकर, लिवाने के लिए, चाहे मिस्र, रोम, समरकंद या बुखारा का बादशाह ही क्यों न आए, तब भी वह मेरे लिए लबार ही है।"

"पगली, दुनिया जब है तो दुनियादारी भी है। और जवान लड़की अपने बाप के घर में रहे, यह दुनियादारी नहीं, समझी ?"

"दुनियादारी अपनी दुनियादारी सँभाले ! रोशन, रोशन को सँभाले। रोशन अपने बाप की लड़की नहीं, लड़का है आका !"

"पगली......"

बाहर से खासने की आवाज़ आई।

रोशन खड़ी हो गई। मलिक आए।

मलिक फिरोज दरवाज़े में दाखिल हुआ और उसके दाखिल होने पर रोशन झुकी-झुकी सी बाहर निकल गई। मलिक उसकी पीठ देखता रहा।

"अनवर, यह कौन थी ?

अनवर हँसी।

"यह आपके बस की बिजली नहीं।" अनवर बेगम ने इस तरह कहा जैसे उसके मन में किसी भी तरह का राग-द्वेष नही है।

"क्यों ? तुम्हारी पकड़ में नहीं है यह ?"

"किसी की पकड़ में नहीं है। शायद आपके हसन सौदागर के मुबारक की पकड़ में हो सकती है !"

"मुबारक मेरा....मेरा...मेरा दोस्त मुबारक ?"

अनवर फिर हँसी—"शायद उसकी पकड़ में हो। शायद न हो। यह रोशन है।"

"लेकिन यह रोशन है कौन ?"

"मैने कहा न, आपकी पहुँच से बाहर की चीज है। ये है तुम्हारे अमीर उल उमरावखान काज़ी की लड़की......."

"काज़ी साहव की लड़की ?"

"हाँ, मदुरा के सुलतान के काजी साहब की। सँभलना मेरे खाविंद। रास्ता चूक न जाना।"

"तुम तो पागलों जैसी बात कर रही हो। इन बातों का इन्तजाम तुम करती हो या मैं ?"

"क़ाज़ी साहब को इस वक्त छेड़ना ठीक नहीं। क़ाज़ी साहब के पास सुलतान के कान हैं। बाद की बात बाद में देखी जाएगी।"

मलिक फिरोज के चेहरे पर चंचल हँसी की रेखा आई—"ठीक है, बाद की बात बाद में।"

"सुलतान से भेंट हुई ?"

"हाँ, हुज़ूर याला माबदौलत सुलतान साहब से भेंट ज़रूर हुई।"

मैं आप से यह पूछती हूँ, खाविंद, कि जो तख्त आपके मरहूम भाई के बाद में आपका होना चाहिए, उस पर बैठकर, दो कौड़ी के उस सिपाही को शर्म नहीं आई ?"

"उस कम्बख्त माबदौलत सुलतान को किसी तरह की शर्म है, यह तो मुझे नज़र नहीं आया !"

"मलिक, हिम्मत रखिए। सब्र बड़े से बड़ा हथियार है, यह न भूलना। हमारे बाप-दादा की सल्तनत पर आज एक मामूली सिपाही कब्ज़ा कर, बैठा है, यह मैं बर्दाश्त नहीं कर सकती। इस दर्द को मेरा दिल ही जानता है ! लेकिन सब्र...सब्र। अपने खानदानी तख्त पर एक बार मैं बैठूँगी। लेकिन इस वक्त सब्र....सब्र—सब्र।"

"सब्र तो है ही ! इस कम्बख्त ने ही हमारा खजाना लुटाकर, अपने आस पास अमीरों और मलिकों को जमा कर लिया है। कई बार मेरा मन होता है कि...लेकिन क्या करूँ ?...क्या करूं।"

"मैं इस बात को अच्छी तरह जानती हूँ कि रात में आपके आराम का पूरा इन्तज़ाम मैं नहीं कर पाती। मेरी और आपकी शादी तो सिर्फ इसलिए हुई है कि हमारे खानदानी तख्त के हकूक एक हो जाएँ। मेरे इस शरीर की हैसियत नहीं कि आपके इश्क या आपकी हबश को पूरी कर सके, मैं यह जानती हूँ। लेकिन मुझे इसका रंज नहीं, मुझे आपकी इश्कबाजी और हबश-खोरी पर एतराज़ नहीं, इस सच्चाई को आप जानते हैं, सीधे अनुभव से जानते हैं।"

"अनवर, तुम मेरी मलिका हो। लेकिन, हमारे बीच में देह की प्यास का सवाल नहीं है। और उस प्यास को बुझाने की ताकत तुम्हारे बदन में

है भी नहीं। मैं शादी के दिनों में ही तुम्हें यह बात बता चुका हूँ। उसके बाद आराम की मेरी रातों के लिए तुम्हारे इन्तजाम ने यह साबित कर दिया कि तुम्हें मेरी फिक्र है। अब इस बात को छोड़ दें। तख्तनशीनी की तुम्हारी बात बेचैन दिल को राहत देती है। हालांकि तुम मेरे बदन के काबिल हकीम नहीं, लेकिन मेरे खयालों और ख्वाबों के लिए तुम्हारी हकीमी अजीब है !"

"लेकिन, जाने दीजिए इस बात को मैंने यह बात इसलिए कही थी कि अगर मैं आपकी आँखों या आपके ख्वाबों पर अंकुश रखती हूँ तो इसमें आपके बेगम की ईर्ष्या नहीं है मगर आपकी बहिन की पहरेदारी है। आपने इस लड़की को देखा। यह लड़की इस पहरेदारी में है। मैं नहीं चाहती कि इस वक्त काज़ी साहब के लिए आपकी तरफ से फिक्र खड़ी हो जाए। समझे ? जहाँ तक आप तख्तनशीन नहीं होते, वहाँ तक......"

"बाद की बात बाद में।' फ़िरोज ने चपल हास्य किया।

"आपके काम के लिए, जो शख्स अपना खज़ाना दे रहा है, उसके लड़के पर इस लड़की का दिल आशिक है।"

"उस मुबारक पर ? यह तो वक्त आने पर देखा जागया।"

"खैर, मगर यह सब, तख्तनशीनी के बाद। पहले चुप...खबरदार... सब्र ...यदि आपकी बेसब्री के कारण बाज़ी बिगड़ी तो मुझ-जैसी बुरा और नहीं।"

"यह मैं जानता हूँ।"

"बस तो अब बातें बन्द कीजिए। यह बताइए कि सुलतान ने आपको क्योंकर याद किया था ?"

'मावदौलत शाहे मदुरा सुलतान गयासुद्दीन ने मुझे बुलाया था। तुम्हीं बताओ किसलिए बुलाया था ?"

"आप ही कहिए।"

"नामदार मावदौलत सुलतान साहब मानते हैं कि कावेरी के उस पार विजयनगर की सल्तनत अपनी फौजों की जमावट कर रही है। अगर यह काम पूरा हो गया तो मदुरा की सल्तनत बड़ी मुश्किल में पड़ जायगी।

इसलिए उनकी मंशा है कि एक ओर से दौलताबाद और दूसरी ओर से मदुरा दोनों विजयनगर पर एक साथ हमला करें। साथ ही दिल्ली के सुल्तान भी अगरचे खम्भात और बंगाल से दरियाई फौजें भेज दें तो विजयनगर का खात्मा हो जाय।"

"पागल, बेवकूफ कहीं का यह गयासुद्दीन !" अनवर ने कहा—"जिस बाब (अध्याय) को अलाउद्दीन खिलजी की जाहोजलाली का ज़माना पूरा न कर पाया, उसे यह भिखारी मुहम्मद तुग़लक क्या पूरा करेगा ? उस के पास इतना धन कहाँ कि खुरासान, बल्ख, मकरान और उत्तर से मलिकों को ला कर बसाये ? अरब और अजम से मल्लाह को लाने के लिए पैसा कहाँ है ? अगर इस भिखमंगे के पास पैसा होता तो यह चमड़े के रूपये क्यों चलाता ? दूसरी बात—और दौलताबाद के उस जईफ सूबेदार इस्माइलमुख में भी क्या रक्खा है ? अफ़गान सिपाहियों को बसा कर, उन पर एक अफगान को सूबेदार नियत कर दौलताबाद के हमदीनी अमीरों और मलिकों को दबाने के सिवाय दूसरी साजिश ही क्या है ? और, जंग तो जवानों का काम है। उसमें यह खूसट इस्माइल क्या करेगा ?"

अनवर की तिरस्कारमयी टीका पर सहानुभूति की स्मिति बरसाते हुए मलिक ने कहा—

"देखो अनवर, ये बातें तुम सुलतान गयासुद्दीन से पूछो। तुम्हें अगर मालूम न हो तो जान लो कि मदुरा का सुलतान गयासुद्दीन दमग़नी गधे की पूँछ के बाल से बने चँवर काम में लाता है। वह कहता है कि आज तक इन्सान ने गधे की सच्ची कीमत नहीं आँकी। लम्बी लड़ाइयाँ घोड़ों से नहीं, गधों से जीती जाती हैं ?"

"सुना है, लेकिन उसने आपको क्यों बुलाया ? गधे की पूँछ से चँवर डुलाने के लिए ?"

"अरी बेगम, गधे की पूँछ के चँवर डुलवा कर उसकी अक्ल भी गधे-जैसी बन गई है। वह मुझे कहता है कि तुम मरहूम सुलतान के भाई हो, इसलिये सल्तनत यह तुम्हारी भी उतनी ही है, जितनी मेरी।"

"आपने नहीं कहा कि अगर ऐसी बात है तो तख्त से नीचे उतर जाओ और मुझे बैठने दो ?" अनवर बीच में ही बोली।

मलिक ने अपनी बात जारी रखी—"सुलतान ने कहा, इसलिए इस सल्तनत का इज्ज़त बढ़े यह तुम्हें देखना चाहिये और तुम्हारी इज्ज़त बढ़ जाय यह देखना मेरा क़ाम है। इसलिये मेरा विचार तुम्हें मग़रूर का सूबेदार बनाने का है। मैं तो उसकी बात सुनता रहा।"

"मग़रूर ?...मग़रूर का सूबेदार ? उसे कोई गंध तो न मिल गई ?"

"हरगिज़ नहीं। उसने कहा कि तुम जवान हो, बहादुर हो, शाने शमशीर हो। जाओ, मलाबार को इन हरामखोर काफिरों से सलामत करो। इकबाल को पकड़ कर शूली पर चढ़ा दो, और उसका सिर मगरूर के किले पर टाँग दो। वहाँ सैयद मंजूरशाह नामका एक फकीर रहता है, उसे नाव में बिठाकर समुन्दर में धकेल दो। मलाबार से श्रवणबेलगोला पर चढ़ाई करो, वीर-वणिक विजयनगर की मदद कर रहे हैं और उनसे हमारा व्यापार बंद है, उन्हें दो दो हाथ दिखाओ और जहाँ उनके गोमट का पुतला या बुत आसमान तक चालीस हाथ ऊँचा खड़ा है, उस जगह फतहमीनार बनाओ! ....बेगम, सुलतान की बात सोच में डालनेवाली है।"

"इसमें कोई साज़िश त। नहीं है ? आपने त्रिन नामों का जिक्र किया, वही नाम सुलतान के मुँह से निकलें हों फिर भी....कहीं सुलतान लोहे को लोहे से तो नहीं काट रहा है ?" अनवर ने सचिन्त स्वर में पूछा।

"तोबा करो, तोबा करो अनवर, अगर उसे शक होता तो वह हम तीनों को मिलने क्यों देता ? और मुझे उसने एक हज़ार घोड़े, नौबत, पचास बिरंगी और पाँच सौ बरक दी हैं, पगली !"

"और आप इन सब अलामतों का क्या करेंगे ? मेरी सुनें तो, ये सब चीज़ें इकबाल को ही सौंप दें। इनका उपयोग इकबाल करे या मंजूरशाह करे, अगर किसी को भी फतह हासिल होती है, तब भी हम तो खड़े ही हैं तख्त के दावेदार। ये तो जंग के मामलात हैं। अगर फतह न मिली तो बेकार ही मुसीबत में पड़ना ठीक नहीं।"

"अब, इस शतरंज के दाँव मुझे तुमसे नहीं सीखने पड़ेंगे। मैंने खुद ही यही तय किया है।"

"शाबाश। खोया हुआ तख्त वापस पाने के लिये जिगर चाहिये और जिगर से पहले अक्ल चाहिये। अब तो मुझे मदुरा की सल्तनत का तख्त अपनी आँखों के सामने दिखाई दे रहा है।"

"हाँ।"

"हसन सौदागर आपसे मिला था क्या ?"

"हाँ। मैं उसके पास गया था, आखिर उसकी बात तो पक्की होनी ही चाहिये। अगर पैसे की बात ही कच्ची रही तो हमारा सिर नीचा और पैर ऊँचे हो जायेंगे !"

"इसीलिये पूछती हूँ कि हसन से बात हुई ?"

"कौन-सी ?"

"आपके मग़रूर जाने की, मंजूरशाह और इकबाल की ?"

"हाँ, होनी ही चाहिये। हसन है तो तुरक लेकिन पक्का सौदागर कि वीर-वणिक भी उसके सामने पानी भरें ! तुम्हें नहीं मालूम, उसने अपने मुबारकखान को मेरे साथ भेजा था।"

"यक़ीन पर ही दुनियाँ चलती है। यक़ीन पर ही किश्तियाँ चलती हैं और सौदागर का छोटा-सा सौदा भी यक़ीन की हद के बाहर कदम नहीं रखता। अगर हसन को यह यक़ीन आ जाय कि हमारे पैर मजबूत हैं और सट्टा भी मजबूत है, तभी वह रुपया देगा और अगर राई भर भी शक हो गया तो कानी कौड़ी भी न देगा। जात का भले वह अजम है लेकिन वीर-वणिक को भी वह शरमाता है। उसने अपने बेटे मुबारक से सारा हाल पूछा होगा।"

"क्यों न पूछेगा ! इसीलिये तो मुबारक को मेरे संग में भेजा था और इसीलिये मैंने भी उसकी हाज़िरी में इकबाल और मंजूरशाह से बातचीत की। और फिर यह आदमी है डेढ़ अक्ल का।"

"क्यों ? किसी बात को उसने बिगाड़ दिया ?"

"नहीं, बिगाड़ता तो क्या ? लेकिन मुझसे कहने लगा कि मेरा खासगीर नागर नायक भी चौकड़ी में शरीक रहना चाहिये।"

"या खुदा, यह तो नाम से कोई काफिर मालूम होता है ! काफिर का क्या भरोसा ?"

"अनवर, दरअसल है तो वह काफिर मगर हमदीनों को भी वह पछाड़ने वाला है। फिर, मुबारक उसके बिना पानी नहीं पीता। तो मैंने सोचा उमर कोतवाल कौन सा पराया है ? उसे भी बातचीत में शामिल रखा जाय, ठीक ?"

"देखो फिरोज, जब हमारी शादी हुई थी तब हम दोनों ने एक समझौता किया था, क्या तुम उसे भूल गये ?"

अनवर ने 'आप' के बजाय 'तुम' का प्रयोग शुरू किया।

"हूँ ? कौन सा ?"

"मैंने कहा था कि मैं तुम्हारे रंगीले स्वभाव और तुम्हारी हवसखोर खासीयत को जानती हूँ। इसलिये किसी साजिश में दोस्त की तरह हम दोनों का संग अच्छी तरह निभ जायगा। रही हमारी शादी, सो वह तो एक दूसरे के मतलब को एक बनाने के लिये हुई थी। शादी का असल उद्देश्य तो एक दूसरे के जिस्म का मेल है। उस बाबत में तुम्हें मुझमें दिलचस्पी नहीं और मैं भी तुम्हारी तरफ मुखातिब नहीं। हमने शादी से पहले इन मामलात को देखा और समझा था और हमने यह तै किया था कि एक दूसरे की इज्जत का खयाल रखेंगे, अगरचे जिस्म के मामले में दोनों आजाद रहेंगे।"

"मैं कहाँ बेइज्जती की बात करता हूँ ? मैं तो तुम्हारी चतुराई और होशियारी की चर्चा कर रहा हूँ। यह बेचारा उमर इस भ्रम में है कि मैं इसकी हरकतों से बेखबर हूँ और वह इस बात का कितना खयाल रखता है कि मुझे मालूम न हो जाय ! पर मुझे इस बात का दिखावा करना पड़ता है कि मैं इस बारे में एकदम अनजान हूँ, और हाँ अनवर, बेचारे की मगरूर में बड़ी पिटाई हुई !"

"अच्छा हुआ। नौकरी है तो पिटाई भी है। हम अपनी बात करें। मैं खास तौर पर हसन सौदागर का मामला समझना चाहती हूँ। तुम जानते हो कि हसन सौदागर और उमरावखान में गहरी छनती है।"

"अरे, सौदागर भी किसी से कोई सम्बन्ध रखता होगा? सो भला, सौदागर का, हमारी तरह, ईमान से क्या ताल्लुक?"

"यह सम्बन्ध हो या न हो लेकिन मैंने तुम्हें एक बार कह दिया कि काज़ी साहब की दुख्तर रोशन और मुबारक की शादी की बात चल रही है।"

"रोशन से?"

"सुनो, तुम इस वक्त अपनी नज़र रोशन से दूर रखो। मैं सौदागर और काज़ी दोनों में से किसी को नाराज़ करना नहीं चाहती। यह दोनों चाहें तो हमारा खेल बिगाड़ सकते हैं इसलिए तुम्हारा काम बनने तक इन दोनों में से किसी से मैं वैर मोल लेना नहीं चाहती। वरना...याद रखना फिरोज...मैं तुम्हारी बेगम हूँ, फिर भी तुम्हारा खून करने में मुझे ज़रा भी झिझक नहीं होगी।"

"अरे पगली, मैं कोई पागल हूँ! बाद की बात बाद में देखी जाएगी।"

"हाँ, बाद की बात बाद में। तुमने इस लड़की में क्या देखा? खैर, जब तक अनवर है तुम्हारे लिए लड़कियों की क्या कमी?"

"इसलिए यह बात इस वक्त रहने दो।"

"अब फिरोज, मैं तुमसे पूछती हूँ कि यह सौदागर क्या चाहता है?"

"वह कहता है—मरहूम सुलतान के वारिस गुज़र चुके हैं इसलिए तुम चूंकि सुलतान के भाई हो, सल्तनत के वारिस हो। तुम्हारी मदद करना मेरा फर्ज़ है।"

"फर्ज़-वर्ज की बात जाने दो, आखिर वह क्या चाहता है?"

फिरोज़ हँस दिया—

"अनवर, तुम्हें भी मेरी तरह दूर की सूझती है। सौदागर हसन चाहता है कि वीर वणिकों के साथ व्यापार की राह खुल जाए। उस व्यापार और उसकी जमात का फायदा वह उठाना चाहता है।"

"सौदागर, आखिर सौदागर है। बिना लोभ के कुछ करता नहीं। इस दुनिया में दौलत की बू अगर न रहे तो कोई फरिश्ता भी अपना फर्ज पूरा न करे।"

"अगर हमें अपना काम बनाना हो तो सभी कुत्तों को एक टुकड़ा फेंकना पड़ेगा। आदमी भी कितना मतलबी हो गया है?"

"कुछ मालूम हुआ, मुबारक ने अपने वालिद से क्या-क्या कहा?"

"नहीं, लेकिन इतना सच है कि सौदागर मुझे पूछ रहा था कि उसके बेटे का रहन-सहन कैसा है? तुम्हें कैसा लगा?"

"क्या खयाल है तुम्हारा?"

"लड़का निकालने जैसा तो नहीं।"

"तुमने क्या कहा?"

"मैं भला, मक्खन लगाने में, क्यों कर कंजूसी करता? बात बताने में मेरी कौन-सी कानी-कौड़ी भी खर्च होती थी? मैंने उसे आसमान पर चढ़ा दिया है। वह बहुत खुश हुआ।"

"अच्छा हुआ। जब तक खुश रहता है, तब तक रह ले, लेकिन अब भड़का कब होने वाला है?"

"यह मंजूर शाह और इकबाल पर निर्भर है। उन्हें कुछ हथियार तो देने ही पड़ेंगे?"

"ज़रूर। अब आराम करो। जाओ। तुम्हारे आराम और मौज-शौक का मैंने पूरा इन्तजाम किया है। जाओ, खुदा हाफिज़!"

फिरोज़ गया। कुछ देर बाद अनवर एक लड़की को साथ लेकर आई। फिरोज के शयनखंड तक गई। उसनें लड़की को अन्दर धकेल दिया।

र तक वह बरामदे में इधर-उधर चक्कर काटती रही। सहसा यनखंड से दो एक धीमी और तेज़ चीखें सुनाई दीं। दोनों होठों में मुस्कराहट को दबाए, अनवर अपने आरामगाह में चली गईं।

वहाँ उमर कोतवाल उसकी राह मैं बैठा था।

"क्यों उमर, तुम्हें बड़ी चोट आई है ?"

"नहीं जी, यह तो चलता है ! फिरोज ने कहा होगा !"

"हाँ । देखूँ, ज़रा कहाँ चोट आई है ?"

"अरी मेरी सुलताना ! इस कलेजे में चोट लगी है, इसकी दवा कर !"

"वाह, मेरे सुलतान !"

६ ★ रोशन और मुबारक

"वालिद !" मुबारक ने अपने पिता हसन सौदागर से कहा—"मेरी समझ में कुछ नहीं आता !"

"कौन-सी चीज तेरी समझ से बाहर है, बेटा ?"

"आखिर किसलिए हम इस साजिश में शामिल हो रहे हैं ?" मुबारक ने पूछा।

"क्योंकि जालिम सुलतान का नाश होना ही चाहिए। सुलतान गयासुद्दीन ने बेलगोला के साथ हमारा व्यापार बंद कर दिया है। उसने इस पथक में अपने सौदागर, मलिक और अमीरों को जगह दी है। इसका यह नतीजा निकला कि पुराने सौदागरों की रोजी मारी गई और नए सौदागर मलिकों से मिलकर लूट मचा रहे हैं। वे रायसों को लूटकर, बेसवागों को भगा रहे हैं। पांचाल भाग रहे हैं। वालांगियों के लिए कोई दरियाई पेशा न रहा। उसने मदुरा की सल्तनत को दिल्ली की सल्तनत के साथ जोड़ दिया है। इन सब कारनामों का अंजाम तुम नहीं सोच सकते, क्योंकि तुम बच्चे हो। और जहाँ बात समझ से बाहर जाती हो, वहाँ बड़ों का कहना मानना चाहिए।"

"बाबा, मैं सुलतान गयासुद्दीन का बचाव नहीं करता। अगर उसका मुकाबिला ही करना है तो, क्यों न खुलकर किया जाय ?"

"ताकि, मेरा सिर दीवार के भाले पर चढ़ा दिया जाए ?"

"लेकिन वालिद ! ..."

"बेटा, ऐसे वक्त किस तरह का व्यवहार किया जाए, यह जान लेना तुम्हारे लिए मुश्किल है, क्योंकि तुमने ऐसे वक्त और हालात नहीं देखे।"

"बाबा, आप जो कहते हैं, मुझे मंजूर है, लेकिन पेट में पाप रखकर बाहरी दोस्ती का दावा किसलिए ? कई लोग सुलतान के दरबार में नहीं जाते। आप भी मत जाइए। आप सुलतान से वफादारी की बातें करते हैं और फिरोज़ को मदद देते हैं। काज़ी साहब....काज़ी साहब से..."

अमीर हसन मुस्कराया—

"बेटा, तुम अभी सल्तनत और सौदागरी मामलों में कच्चे हो। इन दोनों में तुम जिस ईमानदारी की कल्पना करते हो वह और ही जाति की है। लेकिन, मैं तुम्हें एक बात का भरोसा दिलाता हूँ कि चाहे जो हो, फ़िर भी अपने काज़ी साहब तो काज़ी साहब ही बने रहेंगे। समझे ? अब तुम जाओ, काज़ी जी को सलाम कर आओ !"

"जी, अभी जाता हूँ।"

अमीर हसन मुस्कराया—

"मुबारक, काज़ी साहब ने शादी का दिन तय किया है। वे अगले चाँद को मुबारक मानते हैं।"

"जी...जी।" मुबारक ने सायास कहा, ताकि उसके मन की ख़ुशी छलक न जाए !

"जाओ बेटा, मेरी इस बात को अगर तुम समझ न सको, तो नागर नायक से बूझना। वह बड़ा अक्लमंद आदमी है। और हमारी तरफ उसकी जो लगन है, उसे हम कई बार कसौटी पर कस चुके हैं। और काज़ी साहब की बात समझ में न आए तो, रोशन से पूछना ! अच्छा अब जाओ बेटा, ख़ुदा हाफिज़ !"

मुबारक बाहर आया।

वहीं नागर नायक उसे मिल गया, मानो वह उसका इन्तज़ार कर रहा था।

"हाँ, मुबारकखान, तुम्हारे वालिद मेरे अन्नदाता हैं और मैं उनका धर्म-पुत्र हूँ। सुलतान गयासुद्दीन दमग़ानी के वज़ीरे आज़म, और सल्तनत के काज़ी उमरावखान से आप मिलने जा रहे हैं, उनकी लड़की से मिलने जा रहे हैं, ऐसे मौके पर यह याद रखना—अगर सुलतान से बदला लेना पड़ा तो, आप हैं। अगर आपका बदला लेना पड़ा वो, मैं हूँ!"

"नायक, तुम्हारी इस बेचैनी का कारण क्या है?"

"कारण यह है मुबारक खान कि आप एक दावानल पर खड़े हैं, भूकम्प पर बैठे हैं; इसलिए आपका एक भी शब्द, एक भी बोल, एक भी इशारा किसी किस्म का शक पैदा करनेवाला न हो।"

"लेकिन, ऐसा हो सकता है, यह तुम किस आधार पर कहते हो?"

"आप रोशन से मिलने जा रहे हैं! अपनी माशूक के सामने तो अच्छे-अच्छे आलिया और आमिल भी अपने दिल के ढक्कन खोल देते हैं।"

"तो रोशन से नहीं मिलूँ?"

"दरीं-चे-शक! मत मिलिए।"

"तू तो, पागल है। इस दुनियाँ में एक मेरे वालिद और एक मेरी रोशन के सिवाय दूसरा मेरा कोई नही है!"

"तब जाइये। मगर, याद रखना मुबारकखान, अगर आपका एक बाल भी बाँका हुआ तो मैं अपनी जान देकर भूत बनूंगा!"

"इतनी बेसब्री की कोई वजह नहीं, नागर!" अधेड़ उम्र के इस आदमी की जाँनिसार ईमानदारी पर खुश हुआ जाय या इसके वहम पर गुस्सा किया जाय—मुबारक की समझ में कुछ न आया।

"मुबारकखान, मुहब्बत करना बड़ी बात है। यह निराली रंगत है, ज़िन्दगी का यह अनेरा, अनमोल और लौटकर नहीं आनेवाला अनुभव है। शबनम की तरह कोमल और शहद की तरह रसीली। आज आपके दिल में एक पाक मुहब्बत पैदा हुई है, उससे अगर मैं न खुश हुआ, तो कौन होगा? राजनीति का खेल; अलादीन का जादुई चिराग जैसा है! कौन कह सकता

है, कब यह चिराग़ बुझ जाय और कब यह जिन् उठ खड़ा हो। और जिनात की एक शर्त्त होती है—"तू मुझे खा, या मैं तुझे खाऊँ।" आप के दिल में इस वक्त दो हस्तियाँ हैं। एक हस्ती पाक है, एक नापाक है। इस नापाक हस्ती के सामने पाक हस्ती पस्त हो जाय, यह मैं नहीं कहता, न ऐसी ख्वाहिश ही रखता हूँ। लेकिन पाक हस्ती के सामने अगर नापाक हस्ती बलवान बन् गई, तो तुम्हारे वालिद की जान खतरे में पड जाएगी। सुलतान गयासुद्दीन के शब्दकोष में दया, करुणा, उदारता और क्षमा जैसे शब्द नहीं हैं।"

"तू नाहक शंका करता है। मैं जानता हूँ......जानता हूँ बस, मैं जानता हूँ।"

अधीर और व्यग्र, मुबारकखान वहाँ से चला गया। कुछ देर तक नागर नायक उसकी पीठ देखता रहा, फिर वह भी चला गया।

काज़ी उमरावखान रोबदार आदमी था। वह सुल्तान का खास आदमी था। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता, मानो वह किसी दूसरे ही युग और लोक का आदमी है। किसी दूसरी दुनियाँ का ओलिया है। उसकी आवाज़ यह बतलाती थी कि वह ऊँचे खानदान का शरीफ आदमी है। उनकी वाणी में संयम, विवेक और विनय भरपूर भरे थे। सुलतान के अपराधियों को, सुलतान की सूचनाओं के अनुसार फांसी पर चढ़ाने का हुक्म देते वक्त उनकी वाणी अपराधी के प्रति विवेक और संयमयुक्त रहती—फाँसी की सज़ा वे इस तरह देते, जैसे किसी महाभाग्यशाली को फूलों की माला पहनाई जा रही है। जो उन्हें पूरी तरह नहीं पहचानता, वह तो यही कहता—अरे, इस बेचारे शरीफ आदमी के सिर पर फाँसी की सजा देने का भार आ पड़ा है।

सुलतान गयासुद्दीन की सेवा करनेवाले के लिये ज़रूरी है कि वह अपने दिल से दया-माया को निकाल दे। काज़ी साहब ने अपने अन्तरंग की समस्त दया-माया, अपनी दुस्तर रोशन में ढाल दी थी। अस्तु, शेष संसार के लिये उनके पास दया या माया नहीं बच रही थी।

"आइये मुबारक!"

"आदाबर्ज़ जनाब !"

"आइये बैठिये, क्यों, आप अभी बाहर गाँव कहाँ जाकर आये ?"

"जी मेरे वालिद का कुछ सामान इकबाल के कब्जे में था, उसी के बारे में बात करने के लिए गया था।"

"इकबाल से मिले ?"

"जी नही। कोशिश तो बहुत की लेकिन मुलाक़ात न हुई। खाली हाथ लौटना पड़ा।"

"और क्या यह सच है कि आपके साथ में फिरोज़खान भी था।"

"जी, वे अपनी जागीर की तरफ जा रहे थे, ऐसा मेरा खयाल है।"

"मुबारकखान, मेरी दुख्तर मुझे जान से प्यारी है। मैं उसे तुम्हें सौंपनेवाला हूँ, उससे पहले एक बात कह दूँ।"

"जी, आप तो बुजुर्ग हैं।"

"फिरोज़ के साथ में न रहना। उसमें खानदानियत नहीं है, असलियत नहीं है। वह और उसकी बेगम अनवर—दोनों के चाल-चलन खानदानी अमीरों जैसे नही हैं।"

"जी।"

"क्यों चुप रह गये ?"

"जी, आपका हुक्म सिर-आँखों पर। और इसे सिर पर चढ़ाने में कोई तकलीफ भी नहीं, क्योकि इन दोनों में से किसी से मेरा कोई सम्बन्ध न था और न है।"

"अच्छी बात है। इस आदमी से खबरदार रहना चाहिये। उसके दिमाग़ में पुरानी तवारीख भरी है। उसका ख्याल है कि उसकी सल्तनत छीन ली गई है।"

"जी।"

"दरअसल, सल्तनत पर किसी का हक नहीं होता। वह किसी से छीनी नहीं जाती। वाजिब और मुनासिब वक्त पर मुनासिब आदमी ही सल्तनत पर काबिज़ होता है। इस वक्त हमें विजयनगर के नापाक इरादों का मुका-

बला करना है। इकबाल की नाफरमानी का सामना करना है। इसके लिये सुलतान गयासुद्दीन ही काबिल सुलतान है। फिरोज़ षड्यन्त्र के सिवाय, और कुछ नहीं कर सकता। फिरोज़ पर सुलतान की कड़ी नज़र है, इसलिये फिरोज़ की दोस्ती खतरनाक है।"

"जी, फिरोज़ मुझे अपना दोस्त माने या मैं उसे अपना बिरादर मानूँ, यह हो नहीं सकता अब्बाजान।"

"अच्छी बात है। तुम अभी बच्चे हो, इसलिए तुम्हें खबरदार रखने के लिए, मैंने यह सब कहा है। अब इन कडवी बातो को दिल में न रखना। इस वक्त मौज-मज़े की बातें करें! आइये बैठिये।"

मुबारकखान पास गया, वहीं बैठ गया।

"क्या कर रहे हैं आपके वालिद ?"

"वे तो मक्काशरीफ जाने की तैयारी कर रहे हैं।"

"क्यों ?"

"उनका कहना है अब्बाजान कि अब इस सल्तनत में व्यापार-जैसी कोई चीज़ नहीं रही। और मेरी, मेरी......।"

काज़ी साहब हँस दिये—"समझा, तुम्हारी शादी हो जाय....।"

"जी, उसके बाद उनके लिये कोई काम बाकी न रहेगा। इसलिये वालिद की मंशा यह है कि मेरी शादी के बाद वे मक्का शरीफ जायें और बाकी की जिन्दगी वही बिताएँ।"

"खयाल बुरा नहीं, मुबारक! हालाँकि तुम्हें इससे रंज होगा, लेकिन उन्हें वहाँ बहुत-बहुत राहत मिलेगी।"

"जी, वे भी यही कहते हैं।"

"अच्छा, मुबारकखान, मेरा तमाम रोशन ये रोशन है। उसका हाथ तुम्हें सौंप रहा हूँ। खयाल रहे—मेरा सुख-दुःख, मुहब्बत, तमाम इस लड़की के सुख-दुःख और चैन में समाया हुआ है।"

"जी।"

"जाओ, वह बाग में है। खुश रहो मेरे बच्चे! मैं खुश हूँ। रोशन की

खुशी चाहकर, अपनी बीवी की तरफ मैं अपना फर्ज अदा करता हूँ। मुबारकखान, मुहब्बत की ज़िन्दा मूरत जैसी मेरी नेक बीवी। तुमने तो उसे नही देखा...मैंने उसे देखा है। उस तरह उसे किसी ने नहीं देखा...। मेरी बीवी....उसकी यह दुख्तर है! जाओ, खुदा हाफिज़!"

रोशन बाग में खड़ी थी—गुलाब की बेल जैसे खडी है। जैसे शबनम ने शरीर धारण किया है, जैसे प्रभात की प्रशान्त सौम्यता पृथ्वी पर पधारी है।

मुबारक उसकी ओर छिपे-छिपे बढ़ा। पीछे से जाकर उसे सीने से लगा लिया।

चौंक कर रोशन ने पीछे देखा, उसके खूबसूरत चेहरे पर छाये भय, आशंका, चिढ़, रोष ओझल हो गये, रह गया मात्र मधुर एक मान।

"मुबारक, अब्बाजान देख लेंगे तो?"

मुबारक बैठ गया। उसने रोशन को अपने समीप खींच लिया। अपनी गोद में उसको ढालकर, उसके सीने पर अपने हाथों की जंजीर बनाते हुए उसने कहा—"रोशन, तुम्हारे अब्बाजान ने ही मुझे यहाँ भेजा है।"

"अब्बाजान ने?"

"हाँ।"

"अब तक तो, वे मेरी शादी की बात सुनकर चिढ़ जाते, ऐसी बात करनेवाले नौजवान को वे कोड़ों से पीट देते, और तुम्हें उन्होंने यहाँ, मेरे पास आने की इजाज़त दी?"

"हाँ। क्योंकि अब तक उन्हें अच्छा नौजवान नहीं मिला था, अब मिल गया। माशाल्ला, कोड़े गये और दुआएँ आईं।"

"वाह रे लायक नौजवान!"

"हाँ रोशन, अब इस बाग में हमें चोरी-चोरी मिलने की जरूरत नहीं रही। अब तो, सरे आम मिल सकेंगे। अगर अब मैं तुम्हें प्यार करूँगा, तो छिपकर नहीं, सरे आम।"

"मुबारक मियाँ, अपने मुँह से बात कर रहे हैं। हाथ से बात न करें, तो क्या नहीं चलेगा?"

"नहीं चलेगा रोशन, नहीं चलेगा। मेरा रोम-रोम तुम्हारे रोम-रोम से बात करना चाहता है।"

"तो रोम-रोम पर एक ज़बान रखिये।"

"मुहब्बत की बातें ज़बान से नहीं होतीं, आँखों से होती हैं।"

"मुबारक मियाँ.......।"

"मैंने कहा न, रोशन, मुहब्बत की बातें ज़बान से नहीं होतीं। बोल से बड़ा क्या? बोल से छोटा क्या? तुम यों ही लेटी रहो और अपनी आँखों से मुझे बुतपरस्ती करने दो।"

"मुबारक।" फिर एक दीर्घ और संतोषमय निःश्वास लेकर रोशन ने मुबारक के गले में अपने दोनों गोरे हाथ लपेट कर कहा—"हमारी शादी होगी...फिर....फिर.......'

"फिर क्या? फिर तो रोशन, मेरी और तुम्हारी दुनिया हमेशा के लिए बहिश्त में रह जाएगी।"

"लेकिन मुबारक, मुझे अपने वालिद की फिक्र है।"

"उनकी फिक्र! अरे पगली, तेरे वालिद पहाड़–जसे हैं। कोई बेल पहाड की फिक्र कर सकती है? शबनम पहाड़ को भिगो सकती है? और शबनम न हो, सर पर ताप तप रहा हो तब भी पहाड़ अचल रहता है!"

"यह पहाड़ और यह शबनम और ये सारी बातें तो शायरों को शोभा देती हैं मुबारक। तुम आज क्या शायर बन गए हो?"

"इस वक्त कोई भी शायर बन सकता है!"

"मुबारक, मेरे वालिद अकेले रह जाएंगे। आज की घड़ी में अगर मेरे मन में कोई फिक्र है तो बस यही है।"

"इस फिक्र को भुला दे रोशन, क्योंकि मैं तेरा शौहर तो हूँ ही, तेरा वालिद भी बनूंगा!"

"मुबारक...मुबारक...." रोशन के कंठ से सुख और दुःखमय निःश्वास प्रकट हुआ। मुबारक के सीने पर सिर दबाए वह लेटी रही।

प्रेमियों के एकांत में केवल प्रेमियों की श्वासोच्छ्वास के अतिरिक्त वहाँ हर्ष और विषाद भरा गहरा मौन छाया रहा।

"बेटा मुबारक, बेटा रोशन," काज़ी साहब ने पुकारा।

प्रेमीजन प्रणय-समाधि में से जागे। रोशन हिरणी की भाँति चपल छलांग भरकर, उठी और अपने वस्त्र ठीक करने लगी। सावधान मुबारक भी इधर-उधर देखने लगा।

"बेटा मुबारक, बेटा रोशन," काजी साहब पुकारते हुए—"खुदा खैर करे, बच्चे कहाँ हैं ?"

"काज़ी साहब !" मुबारक ने पुकारा।

रोशन शरम, लज्जा और संकोच वश पैर के अँगूठे से ज़मीन खोदती रही।

धीरे-धीरे काज़ी साहब निकट आए। वृक्षों के नीचे चबूतरे पर, दोनों प्रेमी जहां बैठे थे, वहाँ वे भी बैठे। कुछ पल मुबारक और रोशन को देखकर बोले—"बेटा रोशन, क्यों शरमाती हो ? मैंने ही मुबारक को भेजा था, तुम दोनों की, एक दूसरे के लिए मुहब्बत रहती है या नहीं, यह मैं जानना चाहता था। वैसे तुम लोग चोरी-छिपे मिल रहे थे......."

संकोचमय अचरज सहित मुबारक और रोशन ने नज़रें नीची कर लीं।

"हाँ भाई, मैं एक चिड़िया का रखवाला हूँ, तो मुझे उसकी देखभाल तो करनी ही पड़ेगी। बगीचे में तुम छिप-छिप कर मिलते। मुबारक बाग की दीवार फाँदकर आता, रोशन मुझे सोया हुआ मानकर, मंज़िल के पिछले दरवाज़े से बाहर आती। मुझे सब कुछ मालूम है। और मैं सोचता—आखिर पंछी हैं। पख आने पर, मालिक को भूलकर उड़ जाते हैं। क्यों शरमाती हो, रोशन ? कैसा संकोच ! मैं माली था, सैयाद नहीं। पगली, इसीलिए तो मैंने हसन सौदागर से दरख्वास्त की कि मुबारक से तुम्हारी शादी हो जाए।"

दोनो सुनते रहे। दोनों समझ गए कि काज़ी साहब उतने अंधेरे में नहीं हैं, जितना उन्होंने सोचा था।

"मैं तो रोशन को, किसी को सौंपना ही चाहता था। तब जहाँ रोशन का मन मिलता है, वहीं उसे क्यों न दूँ ? इसीलिए मैंने शादी का संदेशा भेजा था। और इसीलिए मैंने आज तुम दोनों की मुलाकात कराई।"

"जी।" जी के सिवाय दोनों और क्या कह सकते थे !

"अब सुनो, रोशन से भी अभी मैंने इस बारे में जिक्र नहीं किया है, रोशन आज जा रही है।"

"जा रही है ? कहाँ ?"

"तुम दोनों की मुहब्बत पर एक काली छाया छा रही है। मुझे फिरोज़ की नज़र पर शक है। उसमें गैरत या इज्ज़त तो है ही नहीं। अब तक डर की बात नहीं थी। लेकिन, अब सुलतान उसे मसनद दे रहा है, इसलिए मेरा डर बढ़ गया है।"

"जी, लेकिन..."

"उसकी नज़र से मैं रोशन को बचा सकता हूँ, लेकिन मैं कोई खतरा मोल लेना नहीं चाहता। दूसरे किसी की बात अलग थी, यह तो खुद मेरी रोशन की बात है। मैं रोशन को आज ही बिदा करना चाहता हूँ। मैंने सभी तैयारियाँ पूरी कर ली हैं। रोशन अपनी मौसी के घर जाएगी।"

"कहाँ ?"

"टोंडागढ़। वहाँ शम्बूर राय कुफ्र राजा के दरबार में आदिलशाह असली, वज़ीरेआज़म और सौदागर के रूप में रहता है। आदिलशाह असली, रोशन के मौसा हैं। इस वक्त रोशन वहीं रहेगी।"

"शादी की दरख्वास्त....?"

"शादी भी वहीं होगी। और शादी के बाद मुबारक तुम भी वहीं रहना। चलो, बेटा रोशन !"

स्तब्ध खड़े मुबारक की तरफ, पीछे देखती हुई रोशन काज़ी साहब के साथ-साथ चली गई।

दोनों ओझल हो गए। मुबारक के कंधे पर किसी ने हाथ रख दिया। चौंक कर उसने पीछे देखा तो हाथ रखनेवाला नागर नायक था।

"तु....तु...तुम कहाँ थे ?"

"कह दिया कि मैं तुमसे अलग नहीं होऊँगा, जब तक हंगामा खत्म न हो जाय। मैं अपने मालिक के प्रति ईमानदार हूँ। मुझे इस बगीचे की, बगीचे

की मुलाकातों की, मुलाकात के लिए आप जहाँ से दीवार लांघते थे, उस जगह की जानकारी थी, इसलिए मैं भी इस बगीचे में ही था, मालिक !"

"तुम बाग में थे ? बाग में, तब......?"

"फिक्र न कीजिए, मुबारक मियाँ, ईमानदार नौकर जिस तरह यह जानता है कि उसे अपने आँख-कान कब और कहाँ खुले रखना चाहिए, उसी तरह उसे यह भी मालूम है कि किस वक्त और कब बन्द रखना चाहिए !"

७ ★ घोड़े और हथियार

मग़रूर में मंजूरशाह रहते थे। मग़रूर की बड़ी मसज़िद मलिक काफूर ने बनवाई थी; परन्तु बेचारे मलिक काफूर को इस मसज़िद ने सहयोग नहीं दिया।

इसलामी शरीयत का कानून यह है कि जब कोई भी हम-मज़हब मसज़िद बँधवा रहा हो तब, उस मसज़िद की बँधावट जब तक पूरी न हो जाय, तब तक सुलतान का सल्तनत की ओर से मसज़िद बँधवानेवाले पर कोई हुक्म या फैसला लागू नहीं हो सकता। न ही उस पर किसी प्रकार का दोषारोपण किया जा सकता था, न ही उसे नौकरी से बरख्वास्त किया जा सकता था और चाहे जैसा इलज़ाम लगने पर भी उसे न तो सज़ा दी जा सकती थी, और न ही जाँच की जा सकती थी।

इसलिए जब कभी सल्तनत या सूबेदार की ओर से किसी को किसी भी ओहदे पर नियुक्त किया जाता, तब वह व्यक्ति पहला काम मसज़िद की नींव डालने का करता। फिर उसका प्रयत्न यह रहता कि मसज़िद कभी पूरी न हो।

दक्खन में आने पर स्वयं मलिक काफूर ने भी मसज़िदें बनवाने का काम शुरू किया था। मग़रूर की जामा मसज़िद, मलिक काफूर की आखिरी मसज़िद थी, लेकिन किस्मत ने इसे पूरी बँधवाने का मौका ही न दिया।

इस मौके की चाह मलिक काफूर के मन में थी या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। उन दिनों दिल्ली के तख्त के आस-पास भयानक भूकम्प फूट निकला और उसमें सुलतान अलाउद्दीन खिलजी, मलिक काफूर और सुलतान के साले और भाई, सुलतान के तीनों बेटे—खीरजखान, शहाबुद्दीन और मुबारक भी भस्म हो गये।

तब से मंजूरशाह मग़रूर में ही रह गये थे। वे मलिक काफूर के मसज़िद-विभाग के निरीक्षक थे। मसज़िद की बँधाई का काम देखना उनकी नौकरी थी।

मंजूरशाह सैयद थे। नष्ट-भ्रष्ट भारत के हिन्दू-राज्यों के खँडहरों में से कई फ़कीर और भिखारी भी, बाद में मलिक और अमीर बन बैठे थे।

फिर भला मंजूरशाह तो सैयद थे, आमिल थे। फिर क्यों न मग़रूर और उसकी तहसील के पाँच सौ गाँवों के मसनद उन्हें मिलें? और यह एक उदाहरण नहीं, अनेक हैं, जबकि भटकते हुए फ़कीर, शाह और सूबेदार बन गये थे। दौलताबाद का सूबेदार इस्माइलमुख मूलतया अफगानिस्तान में भटकनेवाला दरवेश था। मदुरा का सुलतान गयासुद्दीन भी जाति का फकीर था। और मदुरा का पहला सुलतान जलालुद्दीन एहशानशाह खुद कौन-सा आसमानी खानदान का आदमी था?

इसलिए मग़रूर की मसनद पर कब से मंजूरशाह की आँखें लगी थीं। कई आदमी ऐसे होते हैं, जो खुद मसनद हासिल कर लेते हैं, कुछ के लिए दूसरे लोग लड़कर लेते हैं और कुछ राह देखते रहते हैं। मंजूरशाह तीसरी किस्म के आदमी थे। मग़रूर की मसनद तो उन्हीं की थी, न हो तो होनी चाहिये थी और किसी को भी चाहिए था कि उसे हासिल कर मंजूरशाह को सौंप दे।

उन्हों ने मसनद दिलानेवालों में, पहला विश्वास इकबाल पर किया। तीस साल में पाँच सुलतानों का खून पी जानेवाली सल्तनत में बेघरबार कई हो सकते हैं, लुटे हुए कई हो सकते हैं और इस तरह हम-दीनों और काफ़िरों में फर्क मालूम नहीं हो सकता है। क्योंकि दौलत इस तरह

का भेद नहीं रखती और दौलत के पीछे पागल भी इस तरह के भेद नहीं रखते, रख ही नहीं सकते !

लुटे हुए लोगों में हम-दीन थे, काफिर थे, नायक और कुरुबा भी थे, और तो और उनमें मलिक, अमीर और सिपाही भी थे ।

इन सबका एक संगठन बन गया था । इस संगठन का सरदार था इकबाल । मोपलों और मावलों का यह संघ, माबली-संघ के नाम से प्रसिद्ध था और इकबाल, जो किसी वक्त वीर-वणिकों के श्रेष्ठि, विजयनगर साम्राज्य के जगत सेठ के भानजे वरजांग के नाम से प्रसिद्ध था, (अब इकबाल नाम) संघ का सालारजंग भी था । मंजूरशाह की नज़र इसी इकबाल पर गई—मग़रूर की मसनद में पड़ाव डाल कर पड़ा हुआ मावली-संघ का मुखिया शायद उन्हें मसनद हासिल करा दे । इकबाल से, इस हेतु उनका घना सम्पर्क था । मंजूरशाह संघ के सदस्यों से बातचीत करते । उनकी बातों में पांडित्य और संयम था । अपने गुनाहों के लिए 'तोबा' की पुकार थी और सल्तनत की ओर से जितनी तबाह रिआया, मावली और सताये हुए लोग थे, मंजूरशाह उन सबके प्रति सहानुभूति दिखलाता और कहता कि इन्हें इन्साफ मिलना चाहिये, राहत मिलनी चाहिए ।

इस तरह मंजूरशाह को एक नेक आमिल और समझदार अलवी के रूप में ख्याति मिल गई थी, और उनका खयाल था कि अब अपनी और इस की ताकत उन्हें मसनद की गद्दी पर बिठा देगी । लेकिन उन्होंने अब तक किसी से यह न कहा था कि उनकी मनोकामना क्या है । उनके सिवाय कोई उसे जानता न था और प्रत्यक्ष मे वे सिर्फ इकबाल को दुआएँ देते रहते और देते रहते आगे बढ़ने की प्रेरणा ।

सुलतान से मंजूरशाह का अच्छा सम्बन्ध था । सुलतान गयासुद्दीन उन्हें नेक और भला आदमी मानता था । सुलतान की इस धारणा से मंजूरशाह को भला, क्या उज्र हो सकता था ? वे तो सुलतान से कहते कि वह बदमाश मावलों को रास्ते पर लाये और मावलों से कहते कि सुलतान को तबाह कर दो । उधर सुलतान जब कहता कि मावलों का सुधार नहीं हो सकता, वे तो सिर्फ लातों के भूत हैं, तब मंजूरशाह, सुलतान के कथन

का समर्थन करते और कहते—गरीबपरवर, मैं तो खुदा का बन्दा हूँ, आप तो खुदा की तलवार हैं, इसलिए हम दोनों में फर्क तो होना ही चाहिये।

मुबारक ने आकर मंजूरशाह के सामने कोर्निश बजाई।

"कौन हैं आप ?"

"शायद, सैयद साहब को याद नहीं। मैं मलिक फिरोजखान के साथ मग़रूर आया था—हसन सौदागर का बेटा मुबारकखान। मैं आपकी बैठक में भी शामिल था।

"हाँ, अब याद आया। तुम मुबारकखान ! मलिक ने भेजा है ? कोई खत लाये हो ?"

"मलिक साहब फरमाते हैं कि खत-खतून की ज़रूरत नहीं। सैयद साहब, आप मलिक साहब को जानते हैं और मुझे जानते हैं। नयी बात तो है नहीं। आपके और उनके बीच जो बात बनी थी, वह ज्यों की त्यों है। उस पर अमल करने के लिये मलिक साहब ने मुझे भेजा है।"

मंजूरशाह ने अपनी मेंहदी-रंगी दाढ़ी पर हाथ फेरा। मलिक की ओर से खत ज़रूर मिलना चाहिये। और उस खत में मग़रूर के बारे में साफ साफ जिक्र होना चाहिये। जबानी और खत में लिखी बात में फर्क है। अगर मलिक फिरोज़ का मक़सद पूरा हो जाय तो ऐसा खत बड़ा काम आये।

लेकिन इस वक्त खत नहीं है, इसका अफसोस करना फिज़ूल है। फिर भी यह मसनद बड़ी मुश्किल मंज़िल है कि इसके लिये छोटी से छोटी बात का भी ध्यान रखना पड़ता है। ज्यों ज्यों यह सैयद मंजूरशाह को प्रतीक्षा में रख रही है, त्यों त्यों उन्हें बहुत प्यारी लग रही है। और ज्यों ज्यों प्यारी लग रही है, त्यों त्यों इसका वियोग अधिक दुःखदायी बनता जाता है। तब, प्यार का नाम जुदाई है या जुदाई का नाम प्यार है ? सच बात तो यह है कि मकसद का नाम जुदाई है।

लेकिन इसका क्या अफसोस ?

मुबारक भी दाढ़ी सँभालते सैयद के मौन के सामने अपना मौन फैला-कर, खड़ा रहा।

आखिरकार सैयद ने पूछा—"आप के यहाँ आने का कोई प्रयोजन तो होगा ?"

"जी, मलिक साहब ने पचास बिरंगी, दस गाड़ी बारूद, और पाँच सौ घोड़े भेजे हैं।"

"मेरे लिये ?"

"जी, आपकी सिपुर्दगी के लिये। और मुराद है कि आप इसे इकबाल तक पहुँचा देंगे।"

"समझा, अब आप आराम कीजिए।"

"जी।"

मुबारक और नागर नायक विश्राम के लिये चले गये।

शाम को वे इकबाल के डेरे की तरफ गये।

इकबाल ने सारा सरंजाम सँभालकर कहा—

"सैयद साहब, ये मेहमान बड़े मँहगे हैं। मुझे बहुत अच्छे लगते हैं। इसलिये मेरी सलाह है कि ये अभी यहीं रहें और मदुरा न जाएँ।"

"मदुरा ?" सैयद ने विस्मय प्रकट किया।

इकबाल हँसा। उसका हास्य विकट था। यह हास्य शिकारी पशु की भूख के निनाद से भरा हुआ था—

"सैयद साहब, आप फिक्र न करें, और मेहमानों से कहिये कि वे भी निश्चिन्त रहें और यह भी इनसे कहना कि इस वक्त शायद मदुरा में इनके दिल को करार न मिले, इसलिये यहीं रहना अच्छा है। इनके जैसे कोमल स्वभाव के सज्जनों के लिये मदुरा अच्छी जगह नहीं है। क्यों, सैयद साहब, आपने मदुरा देखा है ?"

"हाँ, क्यों ?"

"देखा तो मैंने भी है। लेकिन उस वक्त के सुलतान ने मुझे भली भाँति देखने न दिया। सुना है कि मदुरा में तुरुष्क सौदागर रहते हैं और वे सभी मालदार भी हैं ! सच बात है...?"

"मदुरा के तुरुष्क सौदागर ? तू यह कैसी बात करता है इकबाल ? मेरा वाज़ भूल गया ?"

"सैयद साहब, ऐसे उपदेश तो शान्तिकाल में पेट भरा रहने पर सुनने चाहिये। लड़ाई के मामले में, भूखा आदमी उपदेश के लिये चुप बैठा रह सकता है?"

"सुना है कि काफिरों की गीता, एक योद्धा को एक आमिल ने मैदाने-जंग में सुनाई थी!"

"हमने तो ऐसा कुछ सुना नहीं और न सुनना चाहते ही हैं। मगर सैयद साहब, आपने शायद एक बात नहीं सुनी होगी! आपको मालूम है कि उस मैदाने-जंग में हाथ में हथियार उठाकर दुश्मनों की फौज के सामने खड़ा हुआ, वह जंगेपरेशाँ इस्म बारह महीने से हिजड़ा था...उसने वह उपदेश सुना...जंग शुरू हो जाय, फौजें मैदान में आ डटें, फिर जो उपदेश सुनने के लिये खड़े रह जायँ, वे आदमी हिजड़े नहीं तो और कौन हैं? मैं इकबाल, न खड़ा रहूँ एक घड़ी भी!"

"लेकिन सौदागर....सौदागर?"

"सैयद साहब, आपका सुल्तान अगर काफिर सौदागरों को न रहने दे, तो फिर इकबाल तुर्क सौदागरों के पास न जाये तो, क्या हाथ में तसबीह लेकर फेरा करे? आपके तुरुष्क सालारजंग भी क्या करते हैं? मलिक काफूर ने मदुरा में क्या किया था'? हिंदू–हरेक हिंदू भाग निकला तो तुरुष्क बच रहे। उन्होंने सोचा कि उनका क्या नुकसान हो सकता है? लेकिन उन्हें पहले तो मलिक काफूर ने लूटा, बाद में खुशरूखान गुजराती ने। दूसरा रास्ता ही नहीं।"

"इकबाल, यह नहीं हो सकता। मैं तेरे मावली-संघ को इकट्ठा कर, साफ-साफ कह दूँगा।"

"सैयद मंजूर शाह!" इकबाल का स्वर तीव्र हुआ—"आप मावलों को इकट्ठा नहीं कर सकते। ये काम मैं ही कर सकता हूँ। आइए, जमात को एकत्र कर फैसला सुन लें।"

"लेकिन, इकबाल, ज़रा सुनो..." मंजूरशाह एकदम अस्वस्थ हो गया।

"आप आमिल, सैयद, मस्जिद में आपकी बात सभी सुनते हैं, मैं भी

सुनता हूँ। लेकिन, जब मावले लोग लड़ाई की तैयारी कर लेते हैं तब वे अपने मुल्ला की नहीं, अपने सालारजंग की बात सुनते हैं!"

इक़बाल ने नगारे का डंका उठाया। सैयद ने उसका हाथ पकड़ना चाहा। इकबाल ने उसे तिरस्कारपूर्वक हटा दिया और नगारे पर चोट की।

जैसे धरती का पेट फाड़कर भूतों की टोलियाँ निकली हों, उस तरह मावलों और मोपलों की टोलियाँ निकल आईं।

सैयद मंजूरशाह को यह पसंद न आया कि इस तरह उनकी इज्ज़त की कसौटी हो। वे तो बेचारे ज़िन्दगी-भर लोगों की कसौटी से दूर रहे थे। उनका स्वर्ण-वाक्य यह था कि भ्रम ही भ्रम में जैसा काम बनता है वैसा प्रयत्न से भी नहीं बनता। फिर भी उन्हें मावलों को देखकर इकबाल की प्रशंसा करनी पड़ी। देश के राज्य-परिवर्तन, भूख और गरीबी, ज़ुल्म और अन्याय की शिकार मावली जनता की सेना देखते हा देखते सामने खड़ी हो गई। प्रतिशोध की आग से वह जल रही थी। सुलतान गयासुद्दीन तो क्या, मलिक काफ़ूर या खुशरूखान गुजराती या वीर बल्लाल जैसे महावीर की सेना में भी ऐसा कठोर अनुशासन नहीं था। सभी सैनिक इक़बाल की ओर निर्निमेष दृष्टि से देख रहे थे।

सैयद मंजूरशाह निरे विस्मय से स्तब्ध रह गए!

उनकी ओर पीठ फेरकर इकबाल ने कहा—"साथियो, मावलो! आज हम किसी छोटी लड़ाई पर नहीं जा रहे हैं। आज किसी कुर्बा की पोटली या इक्के-दुक्के वीर वणिक के थैले की लूट-खसोट के लिए नहीं जा रहे हैं। आज हम न तो किसी के खलिहान लूटने जा रहे हैं, न किसी की बाड़ी में आग लगाने ही जा रहे हैं। मावलो, आज हमारा बहुत बड़ा दिन है, जित्तल या दो जित्तल की बात नहीं है, यह तो लाखों वराहों की बात है। लेकिन हमारे यह आमिल मंजूरशाह कहते हैं कि तुर्कों को नही लूटा जाए! हालांकि इन सैयद साहब ने हमसे नफ़रत करने के बजाय मुहब्बत से बात की। हमें यह भी कबूल है कि आमिल ने हमें बहिश्त और हूरों के दास्तान सुनाए हैं। आज ये आमिल हमसे कहते हैं कि हमदीनों को मत सताओ,

लेकिन, अगर सताने के लिए, लूटने के लिए काफिर नहीं हैं और हमदीन ही हैं तो, यह कसूर किसका ?"

"हमदीनों को लूटने पर खुदा नाराज़ हो जाएगा।" सैयद बोले।

"खुदा का खौफ़ ? और वह भी आप हम मावलों को दिखाते हैं ? अरे, हम तो कहते हैं कि जिन्हें खुदा का डर हो वे हमारे पास आएँ। खुदा भी हमारी जमात से डरता है, खासकर जब कि मावली 'पिंडार' के लिए जाते हैं। भला पिंडारियों के लिए कौन-से हमदीन ? पिंडारी का कैसा मज़हब और कौन-सा खुदा ? अगर हमें मज़हब या किसी तुर्क को सताना न हो तो पिंडार किसलिए की जाए ? आज मावलों की पिंडार के लिए, गैरदीनों के पास रह ही क्या गया है ? बोलो भाइयो, तुम क्या कहते हो ?"

"ठीक है, ठीक है।"

"हमारा मज़हब, एक है—सिर्फ पिंडार का। इकबाल ठीक कहते हैं।"

"तो तुम ही तय करो इसी वक्त। हमारे सामने एक पिंडार है, उसके एक किनारे हम हैं और दूसरे किनारे पर तुर्क और उनकी भारी दौलत है, ऐसी हालत में हाथ में तसबीह उठाओगे या तलवार ?"

"तलवार....तलवार...तलवार।"

"तसबीह सैयद को सौंप दो। बैठा-बैठा हमारे लिए दुआ माँगेगा। और पिंडार का काम पूरा कर, पाक होने के लिए हम वापस इसके पास आएँगे।"

"ठीक है। अब बताओ तुम्हारा मुखिया कौन बने—सैयद मंजूरशाह या इकबाल ?"

"इकबाल...इकबाल....इकबाल।"

"ठीक है दोस्तो, ठीक है। अब जाकर एक दंड में लौट आओ। हमारे पास बिरंगी है, बारूद है। घोड़े हैं। सिर्फ एक दंड की अवधि में, इससे अधिक समय मैं किसी को नहीं दूँगा, सब तैयार हो जाओ।"

किसी ने यह न पूछा कि कहाँ जाएँगे ? किसी ने यह जानना न चाहा

कि बिरंगी कहाँ से आई और घोड़े कहाँ से आए ? किसी ने यह भी न पूछा कि इस पिंडार के लिए कठिन लड़ाई होगी या काम आसान है ।

किसी जादूगर ने जैसे हाथ फेरा हो, इस तरह मावली-संघ के वे लोग वहाँ से उछलकर, पलक मारते अँधेरे में ओझल हो गए ।

अब वहाँ सिर्फ तीन ही आदमी रह गए—सैयद मंजूरशाह, मुबारक खान और इक़बाल ।

इकबाल ने कहा—"सैयद साहब, सारी फिक्र छोड़ दीजिए, खुदा का खौफ़ अगर उतरा, तो मुझ पर उतरेगा, आप पर नहीं । इतनी ही हिम्मत रखिए । आप मगरूर जाइए । आप समझदार हैं और वक्त को पहचानते हैं । इसलिए इन मेहमानों को इस वक्त जाने न दें । और फुर्सत में मेरे इस पिंडारी सफर का रहस्य इन्हें समझा देना । खुदा हाफ़िज़ !"

८ ★ मदुरा की लूट

मग़रूर वापस लौटते हुए सैयद ने मुबारक से पूछा—

"मुबारक ख़ान, इस घटना को देखकर तुमने क्या सोचा है?"

"सैयद साहब, मैं इन बातों में कच्चा हूं, मानिए की बच्चा हूँ। आपने मदुरा के तख़्त पर पाँच-पाँच सुल्तान देखे हैं। मैंने तो सिर्फ एक ही देखा है। राज्य के बारे में खटपट करना मेरा काम नहीं है। मगर मेरा ख़याल है कि बारूदख़ाने में चिनगारी लग गई है और मुझे जल्द से जल्द मदुरा पहुँचना चाहिए।"

अँधेरे में सिर्फ गहरी परछाइयाँ नज़र आ रही थीं। सैयद, मुबारक और नागर तीनों आदमी अँधेरे की परछाइयों की तरह जा रहे थे। और जैसे उनके घोड़े लौटने की राह को खुद ही ढूँढ़ लेते थे। अँधेरा इतना गहरा था, मानो जब से वह पैदा हुआ उस प्रदेश के घने पर्वतों और वनों की झाड़ियों में अपने आपको छिपा चुका था।

और सैयद मंज़ूरशाह को इस वक्त यही उचित प्रतीत हुआ कि यह प्रगाढ़ अंधकार उन्हें निगल जाए। मलिक फिरोज़ ने जिस वक्त मंज़ूरशाह की मर्ज़ी जान ली थी और उससे बातचीत चलाई थी, उस वक्त उसे इस बात की कल्पना तक नहीं थी कि यह ऊँट इस करवट बैठेगा। तथापि उसके दिमाग़ ने यह ज़रूर सोचा था कि यह ऊँट किस ओर झुकेगा, क्यों और

कब झुकेगा ? लेकिन उसने भावलों के इस आक्रमण का ख्वाब भी न देखा था।

उसका खयाल था कि यह चीज़ अमीरी ढंग से आगे बढ़ेगी, जैसे मंद-मंद मंथर गति से बहनेवाली भद्रा नदी, तुंग भद्रा से मिलने जा रही हो। उसमें ढोल रहेंगे, शान रहेगी। विरोधी भी जिन्हें स्वीकार कर ले, ऐसी दो बातें कही जायँगी, कहने-सुनने का मौका मिलेगा। सपाट मैदान में जैसे नदी बह रही हो, और उसके किनारे कोई व्यक्ति बैठा हो, वैसे वह स्वयं किनारे पर बैठकर बातें सुन सकेगा। उसका सूत्र अमीरों के हाथ में रहेगा। अन्तर-तम में तो वह उसी के हाथ में रहेगा। वह पुनः हिंसक-पशुओं को अपने पिंजरे में बन्द कर देगा। यह सब उसने सोचा था।

लेकिन इस प्रकार की कोई घटना नहीं हुई। सब कुछ उलटा ही हुआ। जैसे पहाड़ से मीठे पानी का झरना नहीं गिरा वरन् शिला-खण्डों की धारा गिरी, जो पल पल अधिकाधिक विनाशक-वेग ग्रहण कर रही थी। इसे कोई रोक नहीं सकता, लौटा नहीं सकता। समझदार आदमी को चाहिये कि इसके रास्ते से हट जाय।

मलिक फिरोज़ का मन बेचैन हो रहा था। उसका दिल परेशान था। उसके दिमाग़ में उसकी घबराहट मानो उसकी अक्ल को खोजती-सी दौड़ रही थी। हिंसक-पशुओं को शिकार की गंध मिल गई थी। पिंजरे तैयार होने से पहले ही जो आँख की नज़रबन्दी और वाणी के वशीकरण की पहुँच से छूट चले थे।

"आपने मेरी बात का जवाब नहीं दिया," मुबारक ने अधिक आग्रह-पूर्वक कहा—"मुझे जल्द से जल्द मदुरा जाना चाहिये।"

"किसलिये ?" सैयद ने तेज़ आवाज़ में पूछा।

"इस पिण्डार की बात सुनने के बाद भी, आप–जैसा आमिल मुझसे ऐसा सवाल पूछता है ?"

"अरे भाई नागर, जरा इधर आना। मुबारक को फिर से कौन-सा पागलपन सूझा है ?" सैयद ने कहा।

"सैयद साहब, यह अभी नादान नौजवान है। हमारे यहाँ, एक कहावत है कि जब चौसठ जोगिनियाँ खप्पर भरतीं हैं तब एक बार राज्य-परिवर्त्तन होता है।"

"नागर...।"

"सैयद साहब ने पूछा इसलिये मैंने अपनी बात कही।"

"तुझे कोई पूछता नहीं।"

"कोई तो ठीक, आप ही नहीं पूछते हैं। सैयद ने पूछा तो, जवाब दिया।"

"इसका मतलब...तू यह कहना चाहता है कि मैं अपने ही हमदीन तुर्कों को कत्ल करूँ ?"

"मुबारक खान, कत्ल तो खुद ही खतरनाक चीज़ है। फिर वह हम-दीनों का हो या ग़ैरदीनों का...लेकिन कत्ल की बात तो उठती ही नहीं।"

"क्यों, तुमनें अभी नहीं सुनी ?"

"नही।"

"कान गिरवी रखकर ऊँघता है क्या ?"

"मैं तो नहीं ऊँघता था, लेकिन तुम ऊँघते होगे और ख्वाब देखते होगे। क्यों सैयद साहब, कत्ल की बात की है किसी ने ?"

"नहीं, नहीं, कत्ल की बात तो किसी ने नहीं की।" डूबते हुए को जैसे तिनके का सहारा मिला हो, इस तरह सैयद ने कहा।

"सुनिये मुबारक खान, अगर लूट की बात भी हुई तो तुर्क कौन से देवताओं के पुत्र हैं ? वे कहाँ कमाने गये थे ? उन्होंने भी मावलों और मोपलों को लूट-लूट कर दौलत इकट्ठी की थी।"

"हाँ, हाँ, ठीक है ठीक है।" सैयद साहब ने सहारा पकड़ते हुए कहा।

"और दूसरी बात कहूँ, मुबारकखान, अगर आप पूछते हों तो ? न पूछते हों तब भी कहूँगा। क्योकि अगर उलाहना मिला तो मुझे मिलेगा, तुम्हारे वालिद और मेरे मालिक की तरफ से। तुम्हें कोई कुछ कहने-वाला नहीं।"

"दूसरी क्या बात है ? मावली डाके के लिये जायँ और सामना करने-वाले का कत्ल न करें, क्या वे इतने भले आदमी हैं ?"

"अरे मेरे भाई ! डाकू का सामना करनेवाली औलाद जैसे हिन्दुओं में न रही, उस तरह तुर्कों में भी न रही। आज तक हिन्दू-राजा भी बाप-दादाओं के नाम पर प्रजा को लूटकर खाते थे और जब हिन्दुस्तान के एक सिरे से दूसरे सिरे तर्क तुर्कों ने लूट मचाई तब कोई कुछ न कर सका। इसी तरह तुर्कों को भी मुफ्त का माल मिला है, पराई दौलत मिली है, लेकिन मुबारकखान, पराया माल तो कच्चा पारा है, कोई उसे हज़म नहीं कर सकता। मैं तुम से पूछता हूँ, दौलताबाद के सूबेदार ने वहाँ के मलिक और अमीरों को लूटकर भिखारी बना दिया, तो तुम्हारे तुर्कों ने उसका क्या किया ? मदुरा के सुलतान गयासुद्दीन ने अमीरों से लेकर गरीबों तक, सबको लूटा, सबकी जमीन-जायदादें हड़प ली। तब तुम्हारे तुर्कों ने क्या किया ? मेरे भाई, पसीने की कमाई को कोई नहीं लूटता, लूट नहीं सकता। मुफ्त का माल अगर हमने लूटा होगा तो कोई हमसे भी लूट लेगा। यह परम्परा राजा राम से लेकर, शहाबुद्दीन गोरी से लेकर आज तक चल रही है। तैरनेवाला पानी में डूबता है और लूटनेवाला लूटा जाता है। सारे मुल्क को लूटकर सुलतान अलाउद्दीन ने कितना बड़ा धन-भंडार इकट्ठा किया था ! लेकिन आखिर में बेचारा वह खुद और उसका सारा खानदान जान से हाथ धो बैठे और उसका राज्यभंडार भी अलोप हो गया। आज बेचारे दिल्ली के सुलतान मुहम्मद तुगलक के पास खाने के लिये अन्न नहीं। मेरे भाई, दूध का दूध और पानी का पानी—यह इन्साफ नहीं चलता ! क्यों, क्या कहते हैं सैयद साहब ?"

"ठीक है, ठीक है। लूट की चर्चा छोड़िये। मुझे इन नये अमीरों और मलिकों से कोई मोहब्बत नहीं, नफ़रत ही है।"

"यों, कत्ल की बात ही कहाँ ?" नागर नायक ने कहा—मुबारकखान, हम दोनों के खयाल और ख्वाब में, तुम अपने वालिद को तो नहीं भूल गये ?"

"अपने वालिद को ?"

"हाँ, तुम मदुरा जा रहे हो। सँभलना। फिर, सुलतान गयासुद्दीन दमग़ानी सैयद मंजूरशाह नहीं है कि तुम्हें फूलमाला पहनायेगा ? तुम्हारे वालिद को दर-गुज़र कर जाएगा।"

"दर-गुज़र ? मेरे वालिद को ?"

"हाँ, तुम मदुरा जाते हो। अब तुम्हारे दिमाग़ में अक्ल की बात आखिर आई तो सही। तुम अपने वालिद की तरफ से, मलिक फिरोज के साथ इक़बाल से मिले थे, क्या यह घटना सुलतान से छिपी रह सकेगी ? और अगर उसे सचाई मालूम हो गई तो वह तुम्हारे वालिद के गले में हार पहनाएगा या तलवार ?"

"मुबारकखान चुप रहा। चर्चा के इस पांसे पर उसने विचार नहीं किया था। लेकिन लूट'....

"लूट की बात तो ऐसी है मुबारकखान, चिड़िया का पेट कितने से भर जाता है ? मावलों को करने दो लूट। वे तुम्हारे वालिद को थोड़े ही लूटेंगे ! मेरे भाई, जिन्हें वे लूटेंगे, वे सभी लूटने के ही काबिल हैं—इसमें सारी बात आ गई है। नाहक बात का बतंगड़ बनाकर तुम तो किनारे आई नाव को डुबो देना चाहते हो...।"

"अच्छा।" कहकर मुबारकखान ने फौरन चर्चा छोड़ दी।

नागर चुप रहा।

अचानक मुबारक ने अँधेरे में घोड़ा रोक दिया। उसने कहा—"सैयद साहब, आपकी बात आपको अच्छी लगती होगी। मुझे तो पसन्द नहीं आई। मैं जाता हूँ। मेरी इन्सानियत मुझे बुला रही है, मैं अपने वालिद की राय लूंगा। वे जो ठीक समझें, करें।"

मुबारकखान ने घोड़ा मोड़ देना चाहा। रास खींचकर उसे ऐड़ लगाई। घोड़ा चारों पैरों पर उछला, लेकिन मुड़ न सका।

नागर नायक ने कहा—"धीरे-धीरे मुबारकखान, धीरे-धीरे। घोड़ा मुड़ेगा नहीं और जाएगा भी नहीं।"

"नागर....

"मैं तुम्हारी आदत जानता हूँ और अपने मालिक के हुक्म से भी वाकिफ हूँ। अतः मैंने तुम्हारे घोड़े की रास अपने हाथ में रखी है। अँधेरे में तुम्हें दिखता न हो, लेकिन तुम जिसे खींच रहे हो, वह रास मेरे हाथ में थमी है।"

"नागर ! नमकहराम !"

"जो कुछ कहना है, अपने वालिद से कहना। इकबाल के समाचार मिलने पर, हम मदुरा ही जाएँगे।"

"नागर, छोड़ दे...नहीं तो..."

"सैयद साहब, ज़रा सुनिए, सावधान..."

सहसा मुबारक को पीछे से नागर ने पकड़ लिया। और उसके दोनों हाथ पीछे जकड़ दिए।

"सैयद साहब, इधर आइए। मुबारक की तलवार छीन लीजिए। और मुबारक खान, मैं नागर नायक, अपने पिता की शपथ लेकर तुमसे पूछता हूँ कि तुम सैयद के दरगाह तक शांतिपूर्वक, चुपचाप चले आओगे या तुम्हें बाँधकर ले जाया जाए ?"

"बाँधकर ? मुझे ? तू मुझे क्या समझता है ?"

"बच्चा, आपके वालिद ने जब आपको पहली बार मलिक फिरोज़ के साथ सैयद साहब के पास भेजा था, तब मैंने उन्हें कहा था कि मुबारक खान अभी बच्चा है और चंचल है। इसे वारसे में खानदानियत मिली है, इसलिए राज्य परिवर्तन की ज्वाला का ताप यह सहन न कर सकेगा। इसे मदुरा में ही रोशन के प्रेम में पड़ा रहने दीजिए। लेकिन तुम्हारे वालिद की इच्छा दूसरी ही थी। उन्होंने मुझे बताया कि मुबारक तुरुष्क सौदागर का बेटा है और आज स्थान-स्थान पर राज्य-परिवर्तन और विद्रोह उठ रहे हैं, इसलिए यह उनका माहिर न बना तो सौदागरी क्या करेगा ? इसलिए तुम मेरे वकील बनो और इसे अपने साथ रखो। ये आपके वालिद के शब्द हैं।"

"मुझे...तू बाँधेगा...?"

"हाँ, तुम्हें बाँध लूँगा। ज़रूरत पड़ने पर कैद में भी डाल सकता हूँ।

आपके वालिद ने मुझे यह अख्तियार दिया है और आवश्यकता पड़ने पर मैं इसका उपयोग भी करूँगा। मुबारक खान, अगर राज्य-परिवर्तन का विष आप नहीं पी सकते हो, तो उसका विचार छोड़ दो और रोशन का विचार करो !

"इस वक्त तो मैं तेरे संग चुपचाप चला आता हूँ, लेकिन वालिद के मिलने पर तेरी खाल न उतरवा लूँ तो मेरा नाम मुबारक नहीं..." मुबारक रोष में बोला।

"खाल ही क्या, ठीक समझो तो, मेरा सिर ही उतार लेना। अपने मालिक का हित मेरे मन में है और अपने मालिक के हित को हानि न पहुँचे, ऐसे तमाम हक मेरे हाथ में हैं।"

चुपचाप पहाड़ी किनारे की राह काटकर वे मैदान में आए।

दूर एक दीपक दिखाई दे रहा था। यद्यपि वन-पर्वतों की और जंगली पेड़-पौधों की भीड़ थी, फिर भी मैदान में अंधकार मानो रूपहरे रंग से रँगा हुआ प्रतीत हो रहा था। अंधकार मानो बंधनमुक्त हुआ था और बंधन से मुक्त होकर पतला पड़ गया था !

सैयद एकदम खड़ा रह गया—

"अरे, मैं तो बिल्कुल भूल ही गया !"

"क्या ?"

"इकबाल से कहना।"

"क्या कहना आप भूल गए ?"

"कर्नाटकी आनंदी को यहाँ सही सलामत भेज दे। आप रुकिए, मैं जाकर उसे कह देता हूँ।"

"आपने बहुत देर की, सैयद साहब !" नागर ने कहा।

हवा में सैकड़ों घोड़ों की दौड़ का स्वर भर गया था। वह स्वर पवन को प्रकम्पित करता हुआ, अपने आपको बढ़ा रहा था। और दूर कहीं भूकम्प आया हो, इस प्रकार उनके पैरों-तले की धरती काँप रही थी। उनके घोड़ों के कान खड़े हो गए थे।

समस्त वायु मंडल अनेक नादों से निर्मित एक महानाद की महाध्वनि से पूर्ण था। धूल का एक बादल उन्हें घेर कर आगे बढ़ गया।

उनसे, लगभग एक खेत की दूरी पर, उनकी आँखों के सामने होकर, सैकड़ों घोड़े—किसी महानद के भीषण जल-प्रवाह की भाँति, दौड़ते हुए निकल गए!

"सैयद साहब, हम यों करें कि जिसमें मुबारक खान को भी संतोष हो, मेरी नौकरी भी रह जाए और आपकी फिक्र भी दूर हो जाए—हम कल सुबह धीरे-धीरे मदुरा की तरफ़ रवाना हो जाएँ!"

१ ★ लूट के बाद क्या हुआ ?

कर्नाटकी आनंदी की भोर की तन्द्रा भंग हो गई।

जैसे कोई बिरंगी फट चली हो, जैसे मध्य समुद्र के समान पवन में बही जाती विशाल नौका किसी चट्टान से टकरा गई हो, ऐसा भयंकर कोलाहल उस प्रशान्त प्रासाद की दीवारों से टकराया। उसके आघात से जैसे दीवारें भी काँप उठीं ! अनेक छोटे-बड़े और तेज़ स्वरों के एकत्र कोलाहल के तुल्य और अतुल कोलाहल के पारावार को आनंदी सुनती रही। उसे भरोसा हो गया कि यह उसके देखे कई बुरे सपने में से एक सपना तो नहीं है, लेकिन कोई विचित्र और कठोर सत्य अवश्य है। तब उसका सुंदर वदन किसी विचित्र वक्र मुसकान से, पल भर के लिए शोभित हुआ और वह अध-मुँदे लोचनों से सुलतान गयासुद्दीन दमगनी को अपलक देखती रही !

आधी रात कर्नाटकी आनंदी ने सुलतान को अपने सुरीले कोकिल कंठ से गोकुल के कन्हैया की गोपियों के गीत सुनाए थे। सुलतान को आनंदी के इन संगीतमय गीतों में अपार रस था। और उसने आनंदी के लिए आज्ञा दी थी कि प्रति रात जब सुलतान उसके आवास में आए तब वह उसे ये गीत सुनाए। जब तक गीतों को सुनता हुआ सुलतान रस-विह्वल होकर निद्रा में लीन न हो जाए, तब तक आनंदी गाती रहे, चाहे वह थक जाए, उसका कोमल कंठ थक जाए और वीणा पर रमतीं उसकी उँगलियाँ भी थक जाएँ !

इसके बाद पहाड़-जैसे देह का यह सुलतान आनंदी की कोमल कली-सी काया से खेले, अर्ध-जागृत और अर्ध-निद्रित अवस्था में खेले, तब भी कर्नाटकी आनदी को चाहिये कि सिर्फ सहन करती रहे। इसके बाद किसी खंडहर की टूटी हुई दीवारों की तरह गीतों और स्वप्नों के खंडहरों के बीच सुलतान अपनी सेज पर सो जाता।

आज भी अपनी सेज़ पर कर्नाटक की आनंदी अपने पास पड़ी सुलतान की रूखी, कर्कश और अपवित्र काया के स्पर्श को जब तक भूले-भूले, तब तक तो मानो शयनखंड की चारों दीवारें काँप उठें ऐसी सड़-सड़ाहट सुलतान के नथुनों में से उठने लगी और वह आनंदी की नींद को इस प्रकार बिखेरने लगी जिस प्रकार तेज़ हवा में सूखे पत्ते बिखर जाते हैं।

इस रंगीन नृत्यांगना का जीवन सदाकाल सुलतान के संग में यों ही न बीता था। एक ऐसा भी समय था, जब वह मदुरा के श्रीरंगधाम की देव-दासी थी। श्रीरंग मंदिर के अर्चक-श्रेष्ठ चन्द्रशेखर महाराज की आनंदी मोहिनी थी, सुरा थी, सर्वस्वा थी। महाराज चन्द्रशेखर समर्थ पंडित और समर्थ कर्मकाण्डी थे। वे कृष्ण के दूसरे अवतार की तरह थे और आनंदी उनके पीछे पागल बनी राधा की तरह थी।

फिर आया मंजूरशाह, आनंदी के सम्पर्क में। और फिर आया सुलतान....। मंजूरशाह में एक बात थी—आनदी उसके लिए पगली न बनी थी, खुद मंजूरशाह ही उसके पीछे पागल बना था। वह आनंदी की फिक्र रखता. उसका मान-सम्मान रखता। वह कभी आनंदी के सम्मुख स्वामित्व के विजयी अधिकार लेकर नहीं आया था, वरन् हमेशा हाथ जोड़कर प्रार्थी के रूप में आया था।

लेकिन सुलतान में तो यह शिष्टता भी नहीं थी। वह तो शुद्ध मालिक की शक्ल में ही आता और मालिक-जैसा ही हुक्म देता और वैसा ही व्यवहार करता!

अतएव जब आनंदी रात्रि में सोये सुलतान के समीप अनिद्र अवस्था में बैठी रहती, तब उसके मस्तिष्क में अनेक बुरे विचार उठते। और उसे इस

बात की सुध न रहती कि कब विचारों का क्रम समाप्त हुआ और कब सपनों का क्रम शुरू हुआ !

कर्नाटकी आनंदी को पल भर के लिए आशंका हुई कि यह कोलाहल भी एक स्वप्नमात्र ही है और इस कोलाहल के बीच उठनेवाली चीत्कारें, किलकारियाँ और आवाज़ें भी मात्र स्वप्न ही हैं।

परन्तु यह भयंकर कोलाहल स्वप्न की भांति लोप हो जाने का नाम न ले रहा था।

तब तो कर्नाटकी आनंदी अपनी सेज़ से उछल कर खड़ी हुई, एक मन्द स्मिति उसके सुकोमल वदन पर कठोर रेखाएँ अंकित कर गई। पलभर के लिए उसके ओंठ फड़के।

आनंदी की दृष्टि काठ के पुतले की तरह लेटे सुलतान के सिर से पैर तक गई।

चुपचाप वह सुनती रही। कोलाहल घटने के बजाय बढ़ता ही जाता था। उसमें सम्मिलित अनेक स्वरों को अलग अलग परखने का उसने प्रयत्न किया—स्त्रियों की चीखें थीं, बालकों की चीखें थीं, वृद्धों की पुकार थी। उनमें से अति कठोरता तीर की तरह चारों तरफ उड़ रही थी।

अनबोली वह सुनती रही। उसका नाज़ुक एक हाथ उसके सीने पर पड़ा रहा। पलंग की पट्टी पर उसका एक पैर टिका था और दूसरा हाथ पलंग पर टिके पैर के घुटने पर रखा हुआ था। सुप्त सुलतान की ओर निर्निमेष देखती-सी वह वाह्य कोलाहल को सुन रही थी।

शाही महल के दुर्ग-द्वार पर मानो कोई हाथी टक्कर दे रहा है, इस प्रकार वह कोलाहल तेजी से उठा। सारी हवा में शोर मच गया, लेकिन इस शोर के बीच, सुलतान के नथुने अलग आवाज़ कर रहे थे। आनंदी ने शहर देखने के लिये, कुछ बढ़कर, झरोखे के छोटे किवाड़ खोल दिये। और तत्क्षण कोलाहल ने भीतर प्रवेश किया—मानो अचानक बिरंगी फट चली है। उस कोलाहल के जोर से खुले झरोखे के किवाड़ आपस में खड़खड़ाये। झरोखे से बाहर चारों ओर उसे चीखें सुनाई दीं। आसमान में धुआँ घहरा

रहा था। कहीं-कहीं आग के लाल-लाल शोले नज़र आये। समझ में न आने-जैसी प्रतीक्षा उसके नयन में प्रकट हुई। खिड़की पर कोहनियाँ टिकाये, दोनों हथेलियाँ पर मुख धरे, वह सुनती रही—मानों वह कोलाहल के जनक और कोलाहल के सुप्त सुरों को पहचान लेने के लिये अपने मन को मथ रही है।

सहसा शाही महल में चारों ओर दौड़-धूप मची और चीखें उठीं।

सुलतान भी जाग उठा। जिस कोलाहल से श्मशान में भूत-प्रेत भी निश्चिन्त सोये नहीं रह सकते, उस कोलाहल ने सुलतान की नींद को तहस-नहस कर दिया।

"यह क्या है ?" सुलतान अपनी सेज पर पुतले की तरह पड़ा था, अब खड़ा हो गया। उसने अपनी आँखें इस तरह मीचीं, मानो वह उनमें से ऊँघ का आखिरी बिन्दु भी निचोड़ देना चाहता है।

"कुछ समझ में नहीं आता सरकार !" स्वस्थ किन्तु भावहीन स्वर में कर्नाटकी ने उत्तर दिया—"किसी दुश्मन की चढ़ाई-जैसी हाल है।"

सुलतान सोच में पड़ गया : दुश्मन ? मदुरा में दुश्मन ? पिछले तीस सालों में इस सल्तनत पर कई नम और सूखी हवाएँ बही थीं। काफिर मदुरा के गोयड़े (शहर-बाहर) तक आ गए थे। सल्तनत में भीतर ही भीतर खूँरेजियाँ हुई थीं। और उधर कावेरी के उस पार एक बहुत बड़ा हिन्दू-साम्राज्य खड़ा हो रहा था, कर्नाटक-जैसा विशाल राज्य, जिसका एक प्रदेश मात्र था, फिर भी मदुरा तक गरम आँच न आई थी। मदुरा के लिए पर्याप्त अवधि की निर्भयता के चिरकाल ने अपराजेय अभय का आँचल उसे ओढ़ा दिया था। मदुरा...अरे, हैसियत नहीं खुद दिल्ली के सुलतान की, और हैसियत नहीं विजयनगर के महामंडलेश्वर की कि मदुरा के एक कंकर को भी हिला सके...तब फिर यह तीसरा नया दुश्मन कौन पैदा हुआ, कहाँ से आया ? कि जिसने मदुरा के शाही महल में इतना भारी शोर भर दिया है ?

"दुश्मन की चढ़ाई ? मदुरा पर ? मदुरा पर ? आखिर औरत की

जात है ! उसे तो चारों तरफ काया और माया के दुश्मन ही नज़र आते हैं !"

"जी सरकार, आप मालिक हैं, जैसा आप फरमाएँ !"

सुलतान दो लम्बे डग बढा कर, खिड़की के पास आया। कोलाहल की कठोरता ने जैसे उसकी छाती बेध दी। आग के शोलों और धुएँ से उसकी आँखें विस्मय में फटी रह गईं। खुद शाही महल में चारों ओर से उठते चीत्कारों के कारण उसका चेहरा जड़वत् हो गया।

मानो इस तमाम के लिए जवाबदारी कर्नाटकी आनंदी की है, इस प्रकार वह उसकी ओर आँखें फाड़कर बोला—"क्या है यह सब ?"

"जो कुछ मैंने देखा, कह दिया। आपको पसंद न आया। आप मालिक हैं। आप जो कहेंगे, दासी मान लेने को तैयार है।"

रोषपूर्वक सुलतान बाहर जाने के लिए द्वार की ओर बढ़ा। उसने एक कदम उठाया था कि द्वार पर थपकी पड़ी। सुलतान रुक गया।

"खोलो, दरवाज़ा खोलो ! कर्नाटकी, जल्दी दरवाज़ा खोलो....देर न लगाओ......।"

कर्नाटकी के चेहरे की स्वस्थ तटस्थता एकाएक ओझल हो गई और एकाएक उसके चेहरे का लहू उड़ गया।

"यह तो...यह जो...सैयद मंजूरशाह की आवाज़ है !" वह बोल उठी।

चार कदम बढ़ाकर सुलतान ने ज़ोर से दरवाज़ा खोल दिया। मंजूरशाह इस तरह भीतर गिरा, गिरते-गिरते बचा, जैसे वह बंद दरवाजे से चिपक कर खड़ा था।

सुलतान ने क्रोध से फटी हुई आवाज में पूछा—"क्या है यह बदतमीज़ी ?..."

मजूरशाह ने इस तरह सिर उठाकर देखा, मानो वह इस आवाज़ को सुनकर चौंक उठा है। उसके चेहरे पर किसी प्रकार का सम्मान-भाव या विनय-भाव नहीं आया, उल्टी एक नफ़रत छा गई—"अहा हा, सुलतान... खुद आप...?"

फिर सुलतान की तरफ पीठकर और कर्नाटकी आनंदी का हाथ खींचकर मंज़ूरशाह बोला—"चल कर्नाटकी ! वक्त नहीं है, जल्दी चल !" और सैयद कर्नाटकी को ज़ोर और ज़नून से दरवाजे की ओर खींचता गया।

सुलतान गयासुद्दीन ने सैयद मंज़ूरशाह के कंधे पर हाथ रख दिया और एक धक्के में उसे अपनी तरफ मोड़ लिया—"सैयद, तुम खुद, क्या है यह ? मेरे शाही हरम में, मेरी माशूक पर हाथ उठानेवाले तुम कौन ?"

सैयद मंज़ूरशाह ने एक धक्का देकर सुलतान का हाथ हटा दिया। इस को सुलतान निरे विस्मय से देखता रह गया।

"सुलतान, तेरी सल्तनत अब सिर्फ़ एक दिन की है। माशूकों और गणिकाओं का मोह छोड़कर अब सल्तनत को सँभाल, अगर सँभाल सके तो। चल कर्नाटकी, वक्त बहुत कम है और मैं जान का जोखिम मोल लेकर यहाँ तक आया हूँ।"

और उसकी बात की पूर्ति के समान शाही पहलू में मरणान्तक घायल लोगों की चीखें सुनाई दीं। अपने घावों से लहू बहाता, भागता हुआ, एक आदमी खिड़की से दिखाई दिया। और उसके पीछे उड़ता हुआ एक फरसा उसकी खोपड़ी के टुकड़े करता हुआ दिखाई दिया।

मंज़ूरशाह ने कर्नाटकी से व्यग्रता, आग्रह और प्रतीक्षामय स्वर में कहा—"चल, शाही महल सारा दुश्मनों से भर गया है। सारा मदुरा दुश्मनों से भर गया है।"

"लेकिन दुश्मन हैं कौन ? आनंदी की आवाज़ में किसी मर्द से अधिक हिम्मत थी।

"सारा मावली-संघ मदुरा पर टूट पड़ा है।"

"हैं !! आनंदी के स्वर की स्वस्थता तिरोहित हो गई। उसका चेहरा निरे विस्मय से भंग हुआ—

"मावली-संघ ?"

"हाँ, बाहर जिसकी गर्जना उठ रही है, वह उसी संघ की लूट और डकैती है ! ...चल जल्दी कर !" सैयद ने कहा।

और उसी समय में कुल्हाड़ी, फरसे, भाले और तलवारें लेकर मावलों की एक टोली भीतर घुसी।

टोली के लुटेरों ने आते ही सुलतान को नीचे गिराकर, उसके आभूषण लूटना शुरू कर दिया। उसके कान के आभूषण को उन्होंने जोर से खींच लिया कि कान का अधोभाग अलग हो गया और सुलतान ने ज़ोर से चीत्कार किया। ग्रीवा के कंठहार इस प्रकार कठोरतापूर्वक उन्होंने खींचे कि गर्दन पर खून की रेखाएँ उभर आईं !

एक टोली कर्नाटकी आनंदी की ओर भी बढ़ी—

"खबरदार"—सैयद ने कहा।

कुछ लोग हँसने लगे। किसी ने पीछे से आवाज़ दी—"इस मुर्गे को खत्म कर दो। इस औरत के आभूषण लूट लो और इसे उड़ा ले चलो !"

इस हुक्म को सुनकर, कर्नाटकी भय के मारे बावली बन गई।

"सुलतान ! सुलतान साहब ! आपके महल में मेरी यह हालत ?"

"सुलतान ?...कौन सुलतान ?....अरे यह रहा सुलतान...मारो... मारो !"

और इसके पूर्व कि कोई कुछ कहे-सुने, समझाए; फरसे गिरे, घाव पर घाव, प्रहार पर प्रहार हुए। मरणान्तक काली चीखें उठीं ! अपनी आँखों पर हथेली रखकर कर्नाटकी सैयद के पीछे छिप गई !

मूक और मूढ़ सैयद देखता रहा ! चारों ओर लहू के फव्वारे उड़े !

"चलो, यह पाप भी पूरा हुआ !" एक मावला ने कहा। वह टुकड़ी का नायक प्रतीत होता था—"अब इस औरत को पकड़ लो।"

"ठहरो !" सैयद बोले—"पहचानते हो मुझे, मैं कौन हूँ ?"

"अरे, ये तो सैयद मंजूरशाह !"

"हाँ, मैं सैयद मंजूरशाह ! यह मेरी औरत है।"

"आपकी औरत ?"

"हाँ, मेरी बीबी, अगर कोई इस पर हाथ उठाएगा तो उसे इकबाल को जवाब देना होगा।"

"लेकिन....हमें तो, जो भी मिल जाए, उसे लूट लेने का हुक्म मिला है।"

"मुझे भी ?"

नायक चुप रहा।

'मेरी बीवी को भी ?' सैयद बोले—"अच्छा, कर्नाटकी, अपने सारे आभूषण दे दे इस नायक को।"

जल्दी से कर्नाटकी ने अपने आभूषण मंजूरशाह को दिए, मंजूरशाह ने इकबाल की ओर फेंक दिए।

'मैं सैयद, धर्मगुरु, आमिल। तुमने मेरी इतनी इज्ज़त रखी, यही काफ़ी है। तुम्हारा ऐहसान है।" कर्नाटकी का हाथ थाम कर, सैयद आगे बढ़ा। नायक को एक ओर हटाता हुआ, कर्नाटकी के साथ चल दिया।

शाही महल में भारी कुहराम और कत्लेआम मचा था। जहाँ-तहाँ गुलामों, बांदियों, सुलतानाओं और चौबदारों, ख्वाजा सराओं और दोरंगियों वगैरह के टुकड़े गिरे थे ! आदमी के खिलाफ आदमी का जहर कितना खतरनाक बन सकता है, यह जीवित उदाहरण उसका प्रमाण था !

मावलों की सुलतान और उसके लोगों से कट्टर दुश्मनी थी। सुलतान के लोगों ने उन्हें आज तक लूटा था। उनकी ज़मीन, उनकी दौलत और उनकी बीवियाँ सुलतान और उनके ज़ालिमों ने छीन ली थीं ! भयंकर मजहबी जुनून, लूटमार और अनाचार के दिनों में सुलतान ने गलाई जाने वाली धातु की तरह मावलों को गला-जला कर सल्तनत में शामिल किया था। उन अत्याचारों की कहानी बहुत भीषण और काली है ! परिणाम में, मावलों और मोपलों का पागलपन भी मनुष्यता की समस्त सीमाओं के पार चला गया था। बाघ और चीतों को भी अपनी निर्दयता से मात कर रहा था !

लेकिन, यह सब इतना भाषण और सर्वग्राही बन सकता है, सैयद को इसका अनुमान नहीं था, आशंका नहीं थी। सुलतान का महल लाशों से पटा हुआ कब्रस्तान बना था ! उसके समस्त प्रसाधन-पदार्थ, सिंगार-साधन चकनाचूर कर दिए गए थे ! मस्त साँड़ जिस प्रकार खेत की मिट्टी रौंदता हैं, उसी प्रकार इन पिंडारियों ने महल को तहस-नहस कर दिया था !

दीवारों में जहाँ तस्वीरें टँगी थीं, वहाँ अब गहरे गड्ढे शेष रहे थे। नक्काशी, शिल्प और कला नाम की सभी कारीगरी कुल्हाड़ों की चोटों से स्वर्ग सिधार गई थी। रुई और काठ की सभी सामग्री तोड़-फोड़ दी गई थी और बाद में आग की भेंट कर दी गई थी।

अब महल में चारों तरफ, सिर्फ धुआँ उठ रहा था!

मावले और मोपले धुएँ से काले और लहू से लाल हो रहे थे! उनके कपड़ों पर खून और मांस के धब्बे थे। शाही महल के बीच आँगन में, लूट के सामान और हथियारों का ढेर था।

एक जगह खून से सना हुआ, बुर्का इधर-उधर ठोकरों में उड़ रहा था, सैयद ने उसे कर्नाटकी के चेहरे पर डाल दिया। स्वयं उसके कपड़ों पर तो सुलतान के खून के धब्बे पड़े थे!

जैसे-तसे वह शाही महल से बाहर निकला।

कर्नाटकी का अंग-अंग काँप रहा था। लगता था, इस पल गिरी, उस पल गिरी।

सैयद ने तेज स्वर में कहा—"अब, मैं जब आ पहुँचा तब फिक्र क्यों करती है? अगर कहीं बेहोश होकर ज़मीन पर गिरी तो, तेरी एक हड्डी भी बचेगी नहीं!"

बाहर रास्ते में भयंकर कोलाहल फैला था। घायल नर-नारी रास्ते में दौड़ रहे थे और भाले और फरसे लेकर मोपला पिंडारी उनके पीछे-पीछे दौड़ते, उन्हें ललकार रहे थे! औरतों की चोटी पकड़ कर घसीट रहे थे और कान खींच कर आभूषण छीन रहे थे। कान से आभूषण खींचने में बाधा आने पर कान ही काट लेते थे और इसी तरह हाथ काट लेते थे। और तब, अपने घायल शिकार को छोड़कर, नए शिकार की तलाश में दौड़ते थे!

"मावला कौन? विजयनगर के रहनेवाले?" कर्नाटकी ने भयग्रस्त स्वर में पूछा।

"तू इस वक्त चुप रह मेरी माँ! ज़रा, खामोश रह!" सैयद ने बमुश्किल कहा।

दुकानें लूटी जा रही थीं। मकान लुट रहे थे। जहाँ देखो, वहाँ मावले-मोपले नज़र आ रहे थे। और सुलतान के सिपाहियों या दोरंगियों का कहीं नाम न था! ऐसा लगता था—भयंकर भूतों के समूह उठ आये थे, और उनका काला कोलाहल सर्वत्र भर गया था!

सैयद शहर का जीनकार था—आगे और आगे वे भागते, चले गए।

इकबाल के लुटेरे सर्वत्र थे। दूर कोलाहल मधुमक्खियों की भिनभिनाहट-सा प्रतीत हो रहा था। और आग का धुआं काले खूनी बादलों-सा उठ रहा था!

लेकिन दोनों जब चार-पाँच गलियाँ पारकर राजमार्ग या किसी बड़े मार्ग पर आते तो पुनः उन्हें मावलों के दर्शन होते—वही कुल्हाड़े, वही फरसे, वही दानवीय किलकारियाँ और वही खूनी चेहरे! इतने मावले कहाँ से आए? इकबाल ने इतने मोपले कहाँ से एकत्र किये? सैयद को पहली बार यह प्रतीत हुआ कि उसने इकबाल की हिम्मत और उसके दिमाग़ को नापने में भारी भूल की है। सुन्दर पांड्य ने जलालुद्दीन एहसान शाह को बुलाकर अपने हमदीनों के लिए कयामत को निमंत्रण दिया था, तब सैयद हँसता था। आज वह उससे भी बड़ी कयामत अपने हमदीनों पर लाया है। तब उस पर कौन हँसेगा, कौन थूकेगा?

बिल्ले ने किसी चिड़िया को पकड़ लिया हो, इस तरह कर्नाटकी का हाथ पकड़ कर सैयद भाग रहा था। कहीं ओट मिल जाए, मदुरा में आज उसे छिपने की जगह मिल जाए।

अब ठीक है। सामने से समस्वर खड़खड़ाहट और कई पैरों की एक कतार कूच की आवाज़ सुनाई दी।

आए...सुलतान के सिपाही आये....अब मावले अपनी करनी का फल चखेंगे। अब इनका खात्मा ही समझिए।

सिपाही आए और मावलों से भिड़ गए। कुछ मावले मारे गए। शोर उठा, चारों तरफ से मावले दौड़ते आए।

सिपाहियों और मावलों की बीच जंग जमा। मावलों ने भी मोर्चा बनाया, लेकिन धीरे-धीरे वे पीछे हटने लगे। पल भर के लिए यह प्रतीत होने लगा कि मावले अब भागे, भागने ही वाले हैं। और तभी इकबाल कुछ मावलों के साथ वहाँ आया।

उसके हाथ में एक बहुत बड़ा भाला था और भाले पर सुलतान गयासुद्दीन दमगनी का सिर था।

सुलतान के सिपाहियों ने इस सिर को देखा। पल भर के लिए अपलक देखा और फिर अपने हथियार फेंक कर भागे।

जिस प्रकार किसी नदी का महाबाँध टूट जाता है—पहले एक कंकर खिसकता है और फिर दो-चार-पाँच कंकर खिसकते हैं और इस प्रकार सारा बांध धराशायी हो जाता है। सुलतान के सिपाही भी बाँध की तरह चारों ओर बिखर गए और विजय में मदमाते मावलों ने उनका पीछा किया। उनकी चिल्लाहट के साथ उनके फरसे धड़ाधड़ ऊपर से नीचे गिरने लगे और सारा शहर मरनेवालों की चीखों से भर गया।

इस भयानक दृश्य के त्रासदायक जादू के समक्ष सैयद पल-भर के लिए बावला और बेवकूफ बना खड़ा रह गया। हिरन की टोलियों पर टूटे हुए चीतों को अगर रोका जा सकता है तो इन्हें भी रोका जा सकता था। कत्ले-आम मचा था। आस-पास के घरों से लूट का सामान बाहर फेंका जा रहा था। जिसे वे उठा न सकते थे, उसे आग में खाक कर देने का उनका पक्का इरादा था।

सैयद की बात कोई सुननेवाला नहीं था। सैयद ने उन्हें रोकने की कोशिश की तो दो-तीन मावलों ने उसे ज़ोर का धक्का दिया—"जाओ मियाँ, जुम्मे की नमाज़ के वक्त जो कुछ कहना हो, कह देना और हम उसे चुपचाप सुन लेंगे। इस वक्त तो मियाँ, अच्छी बात है कि हम तुम्हें पहचानते हैं, वरना गेहूँ के साथ घुन की तरह तुम भी पिस जाते। कहीं कोई अनजान मावला न मिल जाए, अपनी खैर चाहो, तो कहीं चुपचाप, तसबीह हाथ में लेकर, छिप कर बैठ जाओ।"

"खबरदार !" मुबारक ने कहा—"नागर नायक !"

नागर नायक मुबारक खान के पास आकर खड़ा हो गया।

कर्नाटकी का हाथ पकड़े सैयद सीढ़ियाँ पारकर भागा।

हवेली का दरवाजा उसने खटखटाया। भीतर से किसीने थोड़ा खोल दिया।

खुले दरवाज़े की देहली के बीच मुबारक का बाप अमीर हसन सौदागर खड़ा था। उसके पास बारूद के कई थैले रखे हुए थे और वह सुलगती हुई मशाल लेकर अपनी जगह खड़ा था !

बाहर शोर उठा—

"मारो....लूटो ! मारो ! लूटो !!"

१० ★ मदुरा का सातवाँ सुलतान

मावला और मोपला जब लूट के लिये चले थे तब सैयद की कल्पना में भी यह बात न थी कि ये पिण्डारी इतनी क्रूरता का परिचय देंगे।

सैयद ने पूछा—"मलिक फिरोज कहाँ है ?"

हसन सौदागर ने, उलाहना देने के खयाल से एकदम दूर रहते हुए, स्वस्थ स्वर में कहा—"इस वक्त मावलों पर अगर तुम्हारी भी छाप न पड़ी तो मलिक फिरोज़ की छाप क्या पड़ेगी ? अब हमें तो चाहिये की अपनी जान बचाते हुए इस जहर को किनारे लगने दें !"

"लेकिन यह तो साफ कत्ले आम...।'

"आप रहे सैयद, मैं ठहरा सौदागर। आपने एक सौदा किया, वह उलट गया। शतरंज तो आपने फैला दी लेकिन अपने प्यादे आपके हाथ में न रहे। अब उसका अफसोस छोड़िए।

हवेली पर पत्थर बरसने लगे, लगता था इसके चारों ओर भी मोर्चा खुल रहा है।

"यह हवेली क्योंकर कोरी रह गई ? लूटो इसे।" बाहर शोर उठा।

हसन सौदागर ने खिड़की की दरार में से बाहर देखा—"मुबारक बेटा, अन्दर आ जाओ ! नागर, इसे अन्दर ले आ।"

मुबारक इस तरह अचल खड़ा था, मानो उसने अपने बाप के बोल नहीं सुने—"मावलो, तुम अनेक हो और मैं एक हूँ....।"

"एक नहीं, हम दो हैं। जहाँ आप खड़े हैं वहाँ मैं भी खड़ा हूँ और खड़ा रहूँगा।" नागर नायक बोला।

"हम दो ही हैं। तुम कई हो लेकिन हमारे जीते जी तुम इस हवेली को नहीं लूट सकोगे।"

"ये बात! तो अरे, मार डालो इन्हें!" किसी ने टोली में से कहा। टोली के कुल्हाड़े इस प्रकार उड़ने लगे, मानो उनमें जान आ गई है!

"मावलो और मोपलो, जरा भी आगे बढ़ने से पहले तुम मेरी बात सुन लो। एक बार अगर तुमने हमला शुरू कर दिया तो फिर किसी की कुछ सुननेवाले नहीं हो। इसलिए इस वक्त मेरी सुनो। अगर सारे मदुरा में किसी ने तुम्हारे नग्न-ताण्डव की तारीफ की है तो, वह मैं हूँ। मदुरा के लोगों ने तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ा है फिर भी तुम उन्हें सता रहे हो, यह तुम्हारा अन्याय है और तुमने इसका विरोध भी अब तक नही जाना, देखा। मैं तुम्हें वही दिखाना चाहता हूँ। दोस्तो, अजीजो! हम तुम्हें आगामी कल दोस्त और अज़ीज कहकर अपने सीने से लगा सकें; और जालिम सुलतान के शासन को खत्म कर देनेवाले मुक्तिदूतों के रूप में सारा शहर तुम्हारा स्वागत करे, इतना तो कुछ शेष रहने दो!"

भीड़ में एक मावला ने दूसरे से पूछा—"यह क्या बकता है? अरे यहाँ तरफदारी और सीने से लगाने की बात कहाँ से आ गई? आज तक मदुरा के लोगों ने हमारी ज़मीन और जागीर, हमारा ज़र और हमारी जोरुओं को लूटा है और रंग उड़ाया है। आज हमारी बारी है।"

"बात यही ठीक है।" दूसरा चिल्लाया—"ए भाई, ओ बिरादर! तू बड़ा बहादुर है, यह मंजूर है। तू बड़ा बातूनी है, यह भी कबूल है। मगर अब हम कुछ भी सुनना नहीं चाहते, इसलिये, अगर तू बेवकूफ नहीं है तो, चुप रह जा और हवेली के दरवाजे खोल दे।"

नागर नायक बीच में पड़ा—"जरा ठहरो भाइयो, तुम अगर लूटना चाहते हो, तो लूटना, मगर पहले मेरी बात सुन लो। मैं इस हवेली में नहीं

रहता। और न ही मैं कोई अमीर हूँ। नौकरी करता हूँ और पेट भरता हूँ। मेरे एक दो घोड़े तुम्हारे किसी काम न आयेंगे, लेकर मुझे निकल जाने दो। मैं भी तुम्हारे-जैसा ही गरीब आदमी हूँ।"

"अब यहाँ एक-दो टट्टुओं की फिक्र किसे पड़ी है? और तेरे पास लूटने-जैसा है ही क्या? अरे जाता हो, तो जल्दी निकल जा।"

नागर की ओर मुबारक ने नफ़रत से देखा—पल भर पहले तो यही बड़ी-बड़ी बातें बघार रहा था, लेकिन जल्द ही इसका रंग पलट गया।

बिना प्रतीक्षा किये, नागर सीढ़ियाँ उतरा और दो घोड़े लेकर चलने लगा। जैसे हमदर्दी के कारण, मोपलों ने उसके लिये अपने बीच एक गली बना दी।

"मुबारक, मुबारक!" अन्दर से हसन सौदागर ने पुकारा—"आ जा, आ जा।"

लेकिन मुबारक नहीं हटा। नागर नायक उसका साथ छोड़कर खिसक गया, इस पर वह विस्मित था और न भी था। उसके नौजवान चेहरे पर सुधि और समझ के गुलाबी रंग पर क्रोध का लाल रंग उभरा।

"तुम्हें अपने सुलतान को जवाब देना पड़ेगा।"—मुबारक ने कहा—"फिर भी, अगर तुम्हारी यही मरज़ी है तो आओ।" उसने तलवार तान ली—"एक दो, चार को तो मैं अपने साथ लेता जाऊंगा। फिर चाहे जो हो।"

हवेली की खिड़की खुली और हसन सौदागर बाहर आया—"मुबारक मुबारक!" बूढ़ा चिल्लाया—"क्या तू, मेरी मौत बिगाड़ना चाहता है? अन्दर आ जा। लूटने दे। जिन हाथों ने कमाया है, लुट जाने पर वे फिर से कमा लेंगे। लेकिन मेरी सफेदी पर धूल न फेंक बेटा!"

मुबारक कुछ उत्तर दे, इसके पूर्व ही भीड़ के पीछे से एक अति विचित्र आवाज़ उठी और भीड़ के पृष्ठ भाग में जैसे भगदड़ मच गई। आगेवालों की पीठ पीछेवालों से टकराई। आगेवाले मुड़कर देखने लगे, तब पीछेवाले आगेवालों से टकराये।

होंची....होंची...होंची...भें...भें...की भयंकर-ध्वनि भीड़ के पीछे से आई। पलभर के लिये किसी की समझ में यह न आया कि यह सब क्या बला है?"

सैकड़ों गधे और कई मजबूत सांड़ बावले बने भीड़ में घुस गये थे और दौड़-धूप कर रहे थे। ये सब पशु एक साथ उछल-उछल कर लातें मार रहे थे और साँड अपने सींगों से प्रहार कर रहे थे।

भौरों की उड़ान-जैसी एक आवाज़ पीछे से आई—"मुबारक खान, जरा खिसक जाओ, हसन चाचा जरा हट जाओ!" भीड़ के पीछे से नागर नायक की आवाज़ आई—"मावलों को आज लूट लेने दो, जब तक मैं नागर नायक बैठा हूँ, तब तक आप की हवेली कौन लूटता है, मुझे देखने दो।"

अब मुबारक पछताया। पल भर पूर्व उसने अपने वफादार नौकर के प्रति अन्याय किया था। नागर ने पिण्डारियों की टोली से रास्ता पाने के लिये सारा नाटक किया था। हवेली के सामने, रास्ते के निकट खिरक में हसन सौदागर के बैल और गधे बँधते थे। वहीं कुछ रखवाले भी थे। नागर ने उन्हें सावधान किया और सब के हाथ में एक एक गुलेल दी।

ये गुलेलें अब चल रही थीं। किसी का सिर फूटा, किसी का कपाल और भीड़ में भारी भगदड़ मची। इसके अलावा, पागल बने पशु पिण्डारियों को कुचलने लगे।

जल्द ही भीड़ वहाँ से भाग चली। अन्यत्र कहीं किसी ने सामना न किया था। धतूरे के शहद को कौन छुए?

गली में पच्चीस-तीस घायल और कुचले हुए पिण्डारियों के सिवाय कुछ न बचा।

"वाह नागर, वाह!" मुबारक ने कहा और उसने नागर का बहुत सम्मान किया और उसे अपने गले से लगा लिया। सौदागर ने अपना कण्ठ-हार उतारकर नागर के गले में डाल दिया। कहने लगा—"सैयद साहब, अब आप न घबराइये। बहन, आप भी चिन्ता न करें। अब हमें मलिक

की खोज करनी पड़ेगी। इकबाल से अपनी मुलाकात होनी चाहिए, तभी यह बला टल सकती है।"

मुबारक ने कहा—"चाचा, गुस्ताखी माफ।"

"माफ! बेटा, यह क्या कहता है?"

धोखा हुआ। जीतनेवाला जीत गया, हारनेवाला हार गया। अब इन घायल आदमियों को हवेली में ले जाकर, इलाज कराना चाहिए। हालाँकि ये लोग नादान और बेवकूफ हैं मगर आये तो ये थे इन्साफ को पुकारने के लिए और नाइन्साफी को ललकारने के लिए....क्यों सैयद साहब, आपके तो ये मुरीद हैं?"

सैयद ने सिर खुजलाया। पसीने से तर-बतर और धुले हुए उसके चेहरे पर, व्यथा की बदली छा गई थी। उसने कर्नाटकी को देखा, उसके चेहरे पर सैयद तो क्या, सैयद की सात पीढ़ियों तक का कोई आमिल पार न पाये ऐसा अजब एक भाव छाया था। इस भाव में सैयद के लिये ममता थी? एहसान था...? नफरत थी? क्या था?

सैयद कुछ बोला, उसके बोलों से ऐसा प्रतीत होता था, जैसे वह कुछ बोलना नहीं चाहता, किन्तु कोई उसके हृदय को निचोड़-निचोड़ कर, उसे बोलने को मजबूर कर रहा है। वह लड़खड़ाते हुए, अर्द्धविक्षिप्त स्वर में बोला—"कर्नाटकी को ढूंढ़ता हुआ मैं मावलों का संगी बना। मैं इकबाल से मिला, वह मावलों का आज़म बन गया था। उस समय मेरा अन्दाज़ था कि राज्य परिवर्तन होगा। सुलतान और उसके साथियों के कत्ल और लूट और कत्लेआम की कल्पना मैं ने नहीं की थी...खुदा...खुदा...खुदा....मुझे माफ करो!"

"जिन्दगी में सिर्फ आमिली तालीम से काम नहीं चलता, सैयद साहब! सौदागरी की तालीम भी चाहिये। हमें वह विद्या नहीं चाहिये, जिसका हरएक सौदा उलट जाता है। तो यह बात खत्म हुई। जो कुछ नफा और नुकसान होना था, हो चुका। अब अगले सौदे का खयाल रखना चाहिये। आगे इकबाल से समझ-बूझकर काम लेना चाहिये। मलिक फिरोज

से सावधानी से काम लेना चाहिये। सैयद साहब, राज्यक्रान्ति में भाग लेना और खुदा को याद करना—ये दोनों चीजें एक साथ नहीं चल सकतीं। ये गैरदीन जो कहते हैं, ठीक है—"खुदा को बाहर रखो और राजकाज के भीतर घुसो। क्यों बहन, आप कुछ नहीं कहतीं ?"

कर्नाटकी बोली—"सैयद साहब बोल रहे हैं; तब मैं क्या कह सकती हूँ। मैं तो एक नाचने-गानेवाली। कीमत लेकर अपना शरीर बेचनेवाली। अगर सैयद साहब को कीमत चुकाने का अफसोस हो तो...।"

"नहीं नहीं...मेरी जान, तू नहीं समझी, तू नहीं समझी। अफसोस ? और वह भी तेरे लिये ? कर्नाटकी, इस दिल में जहाँ तू है, वहाँ दूसरा कोई नहीं है, खुदा भी नहीं, अरे वह तो वहाँ तक घुस भी नहीं सकता।"

अमीर हसन सैयद की कामुकता की बकवास सुनता रहा। सच्चा सौदागर सामनेवाले का भेद पा लेता है, परन्तु अपना पेट नहीं देता है।

और इस बात को और आगे बढ़ाने का उसका ज़रा भी इरादा न था। जो कुछ हो चुका था उसे हज़ार सैयदों का आत्मदोष या आत्मसंतोष भी नहीं सुधार सकता था। उसने इकबाल को पिंजरे के तोते की तरह माना था। लेकिन वह तो पिंजरे का बाज निकला ! इसका किसे अनुमान था ? सैयद की भूलें खोजना आसान काम था लेकिन वह स्वयं भी कहाँ निर्दोष था ?

फिर भी जिसका अन्त ठीक, उसका सब कुछ ठीक। और इस गणना के अनुसार भी, इस भयंकर और जिसकी किसी ने पहले भविष्यवाणी न की थी, ऐसी लूट से एक अच्छी बात भी प्रकट हुई थी। जालिम सुलतान अपनी समस्त बुराइयों, अन्यायों और धोखेबाजियों के साथ विनष्ट हो गया था। भाले पर चढ़ा हुआ उसका सिर, सारे शहर को उसके पापों से परिचित करा रहा था।

अबेर-मलिक फिरोज सुलतान होनेवाला है। इसीलिए तो यह लूट मची है। अब उसे जल्द-से-जल्द मैदान में आना चाहिए, सल्तनत सँभाल लेनी चाहिये और दंड या भेद से, किसी भी प्रकार इकबाल को पुन: मगरूर की पहाड़ियों में लौटा देना चाहिये। फिर से वीर-वणिकों के बेलगोला से

व्यापारिक मार्ग खुल जाएँगे। फिर से उनके भार ढोनेवाले गधे और बैल दिन-प्रतिदिन, साँझ-सुबह, दोपहर और अर्द्ध-रात में काफिलों में चलते ही रहेंगे!

बेलगोला से मगरूर, मगरूर से कावेरी, कावेरी से मदुरा, मदुरा से टोंडाईगढ़, टोंडाईगढ़ से नेपाल, (मद्रास के निकट एक द्वीप) नेपाल से विजय, विजय से खोना (बर्मा) खोना से खत्ता (चीन)—इस तरह अमीर हसन के काफिले कावेरी की धारा के समान अखंड रूप से चलते रहेंगे।...... मदुरा की लूट में जो हमदीन कत्ल हुए, उनकी संख्या ज्यादा से ज्यादा दो हजार होगी।......अरे दो-चार सौ इधर या उधर! लेकिन सुलतान गयासुद्दीन की अदूरदर्शिता के कारण बंद पड़ा हुआ व्यापार का द्वार तो फिर से खुल जाएगा। और सुलतान चाहे मानते हों कि व्यापार उनके अपने ही लिए हैं, किन्तु सौदागर जानते है कि व्यापार-सौदा सुरक्षित रहे, इसी के लिए सुलतान हैं। व्यापार की सुरक्षा जिस दिन संकट में पड़ जाती है, उस दिन सुलतान भी खतरे में पड़ जाते हैं। सुलतान गयासुद्दीन दमगनी इस चीज़ को न समझ सका। अब यह मान लिया जाए कि मलिक फिरोज़ इसे समझेगा।

इस भूल-भुलैया में सैयद बेचारा बच्चा था। उसके आमिली जीवन में लोक-व्यवहार सिर्फ खुदा और शैतान के बीच में बँट गया था। उत्तर और दक्षिण ध्रुव के मध्य विशाल व्यापारिक प्रदेश हैं, इस तथ्य से वह अनजान था। गलती के लिए गँवार पछताता है और सौदागर उससे लाभ उठाता है।

अचानक बाहर भारी शोर उठा। प्रचंड पुकारें, प्रचंड कंठ स्वर, प्रचंड आवाजें!

समय, संयोग और योगायोग देखे बिना ही, हवेली के सब लोग बाहर निकल आए और सीढ़ियों के सिरे पर खड़े रह गए। अब तक मुबारक और नागर ने राह में पड़े घायलों को उठा लिया था और हवेली के भीतरी चौक में उनकी शुश्रूषा का प्रबंध किया था। वे भी शोर सुनकर बाहर निकल आए।

सुनसान गली में मावलों के चुने हुए समूह के आगे-आगे इकबाल चल रहा था। भीड़ किसी को घसीट कर ला रही थी और घसीटा जानेवाला आदमी आधे भय, आधे त्रास और आधे जुल्म से काँपते हुए कंठ से 'रहम' की भीख माँग रहा था!

कितना करुण था भीख का उसका स्वर!

मुबारक ने उस स्वर को विस्मय, अचरज और त्रास की निरी विमूढ़ता पूर्वक सुना। रहम के लिए आजीजी करनेवाला यह स्वर था काजी उमरावखान का—रोशन के वालिद का!

सुलतान गयासुद्दीन का खास सलाहकार, खास हिमायती और खास काजी, इस वक्त इकबाल से दया की भीख माँग रहा था!

इकबाल ने तिरस्कारपूर्वक जमीन पर पेट घसीटते काज़ी की बगल में ठोकर लगाई और 'हाय' पुकार कर काज़ी जमीन पर तड़पा। मावला उसे, उसके सिर के बाल पकड़ कर ठेठ उसकी हवेली से घसीट कर यहाँ लाए थे। उसके कपड़े फट गए थे और बदन पर जहाँ-तहाँ घाव लग गए थे और उनसे खून बह रहा था। उसकी दाढ़ी के बालों में राह की धूल भरी थी और वह धूल भी खून से लाल हो चुकी थी। शैतान के कदमों में गिरकर जैसे कोई पापी अपनी जान की माफी, सलामती माँग रहा हो, काजी का ऐसा ही दीदार था।

फिर कुछ खिसक कर वह आगे बढ़ा, फिर से इकबाल के पैर पकड़े और बार-बार कहने लगा—"मुझे माफ कर दो, मुझ पर रहम करो। मैं पापी हूँ, तू हारुनुल रसीद सानी है। मुझ पर रहम करो। मैं मक्का शरीफ चला जाऊँगा। फिर कभी यहाँ नहीं आऊँगा। मुझे माफ़ कर दो, मुझे माफ़ करो!"

इकबाल ने उसके केश पकड़ कर उसे खड़ा कर दिया और उसके चेहरे को अपने चेहरे के पास खींचा। छेड़ा गया नाग जिस तरह फुफकारता है, उस तरह फुफकारता हुआ वह कहने लगा—

"नापाक कुत्ते! ज़रा अपने आस-पास देख! इनमें से कितने मावलों

ने तुझसे रहम की भीख माँगी थी और तूने कितनों पर रहम किया था ? क्या तू काज़ी नहीं था ? क्या तू इन्साफ़ के आसन पर बैठनेवाला व्यक्ति नहीं था ? तू ही नापाक गयासुद्दीन का हथियार था ! इन्साफ़ के नाम पर तू ने ग़रीबों की जमीनें लूटी हैं, गरीबों की जागीरें लूटी हैं। तूने मनुष्यों की मनुष्यता को लूटा है, अनाथ, निराधार और साधनहीनों की माँ-बहनों को तू ने लूटा है ! नापाक ! रहम ? और वह भी तेरे लिए ?...अरे, तुझ पर रहम करने पर तो रहम का नाम शैतान हो जाए, माफ़ी का नाम गुनाह हो जाए और गरीबों का नाम धूल बन जाए ! नापाक...तुझ पर रहम ? तेरा इन्साफ...वह इन्साफ जिसे तू ने आज तक मावलों को दिया है....तेरे शरीर के, राई-राई जितने टुकड़े कर कौओं और कुत्तों को फेंक दिए जाएंगे...नापाक !...शैतान के बच्चे !...

मुबारक यह सब कुछ सुनता रहा। उसे कोई बात समझ में आई तो केवल यही कि जिसे यह भयंकर मौत की धमकी दी जा रही थी, वह रोशन का पिता था। रोशन इसे प्यारी थी और रोशन को प्यारा उसका बाप था !

जैसे हवा में उड़ता हुआ गरुड़ नीचे झपटता है वैसी ही तेज गति से मुबारक सीढ़ियाँ उतरा। और उसने इकबाल के हाथ से फरसा छीन लिया।

इकबाल उसे देखता रहा....

"मुबारक !" वह हँसा। अपने स्वभाव वश वह मुबारक के काम का कुछ और ही अर्थ समझा।

"हाँ ठीक है ! तुम्हें भी अपना कोई पुराना बदला चुकाना है। और यह काम तुम खुद ही करना चाहते हो, तो लो, यह फरसा और इस नापाक के सीने पर प्रहार करो ! मैं देखना चाहता हूँ कि इस शैतान के सीने में दिल कहाँ छिपा है और कैसा है वह ? उठाओ फरसा !"

मुबारक ने फरसा थाम लिया। वह नीचे गिरे हुए काज़ी को देखता रहा और इकबाल की ओर भी देखता रहा।

इकबाल बोला—"अरे नौजवान, कलेजे में काली अदावत भरी हो और हाथ कच्चे हों, यह नहीं चल सकता ! चल, मार फरसा !"

साथ ही मुबारक का हाथ पकड़कर, इकबाल ने, मुबारक के हाथ में थमे फरसे से काज़ी के सीने पर प्रहार किया। एक साथ दो चीखें हवा में गूँजी। एक काज़ी की, दूसरी मुबारक की, भय और विस्मय से भरी हुई।

फिर जिस तरह कुल्हाड़े लेकर लकड़हारे सूखे जंगल पर टूट पड़ते हैं, उस तरह मावलों के कुल्हाड़े काज़ी के बदन पर धड़ाधड़ गिरने लगे !

उसके खून के फौव्वारे उड़ने लगे !

मुबारक के कपड़े खून से सन गए !

इकबाल ने काज़ी के लहू में अपना हाथ डुबोया और अपने कपाल पर एक बूंद लगाया।

"आज मैं इस नापाक काज़ी के खून में अपने हाथ धोता हूँ !"

फिर उसने उच्च स्वर में पुकारा—

"आज आखिर, सुलतान गयासुद्दीन की मदुराई सल्तनत को मैं रोशन करता हूँ !"

चारों तरफ से खुशी का कोलाहल छा गया और शोर उठा—"मदुरा की सल्तनत का सातवाँ सुलतान ज़िंदाबाद ! सुलतान इकबाल ज़िंदाबाद !"

११ ★ इकबालशाह

भयपूर्ण उलझन ने मानो मानव देह ग्रहण किया हो, वैसे मलिक फ़िरोज़ जल्दी-जल्दी हसन सौदागर की हवेली में आया।

"सैयद, ओ सैयद, तुम कहाँ हो ?"

सैयद मंज़ूरशाह बाहर आया। फ़िरोज़ को देखकर उसे आश्चर्य हुआ—"अरे, आप यहाँ ? इस लूट के तूफ़ान में मेरी आँखें, मेरे कान तुम्हें ढूंढ रहे थे, लेकिन तुम कहाँ थे ?"

"क्या बताऊँ सैयद साहब, अनवरी बेगम ने ख्वाज़ापीर की मनौती ली थी, उसे पूरा करने के लिये मैं अपने जागीर के गाँव आबिदगोण्डा गया था।"

सैयद कटुता और मधुर स्वर में बोला—"मनौती वनौती तो खैर ठीक है, यह तरीका अच्छा ही है। अगर अपने आदमी ज़ोर में हों तो मालिक बनने के लिये पहुँच जाना और अगर वे जोर में न हों तो कान पर हाथ रखा जा सकता है कि मसजिद में गया ही कौन था, ऐसी ही थी आपकी चालाकी ! मलिक फ़िरोज़, यों कायरता का बाना पहन लेने पर सल्तनत के तख्त पर नहीं बैठा जा सकता। यह तो सिर का सौदा है, समझे मियाँ साहब, बेगम की मनौतियों के पर्दे में छिपे रहनेवालों का काम नहीं !"

मलिक फ़िरोज़ के कलेजे को गरम लोहे-सी इस बात ने दाग दिया। ऐसी साफ़-सीधी बात मुँह पर लाकर फ़िरोज़ के मुँह पर उसे सुना देने के लिये सैयद की बदतमीज़ी उसकी परेशानी का कारण बन गई, क्योंकि मूल में बात सारी

स्वच्छ थी। जिस समय उमर नायक ने पिण्डारियों की खबर दी थी, उसी समय वह अपनी बेगम और कोतवाल के साथ मदुरा छोड़कर आबिदगोण्डा की राह पर भाग खड़ा हुआ था।

सैयद की दाढ़ी बढ़ जाने का यह मतलब तो नहीं कि उसकी अक्ल भी बढ़ गई। बात सच होने पर भी, ऐसी कड़वी बात किसी के मुँह पर कह देना बदतमीजी तो है ही, मूर्खता भी है।

अपनी चिढ़ को मन में दबाकर, ऊपर-ऊपर हँसते-मुँह मलिक ने कहा—"सैयद मंजूरशाह, आपको तो हमारी बातें मालूम ही थीं। फिर, मैं गैर-हाज़िर भी रहा, तो क्या हो गया? आप तो वहाँ थे ही! फिर भला आपके रहते यह सब क्योंकर हो गया?"

"यह तो मियाँ साहब," सैयद फिर से मलिक को खरी खरी सुनाने लगा—"हिन्दुओं में जैसे राजकन्याएँ स्वयंवर करती हैं, उस तरह सल्तनत की गद्दी भी स्वयंवर करती है। इसकी वरमाला, उसी के गले में पड़ती है, जो हाज़िर रहता हो। ऐन तूफान के वक्त जो बेगम की मनौती उतारने के लिए दस-बारह गाँव दूर चला जाता है उसे वरमालाएँ नहीं मिलतीं समझे?"

"मेरी बात जाने दीजिए!" मलिक फिरोज़ ने तीव्र स्वर में कहा—"क्या तुमने मुझे पहले से ही खबर दी थी कि लुटेरे आज आएंगे? तुम और मुबारक पिण्डारियों के साथ आये। सुना है कि सुलतान का कत्ल हुआ। सुलतान के काज़ी भी मारे गये, तब उनके सिर भाले पर चढ़ाने में भी तुम हाज़िर थे। क्या तुमने मुझे इन बातों की खबरें दी थीं? फिर नाहक मेरे गले क्यों पड़ रहे हैं? ऊँट किस करवट बैठता है—यह दूर से देखने के लिए और उसके अनुसार अपना रास्ता तै करने के लिये मैं अपने गाँव चला गया था। आप सैयद हैं और पीर की मनौती का इन्तजाम करते हैं, फिर क्यों आपको मनौती की कद्र नहीं?"

हसन सौदागर बीच में पड़ा—"अब भाई, मियाँ मनौती की बातें छोड़िए। अब सोचिए ज़रा कि किया क्या जाय? हमने क्या सोचा था, और हो क्या गया? अब क्या उपाय है?"

मलिक फिरोज़ ने देखा कि बचाव करने से बेहतर है सीधा हमला

करना—"यही पूछने के लिए तो मैं सैयद के पास आया हूँ। मैं यह जानना चाहता हूँ कि सैयद ने हमें पीठ-पीछे बेच तो नहीं दिया ?"

"यानी ?"

"मियाँ, सीधी बात है। मावले और मोपले तुम्हारे मुरीद हैं और इकबाल तुम्हारा उठाया हुआ पिण्डारी है। तुमने ही उसे पिण्डारियों का आज़म बनाया। हमें एक ओर ढकेल कर इकबाल से कोई सौदा तो नहीं कर लिया ?"

"मैं सैयद मंजूरशाह, पाक आमिल हमदीनों को छोड़कर, अहलसुन्नती से सौदा कैसे कर सकता हूँ ?"

"मैं यह कैसे जान सकता हूँ ? यही जानने के लिए मैं यहाँ आया हूँ।" मलिक ने कहा।

मलिक के विरुद्ध सैयद का आक्षेप गलत न था—यह माननेवाले हसन सौदागर ने जब मलिक की बात सुनी तो सोचा कि मलिक की बात भी सच है।

तभी हवेली के बड़े दरवाजे को किसी ने खटखटाया। नागर नायक दौड़ता हुआ आया—"बाहर नया सुलतान खुद खड़ा है !"

"इकबाल !"

"हाँ, वह कहता है कि दरवाजा खोल दो !" नागर ने कहा—"उसके साथ में करीब एक सौ मावले हैं।"

"खोल दो।" हसन सौदागर ने कहा, उसकी आवाज़ में तनिक कम्पन था।

सुलतान इकबाल अन्दर आया। कुछ ही देर में पिण्डारी इकबाल ने सुलतान का परिवेश भली भाँति पहन लिया था—

सिर पर ताज था, ताज पर मुद्रा थी। बादली रंग के रेशम का अँगरखा और मखमली कमरबंद था। तलवार की मूंठ सोने की और वैसी ही कटार थी। गले में कण्ठा और हीरे का हार था। अँगुलियों में हीरे की अँगूठियाँ, कान में हीरे के कुण्डल थे—सुलतान गयासुद्दीन दमग़ानी की पोशाक इकबाल को खूब फबती थी। उसे देखकर मलिक फिरोज के कलेजे

में दरार पड़ गई लेकिन बेचारे क्या करते ? खेत पर जानेवाले कुरबा का बैल अगर अचानक चीता बन जाय तो वह कुरबा क्या कर सकता है ? यही दशा फिरोज़ की थी !

सभी बैठे थे ! सुलतान उन्हें देखकर खड़ा रह गया। वह कुछ न बोला, सिर्फ बैठे हुए लोगों को एकटक देखता रहा, देखता रहा। उसकी आँखें मेंढक को ताकनेवाले साँप-जैसी हरी, गोल और स्थिर बन गई थीं।

हसन सौदागर, सैयद मंजूरशाह, मलिक फिरोज़ जहाँ बैठे थे वहीं, जैसे ज़मीन से चिपके, बैठे रह गये। कुछ उनकी समझ में न आया। क्या किया जाय, यह न सूझा। सारी अक्लमंदी इस प्रकार उड़ गई जिस प्रकार सूरज की रोशनी पड़ने पर शबनम उड़ जाती है। बैठे हुए व्यक्ति मानो हिलने-डुलनेवाले आदमी नहीं, माटी के पुतले थे।

"उठो !" मानो उनके बीच में सहसा कोई बिरंगी फट चली हो, ऐसी आवाज़ में इकबाल ने ललकारा। उसके अचानक आघात से बैठे हुए लोग चौंक उठे।

"उठो !" इकबाल ने फिर से कहा। उसने धीरे से फिरोजखान की बगल में अपने पैर से ठोकर दी—"उठो, तुम में से किसी को शरम नहीं आती ? तुम्हारा सुलतान तुम्हारे सामने खड़ा है और तुम बैठे हुए हो ? उठते हो या मुझ-जैसे लुटेरे को तुम-जैसे अमीरों को शाही तमीज़ सिखानी पड़ेगी ? खड़े हो जाओ ! ताज़िम दो।"

कुछ मावले बाहर खड़े थे। पच्चीस के करीब मावले इकबाल के पीछे, भीतर खड़े थे। उनके पास शाही हथियार न थे मगर फरसे और कुल्हाड़े ज़रूर थे और वे लोग इन शस्त्रों के उपयोग में निष्णात थे। सैयद और हसन से वह बात छिपी न थी। वे दोनों एकदम खड़े हो गये और तभी मलिक फिरोज़ भी इस तरह खड़ा हुआ जैसे वह ढोंग नहीं कर रहा है वरन् अपनी मर्जी से खड़ा हो रहा है !

सुलतान इकबाल एक गद्दी पर बैठा। सैयद और हसन कोर्निश बजाने लगे। सुलतान इकबाल की आँखें फिरोज़ की ओर लगी थीं। उसने एक भी शब्द न कहा और उसका हाथ उसके फरसे तक गया।

फ़िरोज़ ने मन न रहने पर भी, कड़ुये मन से कोर्निश बजाई।

"अब सुनिए, आप तीन तीन अमीर मेरी सल्तनत की शोभा हैं। मरहूम सुलतान के दरबार की भी शोभा थे। मलिक फ़िरोज़, इधर आइये। मेरे सामने दावात कलम लेकर बैठिये!"

"मैं?"...मैं?...।"

"हाँ, तुम। आज से तुम मेरे नामानिग़ार हो। मैं जो हुक्म दूं, उसे लिखकर तुम मुझे सुनाओगे। तुम्हें अगर मालूम न हो तो एक बात कह दूं, मैं तमिल कन्नड़, मलयालम और फारसी चारों लिपियों का जानकार हूँ और चारों भाषाएँ भी जानता हूँ। इसलिये कारकूनी का हिसाब मैं अच्छी तरह निकाल लूंगा। तुम आज से मेरे कारकून हो!"

हसन सौदागर की ओर देखकर सुलतान इकबाल ने कहा—"तुम सौदागर हो, तुम्हारी सौदागरी में कोई बाधा नहीं डालेगा। परन्तु आज से तुम पर आयकर लागू होता है और आज से सल्तनत से बाहर की सौदागरी पर सुलतान का मालिकाना हक़ रहेगा। तुम सल्तनत से बाहर का कोई सौदा नहीं करोगे, बाहरी सौदे की सारी आय सुलतान की रहेगी। और कारकून लिखो—सुलतान इकबालशाह का शम्बूरराय के लिये टोंडाईगढ़ में पेश करने के लिये तीसरा फरमान। शम्बूरराय से पूछो कि पहले की तरह मदुराई सल्तनत का मित्र बना रहना चाहता है या दुश्मनी करना चाहता है? मदुरा का सुलतान बेलगोला पर हमला करने जा रहा है, क्योंकि वहाँ की दौलत विजयनगर का आधार है। इसलिए बेलगोला का नाश करने के लिए सुलतानी फौज चढ़ाई करना चाहती है। जवाब जल्दी दो कि मदुरा की सल्तनत की तरफ तुम्हारा क्या इरादा है? हसन सौदागर, तुम्हारा बेटा मुबारकखान सन्देश ले जाने के काम में होशियार है, वही इस पैगाम को लेकर शम्बूरराय के पास जाएगा।

"और कारकून, लिखो एक और फरमान—सैयद मंजूरशाह, हमारे बुजुर्ग और पूज्य हैं। इन्हें फरमान मिले कि मगरूर जाएँ, वहाँ की मशरकी मसजिद में मावला और मोपला-बच्चों को ये तालीम दें। ये बच्चे तालीम के बिना, तरस रहे हैं। मंजूरशाह का काम होगा, इन्हें तालीम देना।

बदले में शाही खजाने से मंजूरशाह को रोजाना बीस जीतल दिये जाएंगे।"

सुलतान इकबाल खड़ा हुआ। फिर बोला—"तुम में से किसी के पास मरहूम सुलतान गयासुद्दीन की अगर कोई चीज़ या मिल्कियत हो तो, हमारे हवाले कर दो।"

किसी ने कुछ न कहा।

"मैंने कहा सो सुना या नहीं ?" इकबाल ने ललकार कर कहा।

उस भयंकर ललकार को सुनकर मावलों ने अपने फरसे और कुल्हाड़ों पर अपनी पकड़ मजबूत की। इकबाल की भयंकर आवाज़ को सुनकर, तीनों अमीर भड़के हुए हिरन की तरह चौंक कर उछल पड़े।

"सैयद मंजूरशाह, तुमने मेरा हुक्म सुना या नहीं ?"

"जी...जी...मेरे पास तो ऐसी कोई चीज़ नहीं है।"

"नहीं ?" इकबाल ने दाँत पीसकर कहा, कहकर अपने एक मावले की तरफ़ देखा—"क्या कहता है यह सैयद ?"

"जी सरकार !" मावला ने कहा —"यह एकदम झूठ बोल रहा है। कर्नाटक की आनन्दी को सुलतान के शाही महल से ले जाते और इस मंजिल में दाखिल होते मैंने खुद अपनी आँखों से देखा है। आपके हुक्म के मुताबिक मैं शुरू से आखिर तक उसके पीछे था। वह इस वक्त भी इसी मंजिल में है।"

"क्यों सैयद मंजूरशाह !" इक़बाल ने सैयद को भारी और तीव्र स्वर में कहा फिर अपने मावलों की ओर देखा—

"अगर हसन सौदागर उस मुसम्मात को हमारे हवाले नहीं करता, तो चाहे जैसे उसका पता लगाओ, चाहे इसके लिए इस हवेली को नेस्त-नाबूद ही क्यों न करना पड़े। कर्नाटक की आनंदी जहाँ कहीं हो, उसे पकड़ कर हमारे दरबार में हाज़िर करो !"

१२ ★ वह आधी रात

शम्बूरराय की राजधानी टोंडाईगढ़ के मार्ग में, खुलती साँझ की वेला, कावेरी के किनारे, एक विशाल वृक्ष की छाया में मुबारक खान और नागर नायक ने अपने घोड़े बाँध दिए।

ज़मीन पर कपड़ा बिछाकर दोनों ने चुपचाप नाश्ता किया।

कुछ देर विश्राम किया।

फिर नागर नायक ने कहा—

"क्या मियाँ साहब, ऐन शाम के वक्त हम रवाना हुए थे, शाम गुज़र गई, फिर भी आपने एक शब्द भी नहीं कहा?"

"क्या कहूँ नागर, तुम मेरे नायक, मेरे खास आदमी और वैसे मेरे गुरु भी हो लेकिन तुम्हारे सामने भी कुछ कहा जाय, ऐसी बात भी तो हो?"

"क्यों?" इतनी-इतनी घटनाएं हो गईं, फिर भी कहने सुनने जैसा नहीं? अरे, मुझे तो डर था कि मियाँ पूरे रास्ते चुप न रहेंगे! लेकिन आपने तो एक भी शब्द का उच्चारण नहीं किया खान साहब?"

"नागर नायक, मेरे बुजुर्ग बाप को आज एक पिण्डारी को ताज़िम देनी पड़ी। क्या इसीलिए सुल्तान गयासुद्दीन दमगनी के खिलाफ इकबाल और फिरोज़ को इतना रूपया दिया था? सैयद का पालन किया था? सारी सौदागरी बन्द हो जाए और उसका सारा लाभ एक पिण्डारी ले जाए....

और इतना धन बरबाद होने पर भी मेरे वालिद का सारा कारोबार नष्ट हो जाए ! और बुढ़ापे में पनाह माँगनेवाली कर्नाटकी को पनाह देने पर भी वापस सौंप देनी पड़े, इस तरह उनका बुढ़ापा बिगड़ जाए और मैं जवान बेटा देखता रह जाऊँ ! और अपनी ही सौदागरी का खात्मा करने के लिए मुझे पैगाम लेकर जाने पर मजबूर होना पड़े !"

"यह तो सच है, कि क्या सोचा था और क्या हो गया। थैले में से बिल्ली तो नहीं निकली, बाघ निकल आया !"

"इकबाल इतना बेईमान और लालची होगा, इसकी मुझे ज़रा भी कल्पना न थी !"

"मियाँ साहब, आपकी यह बात ठीक नहीं। सारी टोली ही लालची लोगों की थी। कहिए, इन में से कौन लालची न था ? हाँ, इस टोली का एक आदमी सब से ज्यादा होशियार निकला। तुरन्त दान और महापुण्य का माननेवाला निकला, किन्तु आपको ऐसी उम्मीद थी ?"

"नहीं, इकबाल ऐसा बेईमान निकलेगा, मेरी गिनती के बाहर की बात है।"

"मैंने आपके वालिद से पहले ही कह दिया था।"

"तुम....तुम...तुम्हें क्या किसी पंछी ने आकर कान में कह दिया था ? अगर ऐसी बात थी तो, तुमने मुझे क्यों नहीं कहा ?"

ऐसी अग्रिम चेतावनी के विषय में, आप अभी छोटे बालक हैं, खान साहब, बाकी, मेरी बात का यकीन न हो तो, अपने वालिद से पूछना।"

"तो क्या, तुमने वालिद को यह सब बता दिया था ?"

"हाँ, भरोसा न हो, तो उन्हीं से पूछ लेना।"

"मुझे बताया होता, तो इतनी दुर्घटनाएं न होतीं।"

"आप क्या करते ?"

"मैं उसकी जान ले लेता।"

"मियाँ साहब, आप अभी इकबाल को नहीं पहचानते। मुझे तो भय था कि वह ऐसा ही कुछ करेगा। अगर उसकी जान लेना, आसान काम होता तो, मैं आपकी राह न देखता। लेकिन इकबाल उतना मूर्ख पिण्डारी

नहीं है जितना आप उसे मानते हैं। मूलतया वह वीर वणिक है। अपने आसपास की हालत को समझकर आगे बढ़ना, उसका तरीका है। और कभी वह अकेला नहीं रहता, आठ पहर और साठ घड़ी वह अपने मावलों से घिरा रहता है। आपने क्या नहीं देखा? अगर आप उसकी जान लेने के लिए गए होते तो, उसका तो कुछ न बिगड़ता, आप के ही राई-राई भर टुकड़े हो जाते!"

"दूसरा कुछ नहीं, फिर भी अपने वालिद के अपमान को तो टाल सकता था!"

"कौन-सा अपमान?"

"वाह! तुम क्या कमअक्ल बनिए हो? मुझे पूछते हो, कौन-सा अपमान? अरे, शरीफ़ सौदागर से अगर उसका जानी दुश्मन भी पनाह माँगे और अगर उसे सौदागर पनाह दे दे, तो फिर वह अपनी जान देकर भी पनाहगीर को वापस नहीं देगा। अरे, मावलों के फरसों की धमकी की वजह मेरे वालिद ने एक पनाहगीर अबला को एक पिण्डारी सुल्तान के हवाले कर दिया? इस कलंक को बहत्तर पीढ़ियों तक नहीं धोया जा सकता!"

नागर नायक हँस दिया—

"आपने भी मियाँ साहब, खूब किया। आपके वालिद ने कर्नाटकी को फरसों की डर से सुल्तान के हवाले नहीं किया मगर मेरी प्रार्थना के कारण।"

"तेरी...ते...तेरी प्रार्थना के कारण? तूने मेरे वालिद को उस औरत को सौंप देने के लिए समझाया? एक ईमानदार नौकर होकर तूने मेरे वालिद के ईमान को नष्ट किया? हमारे खानदान पर कलंक लगाये! फिर भी आखिर क्या होता?...हम बाप-बेटों के टुकड़े हो जाते, यही न?"

"तुम दोनों का जीवन मूल्यवान है। उसे इस तरह सस्ते में नहीं लुटाया जा सकता!"

"लेकिन हम बाप-बेटों के जीवित रहते, हमारी एक पनाहगीर अबला एक दैत्य के पंजे में पड़ जाए, इसे क्या कहा जाए? उस अबला बेचारी पर न जाने क्या बीतती होगी?"

"मियाँ, कर्नाटकी की फ़िक्र न कीजिए। वह अपनी फ़िक्र रखना, अपनी रक्षा करना, बरसों से जानती है। आज भी वह अपना बचाव कर लेगी।"

"तू मुझ से बात भी मत कर, नागर नायक!" मुबारक ने गरम हो कर कहा।

"तो मुबारक खान, कर्नाटकी के क़दमों में टुकड़े-टुकड़े क्यों न हो गए?"

"तब तो उस वर्णसंकर पिण्डारी को भी मालूम हो जाता कि शरीफ़ खानदान के आदमी किस तरह मर सकते हैं?"

"वैसी सूरत में, शम्बूरगढ़ में आपकी राह देखनेवाली, उन काज़ी साहब उमरावखान, खुदा उनकी रूह को आराम बख्शे, उनकी दुख्तर रोशन का क्या होता?"

मुबारक खान जड़वत् रह गया! कुछ देर बाद वह निपट अचरज में बोला—

"या खुदा, रोशन वहाँ हैं, इस बात को तो मैं एकदम भूल गया था!"

"आप भूल जाएं मियाँ साहब, किन्तु मैं कैसे भूल सकता हूँ? अच्छा, अब राम राम!"

"क्यों?"

"यहाँ से अब हमारे रास्ते अलग-अलग हो जाते हैं।"

"अलग? तू मुझे छोड़कर कहाँ जा रहा है?"

"मदुरा।"

"मदुरा? चल, मैं भी तेरे साथ आऊँगा?"

"और सुलतान इकबाल के हुक्म का क्या होगा?"

"अरे, ऐसे सुलतान की......"

"ज़रा शांत रहो मेरे बाप! ये सिर अब भी कीमती हैं, मेरे और आपके सिर। ये किसी पिण्डारी के भाले की शोभा के लिए नहीं हैं। और आपको क्या फिर से याद दिलानी होगी...रोशन! उसका वालिद मारा गया है। अब वह अकेली है। वह अकेली न रहे, यह देखना आपका काम है। आपका काम आप कीजिए, मेरे काम मुझे करने दीजिए!"

"तुझे मदुरा में क्या काम है ?"

"मुबारक खान, मदुरा लुट रहा है, आग में खाक हो रहा है।"

"तू क्या करेगा ?"

"पहले वहाँ पहुँच जाऊँ, बाद की देखी जाएगी।"

मुबारक खान की दातों और दलीलों पर नागर नायक ने ध्यान न दिया। उसने मुबारक से इतना ही कहा—

"समय संकटमय है। सावधानी से रहिएगा। अगर पूत लेने गई और खसम खोकर आई, जैसा आपने कुछ किया तो, हसन चाचा को अपना मुंह बताना मेरे लिए मुश्किल हो जाएगा।"

नागर नायक लौट आया। दूर से मदुरा शहर की लाल और काली ज्वालाएं इस प्रकार दृष्टिगोचर हो रही थीं, जिस प्रकार सघन मेघमय गगन में संध्या अस्त होती है ! ज्यों-ज्यों वह निकट पहुँचता गया त्यों-त्यों नगर में उठता हुआ कोलाहल उसके कान तक आने लगा। जैसे किसी भीलनी ने शहद की मक्खियों के छत्ते को छेड़ दिया है और लाखों मक्खियाँ निकलकर भिनभिना रही हैं, इस तरह की एक-स्वरवाली तीव्र आवाज़ आ रही थी !

नायक ने देखा कि लोग भेड़ों की तरह शहर से बाहर भाग रहे हैं। रास्ते में उसने बिखरा हुआ सामान देखा ! हथियार छोड़कर भागते हुए दोरंगी देखे ! उसने दो-चार दोरंगियों को रोककर पूछा। मगर वे बात करने के लिए भी रुकना नहीं चाहते थे ! नायक ने उन्हें बलात् रोक लिया—

"शर्म नहीं आती ? सिपाही के बच्चे होकर पिण्डारी के सामने पीठ दिखा रहे हो ?"

"तुम अपनी पीठ न दिखाना ! मगर हमें क्यों रोकते हो ?" एक सिपाही ने अपना कंधा छुड़ाने की कोशिश करते हुए कहा।

दूसरे ने कहा—"अगर तू बहादुर का बेटा है तो जा शहर में, लेकिन हमें जाने दे !"

नागर नायक ने तिरस्कार से हँसकर कहा—

"तो, जाओ भाइयो ! रास्ता खुला है। जो नाम नहीं चाहता उसे विजय दिलाने की फुर्सत मुझे नहीं।"

"विजय ? कैसी विजय ?"

"सिपाही की विजय। लेकिन तुम जाओ, भाग जाओ। वरना कोई पिण्डारी आ जाएगा, और सुलतान का हथियारबन्द सिपाही पिण्डारी के कुल्हाड़े से डर जाएगा। जाओ, जल्दी करो।"

एक सिपाही को यह बुरा लगा। उसने दुखी मन से कहा—"भाई, अगर भाग न जाएं तो कुल्हाड़ा खाने के लिए रह जाएँ ? आखिर सिपाही को हुक्म देनेवाला भी तो चाहिए ? सुलतान मारा गया। और उसका सिर भाले पर टाँग दिया गया और हममें से भी कई खड़े-खड़े कट गए। अब क्या किया जाए ?"

"अरे पागल, सिपाही को हुक्म की क्या ज़रूरत ? मदुरा में तुम इतने सिपाही थे और मदुरा खाक हुआ इसके लिए, इतिहास में तुम्हारे नाम अमर रहेंगे। और इतने सिपाही बाकी रहने पर भी पिण्डारियों ने मदुरा को लूटा ! जहाँ कहीं जाओगे, तुम्हें चाकरी ही करनी पड़ेगी। और यहाँ की तुम्हारी तारीफ, कारगुजारी तुम्हें नौकर रखनेवाले को ज़रूर ललचाएगी ! और तुम्हारा नया मालिक तुम्हें देखकर कहेगा, वाह ! ये तो बड़े बहादुर सिपाही हैं !"

"अरे बातूनी, बड़ा मुंहफट है ! ज्यादा बकबक की तो, तेरा सिर काट लूंगा।" एक सिपाही ने गुस्से में आकर कहा। नागर के बोल उसे बिच्छू की तरह डंक मार गए थे।

"मेरा सिर काट लेने पर, तुम्हारी बहादुरी पर कँलगी लग जाएगी ! सामने जो लाल-लाल आसमान नज़र आ रहा है वह सारे मुल्क को तुम्हारी वीरता का सबूत दे रहा है ! जहाँ तुम पहुँचोगे, उससे पहले तुम्हारी तारीफ पहुँच जाएगी !"

"तो क्या मस्कट जाने के लिए हम यहाँ रहें ?"

"अरे उल्लुओ, तुम अपना सिर भाड़े पर देते रहते हो, ज़रा विचार

तो करो– सल्तनत के प्रति ईमानदारी तो गई जहन्नुम में। पेट की चाकरी करते हो तो उसकी तरफ तो ईमानदार रहो!"

"मगर रहें किस तरह? न तो कोई एकत्र करनेवाला, न कोई पुकारनेवाला और न कोई देनेवाला! जो कोई यों ही मुकाबिला करने गया, वह वहीं मारा गया। हम फिजूल नहीं भाग रहे हैं, भागते हुए हमें खुशी नहीं है, क्या करें, हमारे अनगिनत आदमी कट गए! मावला और मोपला ऐसे जालिम हैं कि सिपाही हथियार उठाएँ न उठाएँ, इसके पहले ही फरसा मार देते हैं! भला, उनका सामना कैसे किया जाए?"

"पिण्डारी लोग लड़ाई के कानून नहीं जानते, उन्हें जंग की तालीम भी नहीं मिली है। भेड़-बकरों के झुण्ड पर जिस तरह कसाई टूट पड़ते हैं, उस तरह पिण्डारी सिपाहियों पर टूटते हैं, ऐसे वक्त पर, क्या किया जाए?" दूसरे ने बात की पूर्ति की।

"अगर तुममें पानी हो तो चलो मेरे साथ!"

मदुरा में तुर्क सुलतान के रोबदाब, धमकी और उसके अत्याचार अनेक थे। फिर भी श्रीरंग मंदिर के दीन पुजारी श्री चन्द्रशेखर महाराज का एक अटल नियम था—मंदिर में मूर्ति न थी और आवास भी सुलतान के नापाक रहन-सहन से अपवित्र हो गया था। फिर भी महाराज चन्द्रशेखर नियम-पूर्वक, साँझ-सबेरे, मंदिर में दीपक संजो देते!

महाराज की दशा विचित्र थी! कर्नाटकी आनंदी के संगीत और सौन्दर्य के प्रभाव से प्रभावित सुलतान गैयासुद्दीन दमग़ानी मंदिर खाली करके शाही महल में चला गया। लेकिन, यह शर्त थी कि मंदिर में मूर्ति की स्थापना कदापि न हो। इस शर्त को मानकर, कर्नाटकी ने इतनी इजाजत ले ली थी कि खाली मंदिर में चंद्रशेखर को साँझ-सुबह दीप जला देने की सुविधा रहे। फिर भी मंदिर के रंग-मंडप में शाही महफिलें तो लगती ही थीं। शराब भी बहती, मांसाहार भी चलता और यवन रंडियाँ भी नाचतीं!

पिण्डारियों के अनाचार से संत्रस्त कई लोगों ने आज इस मन्दिर में शरण ली थी। मंदिर का द्वार बन्द कर दिया गया था। ये लोग लुटने से अधिक डरते थे अत्याचारों से। अतः देवहीन सूने मन्दिर में घुस आये थे।

मंदिर के बाहर आग की ज्वालाएँ उठ रही थीं। तेज कोलाहल और विकल पुकारें उठ रही थीं। जब जब बाहर से समधार कोलाहल और सुई की नोक की तरह तीखी चीखें, मंदिर के शरणागत नरनारी, बाल-वृद्धों को सुनाई देतीं, तो वे काँप-काँप उठते।

इन सब में प्रस्तर प्रतिमा के समान निर्जीव और जड़वत् महाराज चन्द्रशेखर गर्भद्वार के चबूतरे पर अकेला बैठा था। उसने किसी को आश्रय देने के लिए न स्वीकृति दी थी और न अस्वीकृति! फिर भी अब, जब अनाथ आ ही गये तो, आश्रम और रक्षा का उत्तरदायित्व उसी का था। इस समय वह निस्सहाय था, और यही एक चिन्ता उसे सता रही थी।

इस धर्मधाम का विनाश मुसलिम सुलतान के निवास पर भी जैसे अधूरा रह गया हो, वैसे पिण्डारियों का तराप सिर पर मंड़रा रहा था। ये सब भक्त और भावुक भगवान के भरोसे आश्रय के लिये मन्दिर में आए थे और यह भरोसा निरर्थक और निष्फल साबित होनेवाला था! चन्द्रशेखर के हृदय में एक कचोट थी परन्तु वह कुछ कर सकने से लाचार था।

जब कि सैकड़ों-हजारों पिण्डारी सब प्रकार की मनुष्यता से च्युत होकर केवल एक असीम आसुरिक भूख लेकर, मसान के भूतों की भाँति जहाँ निकल आये हों, वहाँ बेचारा एक आदमी क्या कर सकता है? जहाँ गयासुद्दीन दमग़नी जैसे क्रूर सुलतान का सिर भाले पर चढ़ा दिया गया हो और मरहूम से भी मरहूम सुलतान का भाई मामूली कारकून का काम करने के लिये मजबूर हो गया हो, वहाँ अछूतों में भी अछूत के समान—यह अकिंचन अर्चक महाराज चन्द्रशेखर क्या कर सकता है?

अचानक उसके कन्धे पर किसी का हाथ पड़ा। वह चौंका। उसने देखा कि एक पिण्डारी उसके सामने खड़ा है!

ओह! आ पहुँची वह विकट घड़ी, जिसका मात्र विचार ही अर्द्ध अभान और विमूढ़ बनाता है। मन्दिर का विराट द्वार बन्द पड़ा था, अब भी बन्द था, किन्तु पैशाचिक माया के लिये कोई द्वार, द्वार नहीं है!

"सामी।" उस प्रेत छाया ने पूछा—"महाराज, सो रहे हो या जाग रहे हो?"

यह आवाज ! यह आवाज !!

चन्द्रशेखर खड़ा हो गया।

फटी हुई आँखों से वह पिण्डारी को देखता रहा—"आप...आप... आ... ।" अपने अनन्त अचरज को शान्त करता हुआ, वह कठिनाई से कह सका।

"चुप, मेरा नाम नागर नायक है।"

"जी....आप इस समय ? यहाँ ? यहाँ का हाल तो आप से छिपा नहीं।"

"हाँ, उठो, मेरे साथ चलो !"

"जी।" कहकर चन्द्रशेखर खड़ा हो गया। ना कहने का खयाल ही न आया। और उसकी निर्बलता, निस्सहायता सारी ओझल हो गई !

कुछ देर वह गुप-चुप बातें करता रहा। फिर नागर नायक वहाँ से चला। जाते-जाते पूछा—"कर्नाटकी कहाँ है ?"

"जी, सुना है—उसे शाही महल में नये सुलतान ने रख लिया है !"

"ठीक है। तुम समझ गये न ?"

"जी।"

"चलता हूँ। जयहरि !"

"जयहरि।"

दोनों वहाँ से खिसक गये—मन्दिर के पिछले दरवाजे की खिड़की में से बाहर निकल गये।

"आप...।"

"आप नहीं, तुम।"

"तुम मंदिर में कैसे आये ?"

"पिछली दीवार कुछ छोटी है, और उसके पास बड़ा-सा एक पेड़ है, फिर क्या कष्ट हो सकता था ?"

"जी।" क्षणभर चन्द्रशेखर अवाक् रह गया। धन्य भाग्य कि पिछला यह मार्ग पिण्डारियों से अछूता रहा, उन्हें इस समय बड़े मीर मारने का जनून है, छोटे मार्गों का पता लगाने की धुन नहीं !

बाहर आकर नागर नायक एक ओर चला गया। पुजारी चन्द्रशेखर ने दूसरा रास्ता पकड़ा। मन्दिर के बड़े दरवाजे और ऊँची दीवारों की छाया में भी उसे जो भय थरथरा रहा था, अब वह लोप हो गया था। ऊँचा सिर उठाये वह चलने लगा।

शाही महल में सुलतान इकबालशाह अपने पिण्डारियों से घिरा बैठा था। उसके चेहरे पर विजय की तृप्ति थी। वह अपने आप को सुलतान के रूप में ज़ाहिर कर रहा था और उसका शहर यों लुट रहा था, इसमें उसे कुछ विचित्र प्रतीत न हो रहा था। पिण्डारियों की भीड़ में चन्द्रशेखर भी घुस गया।

लूट की बातें चल रही थीं। और दुर्भाग्य कि लूट के माल का हिसाब रखने के लिए मलिक फिरोज़ को बैठाया गया था। हाँलाकि नागर नायक की आँखें नीची थीं, परन्तु वह कनखियों से फिरोज को देख रहा था।

"हाँ, कारकून अब जोड़ निकालो, फिर उसके चौथाई भाग का अंक निकालो।" सुलतान इकबाल ने हुक्म दिया।

"जी।" नीचे जमीन की ओर नज़रें छिपाये मलिक फिरोज़ ने जवाब दिया।

इकबाल बोला—"सुलतान का खजाना जो खाली था, अब भर जाएगा। लोग अगर सुलतान को दौलत न दें तो आखिर सुलतान भी क्या करें? सुलतान लूट के लिये बाध्य हो, मजबूर हो, यह कसूर लोगों का है। महाजन, पंच और मणिग्राम के सेट्ठियों को चाहिये कि सुलतान को अपना हिस्सा दें। न दें तो, सुलतान खुद ले ले, यह तो सुलतान का हक है।"

"जी।"

"यों जी नहीं, लिखो..., लिख कर मुझे दो।"

"जी।"

मलिक फिरोज लिखने बैठा।

इकबाल बोला—"मदुरा में सुलतान को काफी हिस्सा मिला है। अभी

तो काम चल जायेगा। और ज़रूरत पड़ने पर बेलगोला से आ जायेगा। इस सल्तनत के तख्त पर वह मेरे पास बैठ सकती थी, लेकिन वह गोमती अब मुझे दाद देगी ?"

"जी, लिखूँ यह ?"

"बेवकूफ हो ! यह क्या लिखने की बात है ? यह तो सुलतान के जिग़र के घाव की कैफियत है। अब इस घाव को कर्नाटकी राहत देगी, करार देगी। कारकून, तुमने कर्नाटकी के लिए फरमान लिखा ?"

"जी।"

सुलतान इकबालशाह ने उस फरमान को पिण्डारियों की भीड़ पर फेंका—"कोई मालवा जाकर शाही महल के हरम में कर्नाटकी को यह फरमान पहुँचा दे। सुलतान जब आराम के लिए जायें, तब आरामगाह में शाही बेगम उनके स्वागत के लिए तैयार रहे !"

फेंका गया फरमान नीचे गिरे, उसके पूर्व ही अपना हाथ बढ़ाकर, नागर ने उसे झेल लिया। लूट की जब बात चल रही हो, पिण्डारी कोई ऐसे बेकार काम के लिये, तैयार क्यों होने लगा ?

नागर नायक खड़ा हो गया।

भयत्रस्त दो-तीन गुलामों से पूछने पर, वह शाही बेगम के आरामगाह का पता पा गया।

झूले पर कर्नाटकी बैठी थी। वह इस प्रकार स्वस्थ थी, मानो उसके आसपास कोई दुर्घटना न घटी हो।

गुलाब के फूल-जैसी उसकी काया झूले में शोभायमान थी। उसका एक पैर झूले को हलका धक्का दे रहा था। सदन्तर स्वस्थ चित्त से प्रकटमान सुरीला गीत वह बहुत धीमे-धीमे गुनगुना रही थी !

"शाही बेग़म !" नागर नायक ने फरमान सामने रख दिया—"शाही बेग़म, यह फरमान सुलतान इकबाल शाह की तरफ से आप के लिये है और हाथोंहाथ आप तक पहुँचाने का हुक्म है।"

अपने आसन से कुछ उछलकर कर्नाटकी झूले के सामने खड़ी हो गई—

"आप...?" उसके चेहरे पर पूर्ण विस्मय की छाप थी।

"नागर नायक!"

"जी...जी।"

"शाही बेग़म, इस फरमान को ध्यान से पढ़ लें।" नागर नायक ने आग्रहपूर्वक कहा।

आश्चर्य-स्तब्ध वदन और विस्मयान्वित लोचनों से कर्नाटकी ने फरमान को देखा और पढ़ा। उसके चेहरे पर अप्रयासित स्मित आकर चला गया। पल मात्र के उस स्मित को नागर नायक ने देख ही लिया।

"सुलतान की ताजपोशी कब होगी?" नागर ने पूछा।

"सुलतान अभी तक मुझे नहीं मिले।"

"समझा। सरिश्ते की बात यह है कि मरहूम सुलतान चाहे जैसा हो, चाहे जैसे मारा गया हो, फिर भी उसकी आखिरी मंज़िल में, नये सुलतान इक़बालशाह को हाज़िर रहना चाहिये!"

"ऐसी परम्परा है?" कर्नाटकी पूछती है।

"जी। अगर एक सुलतान के जनाज़े में दूसरा सुलतान हाज़िर न रहेगा तो लोगों को क्योंकर मालूम होगा कि एक सुलतान की हुकूमत खत्म हो गई है और दूसरे नये सुलतान की हुकूमत शुरू हो गई है? कई लोग इसी की राह देख रहे हैं। अगर ऐसा सरिश्ता और तरीका न भी हो, तो भी आपको करार आना चाहिये।"

"नागर नायक!" कर्नाटकी ने कहा—" अब यह चिन्ता आप की नहीं, मेरी है। अब आप न मेरी और न रिश्ते की ही फिक्र करें।

नागर नायक गया।

१२ ★ मँझरात के बाद

थका हुआ, परेशान और त्रस्त मलिक फिरोज़ चार पिण्डारियों की निगरानी में अपनी हवेली तक लाया गया था। उसके अन्तर में अनेक सन्तापों के प्रतिशोध की भावना भरी थी। सुलतान इकबाल की पोशाक और उसका दमदमा देखकर, उसके कारकून फिरोज का दिल जल न उठे, इसलिये पिण्डारियों का पहरेदार दल साथ में था।

इस दल की चौकी का सच्चा कारण इकबाल और फिरोज़ दोनों जानते थे। दोनों के स्वार्थ आपस में टकराते थे और लोहे से लोहा टकराता था। आरे के दाँतों पर उन्हें तेज करनेवाला औज़ार अपना काम कर रहा हो और आवाज़ जैसी निकल रही हो, वैसी ही मूक चीत्कार फिरोज़ के दिल में उठ रही थी।

इस पहरे–चौकी का सच्चा कारण एक ही था—वह यह कि फिरोज़ सीधा-साधा अपने घर चला जाये। घर पर भी पिण्डारियों का पहरा था ताकि घर में प्रविष्ट होने पर, फिरोज़ से कोई मिल न सके और वह भी किसी से मिलने न जा सके।

रात ज्यादा बीत गई थी, फिर भी उमरनायक मंजिल के दीवान-खाने में बैठा था। वह जाग रहा था और उसके हाथ नंगी तलवार थी।

"क्यों कोतवाल, आप यहाँ ?" फिरोज़ ने कटुतापूर्वक पूछा। मन में वह

जानता था कि किस लिए यह यहाँ बैठा है ? और उसे इसका कोई उज्र भी न था।

उमर नायक भी जानता था कि मलिक फिरोज़ उसकी हाजिरी के कारण से वाकिफ है। फिर भी बाहरी बातों का, शर्म का पर्दा भी कायम था।

"जी।"

उमर ने खड़े होकर कहा—"मैं मंजिल का पहरा दे रहा हूँ।"

"अच्छा है। बेगम साहबा कहाँ हैं ?"

"जी......मुझे क्या मालूम....? बांदी को बुलाता हूँ।"

और जवाब की राह देखे बिना ही उमर नायक ने ताली बजाकर बाँदी को बुलाया। अनवरी बेगम की विशेषता यह थी कि चाहे जैसा समय हो, फिरोज़ की हवेली में वह जवान बाँदी की कमी न रखती थी। अपनी सौदागरी के प्रति वह वफादार थी।

बाँदी ने जिस कक्ष की ओर संकेत किया था, फिरोज़ उधर गया। वहाँ अनवरी बेगम बीच में झूले पर बैठी थी। वह खड़ी हो गई। उसने फिरोज़ को देखते ही पूछा—"इकबाल......" इस एक ही शब्द में अनेक सुर, झनकारें, सूचनाएँ और संतापों का संभार भरा था।

फिरोज़ ने दीर्घ निःश्वासें लिया—

"उसने अपने-आपको मदुरा का सुलतान घोषित किया है।"

"और आप.......आप ?"

"मैं सुलतान का कारकून बनाया गया हूँ। कारकून फिरोज़........बेगम, तुम्हारी सारी खटपटों का यही नतीज़ा ? फिरोज़ अब मलिक फिरोज़ नहीं, कारकून फिरोज कहा जाएगा..."

अनवरी ने क्रोध में कहा—"यह इकबाल कैसा है ? मेरे खाविंद के असल हकूक भी जिसने पैरों तले कुचल डाले हैं।"

"पैरों तले रौंद डालनेवाला ! और बेगम, उससे मिलने की कोशिश भी मत करना। मरहूम सुलतान की बहन का नाम उसके लिए जादू नहीं है। उसने अपनी खास दासी का चुनाव कर लिया है।"

"यह ताना, और वह भी तुम मुझे दे रहे हो? अगर आज का दिन मेरे और तुम्हारे लिए कठिन न होता, तो मैं इस ताने के बदले तुम्हारी जान ले लेती। लेकिन इस वक्त अधिक महत्त्वपूर्ण बातें हमें करनी हैं—यह खास दासी है कौन?"

"वह है मरहूम से भी मरहूम सुलतान की दासी, उसके बाद सैयद मंजूरशाह की दासी, फिर सुलतान गयासुद्दीन की दासी और अब नए सुलतान इकबाल शाह की खास दासी—कर्नाटक की आनंदी!"

"अरे, वह लड़की, जिसके लिए मंजूरशाह हमारे साथ शामिल होने को तैयार हुआ था!"

"हमारे साथ शामिल होने के दो कारणों में से एक कारण तो यह और दूसरा कारण मगरूर की मसनद।"

"उमर कोतवाल ने मुझे कहा है कि इकबाल मंजूरशाह का चेला है। अब यह सबब तो नहीं रहा।"

"इकबाल को मंजूरशाह अपना चेला मानता था लेकिन, वह, न तो किसी का चेला और न ही किसी का हथियार निकला! हम सबका गुरु निकला!"

"अब......अब.......अब क्या करें? सारे दिन इकबाल ने मुझे अपने पास से न खिसकने दिया। इस वक्त भी इस पर पिण्डारियों का पहरा है। ये लोग एक चिड़िया भी अंदर न आने देंगे।"

"और सुबह में?"

"सुबह मुझे सुलतान के दरबार में हाज़िर रहना है, उनके कारकून का काम करूँगा।"

"तब तो ठीक है।"

"ठीक.......क्यों?......ठीक किस तरह?"

"हाँ, तुम इकबाल के पास जाकर पूरी ईमानदारी से नौकरी करना- इससे मेरे हाथ मुक्त रहेंगे।"

"तुम क्या करोगी?"

"ज़रूरत पड़ने पर मैं शम्बूरराय के पास जाऊँगी। उससे काम न बना तो विजय नगर के सेनापति सायण के पास जाऊँगी।"

"सायण के पास जाकर क्या करोगी ?"

"विजय नगर के महामात्य माधव ने मदुरा पर आक्रमण करने के लिए अपनी सेना को आदेश दे दिया। सेना कूच कर चुकी है। उनका सेनापति सायण है।"

"और सोचो कि वे तुम्हें दाद न दें।"

"तब मैं दौलताबाद जाऊँगी। वहाँ के सूबेदार इस्माइल मुख से मिलूँगी। उसे अपने दामाद की मदद के लिए आना ही होगा।"

"दामाद तो मर गया और उसका सिर भी भाले पर टाँग दिया गया है! अब बाकी क्या रह गया है ?"

"यही कि एक दामाद का बदला लेने के लिए दूसरे दामाद को तख़्त पर बिठाया जाएगा!"

"दूसरा....दामाद ? कौन ?" फिरोज़ विस्मय में पड़ गया।

अनवरी हँसी। वह इस तरह आगे बढ़ी जैसे तालाब में बत्तख़ तैर रही हो। घी, तेल और मसाले से जड़ बने हुए, उसके लाल, चमकीले चेहरे पर परिहास की स्मिति चमकी। यह स्मिति उसके कुरूप चेहरे की बद-सूरती को छिपा रही थी या बढ़ा रही थी, फिरोज इसका फ़ैसला न कर सका। वह निकट आई। कोई जल्लाद शूली के डोरे डालता हो, उस तरह उसने फिरोज़ की गर्दन में अपने हाथ डाल दिए और बोली—

"वाह, मेरे शौहर! तुम्हारे जैसे मर्द का काम क्या एक बीवी से चल सकता है ? सुलतानों की पहले बेगम राजनीति की सुविधा के लिए होती है और वह माथे के मुकुट जैसी होती है। मुकुट की तरह माथे की शोभा बढ़ाती भी है और माथा दुखाती भी है। दूसरी बेगम गले का हार बनती है और मैं क्या नहीं जानती की मेरे शौहर फिरोज़ को माथे के मुकुट के बजाय गले का हार ज्यादा पसंद है ?"

"मैं कुछ न समझा!"

"बाहर तुमने उस बाँदी को देखा है ?"

"हाँ, देखा है, क्या मतलब ?" फिरोज इतनी मुश्किलों के बीच में भी बाँदी के खयाल पर एक विकृत हँसी न छोड़ सका।

"वह बाँदी नहीं, मेरी पराहगीर है। जिस वक्त पिण्डारियों ने सुलतान गयासुद्दीन को कर्नाटकी आनन्दी के आवास में कत्ल किया, उस वक्त में इसे यहाँ ले आई। यह है 'मरहूम' सुलतान गयासुद्दीन की बेगम और दौलताबाद के सूबेदार इस्माइल मुख की दुख्तर......क्यों, अब तो दूसरी बेगम का ख़याल पसन्द है न ?"

फिरोज़ हँस दिया। उस हास्य से अनवरी के सिर में कोई शूल उठा या नहीं, कौन कह सकता है ? लेकिन जितनी मज़ाक, उतनी चिढ़......चिढ़ को मज़ाक की चीनी के ढक्कन के नीचे ढँक रही हो, ऐसी आवाज़ में बेगम बोली—

"तुम मर्दों को एक सुभीता है—एक बीवी पसंद न आने पर दूसरी ला सकते हो। और दूसरी पसन्द न आने पर तीसरी ला सकते हो। बीवी विचारी को शौहर पसन्द है या नहीं, इसकी कोई परवाह नहीं करता ! वह एक के साथ दूसरा मर्द तो नहीं कर सकती !"

फिरोज़ ने कहा—"तुम्हारे लिए तो यह मुश्किल आसान हो गई है, दूसरों की बात सोच कर, क्यों नाहक परेशान होती हो ? तुम्हारा दूसरा......उमर कोतवाल जो है।"

"उमर कोतवाल ?"...अनवरी ने उतावली आवाज़ में पूछा—"क्या बात है उमर कोतवाल की ?"

"अगर तुम्हें मालूम न हो तो छोड़ो उसे। मैं उसकी चर्चा करने के लिए यहाँ नहीं आया।"

"तो इस्माइल मुख की लड़की रुखसाना की चर्चा करूँ ?"

फिरोज़ ने कहा—"उसका भी, जितना ज़रूरी था जिक्र हो चुका। मुझे तुम्हारी सिर्फ़ इस बात में दिलचस्पी है कि तुम टोंडाईगढ़ जाओ, फर्ज़ करो कि तुम पिण्डारियों के फंदे से निकल कर जा सको, मगर तुम वहाँ जाकर क्या करोगी ?"

"वही करूँगी जो वहाँ सूझेगा। इस वक्त मेरी सारी अक्ल एक ही दिशा में काम कर रही है।"

"लेकिन मुझे एक डर है—टोंडाईगढ़ के उस काफिर राजा को देने के लिए हमारे पास आज रहा ही क्या ?"

"विजयनगर की विपदा उसके लिए भी है और रहेगी। विजय नगर का लक्ष्य दक्खन के दरिया तक पहुँचने का है, इसलिए काफिर राजा के लिए भी यह लक्ष्य कठिनाई का कारण बनेगा। मैं उसे विजय नगर के खिलाफ दोस्ती का पैगाम दूँगी।"

"तुम्हें मालूम है कि इकबाल ने भी उसे कब से दोस्ती का पैगाम भेज दिया है ! फिर क्यों कर वह अपने साधनों की हानि उठाएगा ?" "टोंडाई-गढ़ में तुम्हारे काज़ी उमराव खान असली की दुख्तर रोशन भी है।"

"हाँ, उसका मौसा आदिलशाह शम्बूरराय का वज़ीरे-आज़म है।"

"और अगर वहाँ काम न बना तो मैं सेनापति सायरण के पास जाऊँगी।"

"वहाँ क्या करोगी ?"

"अगर सायरण हमारी मदद करें तो हम शम्बूरराय के खिलाफ, उनकी मदद करना स्वीकार करेंगे यह मैं उनसे कहूँगी। अगर सायरण मलाबारी सल्तनत को अभय दान देंगे तो ज़रूरत पड़ने पर हम उन्हें मदुरा का कब्जा दे सकते हैं, इस तरह उन्हें रामेश्वर तक का रास्ता मिल जाएगा। और जब सायरण तुंगभद्रा के उस पार दिल्ली के सुलतान मुहम्मद से अनिवार्यतः होनेवाले भावी संगर में जूझेंगे, तब वे हमारी तरफ से निश्चित रहेंगे, क्या यह राहत उनके लिए कम है ?"

"राहत मिलेगी ?"

"राहत की बात तो वक्त आने पर देखी जाएगी, इस वक्त उन्हें वचन तो मिल ही जाएगा।"

"हाँ बेगम, वचन देते हुए हमें कंजूसी क्यों करनी चाहिए ?"

"ठीक है, वचन देने में कंजूसी करने से सल्तनत नहीं चलती।"

"और विजय नगर से भी कुछ काम न बना तो ?"

"तुम पागल हो कि ऐसी शंकाएँ करते हो ? सेनापति सायण पागल नहीं है, वह साम्राज्य की स्थापना के लिए निकला है और जो साम्राज्य की बढ़ती के लिए निकलते हैं उनके जैसे भोले आदमी दूसरे नहीं होते !"

"इकबाल......."

"इकबाल को अगर भला और भोला न कह सकें, तब भी बेवकूफ तो कहना ही पड़ेगा। अगर उसकी जगह मैं होती, सुलतान बनती, तो सबसे पहले तुम्हारा सिर उड़ा देती !"

"मेरा ?......मेरा ?........अरी, बेवकूफ, कोई सुन लेगा !"

"सुने या नहीं, लेकिन जल्द ही इकबाल के दिमाग में यह ख़याल आएगा।"

"लेकिन.......लेकिन.......।"

"क्यों घबराता है ? सल्तनत लेने के लिये चला है और कलेजा इतना कच्चा रखता है ? जो अपनी सल्तनत लौटा लेना चाहता हो या परायी छीन लेना चाहता हो, उसे अपना सिर हथेली पर लेकर चलना चाहिये।"

"अब छोड़ो इन बातों को, दूसरी कोई बात है या नहीं ?"

"आपकी आज की बाँदी शायद कल की बेगम बनेगी !"

"क्यों कर कल की .... ?"

"इतना भी नहीं समझते ? अगर हमें इस्माइलमुख की ज़रूरत नहीं पड़ती है तो उसकी लड़की को बेगम बनाने से क्या होगा ?"

"यह बात सच है।"

"तब, चलो। मैं तुम्हारी बाँदी को बुलाती हूँ, शेष रात शान्ति से बिताना। सुबह अपनी नौकरी पर जाना और अगर मैं या उमर नायक नज़र न आयें तो ताज्जुब न करना।"

फिरोज वहाँ से चला गया। इस वक्त उस बेचारे के सिर पर दुःख का भारी भार था। उसकी हालत ऐसी थी, जैसे कोई शिकारी गीदड़ को पकड़ने जाए, हाथ में बाघ आ जाए। वह तो बेचारा हथियार जमाकर

मदुरा का सुलतान बनने के लिये निकला था और बनकर रह गया कारकून !

और इस वक्त उसे अपनी भावी बेगम की कल्पना भी आनन्द न दे सकती थी। अनवरी ने कहा था—सल्तनत लेने के लिये निकलनेवालों को अपना सिर हथेली पर रखना चाहिए। लेकिन यहाँ तो भाले पर सिर टँगने का मौका था। और सिर की सलामती न होने पर किसी चीज़ में लुत्फ़ नहीं !

फिरोज़ गया और तत्काल उमर कोतवाल आया। वह अपनी सुविधानुसार कभी अपने को कोतवाल कहलाता और कभी नायक !

आकर वह झूले पर बैठ गया। अनवरी को उसने अपने पास खींच लिया और चिढ़ैल स्वर में पूछा—"मुझे समझ में नहीं आता, तू किसे खेला रही है ?"

"मैं किसी को नहीं खेलाती। तुम दोनों को सम्हाल कर रखना चाहती हूँ।"

"दोनों को ? एक म्यान में दो तलवारें ?"

"तलवार कौन ? तू ? नहीं रे, नहीं। तलवार तो वह उल्लू फिरोज़ है ! म्यान तो तू है। एक तलवार के लिये कई म्यानें हो सकती हैं, समझा ?"

"नहीं समझा।"

"तो, सुन। चाहे मैं तेरी लैला हूँ, चाहे तू मेरा मजनूँ है, फिर भी मैं बादशाह की बेटी हूँ। समझा ? अगर तेरे दिल में यह ख़याल है कि मैं कभी एक-न-एक दिन तुम से शादी कर लूँगी, तो इस ख़याल को दिल से निकाल देना। तू मेरी सेज का साथी है, और इसकी ना नहीं, मेरी या फिरोज़ की ओर से। लेकिन मेरे तख़्त का साथी तो मेरी बराबरी का मर्द ही हो सकता है।"

उमर ने तलवार की मूँठ पर हाथ रखा—"मन होता है काट कर तेरे दो टुकड़े कर दूँ, मेरे साथ ऐसा दग़ा ?"

खतरा मोल न लेना ! अगर यहाँ रहता है तो, मैं तेरी लैला भले होऊँ, मगर अनवरी बेगम तेरी सुलताना है और अनवरी बेगम का शौहर मदुरा के शाही खानदान का फरज़न्द फिरोज़ तेरा सुलतान है, इसे हरगिज़ न भूलना।"

फिर अनवरी बेगम ने हाथ लम्बाकर, उँगली से इशारा किया—"तुम्हें जाना हो उमर कोतवाल, तो यह दरवाज़ा खुला है।"

पल भर के लिए उमर कोतवाल अपने मन के भग्न महलों के खँडहरों के नीचे विवश बना खड़ा रहा ! दूसरे ही क्षण उसने अनवरी का हाथ खींच लिया—

"क्या रूठ गई मेरी माशूक ! कब मैंने तेरी गुलामी से इनकार किया है ?"

१४ ★ बेचारा मंजूरशाह

सुबह होते ही मदुरा के लोगों ने एक नया अजूबा देखा—बाज़ारों और बड़ी हवेलियों को लूटकर सामान को सँभालनेवाले सभी पिण्डारी लौट गये थे। और इस वक्त वे शाही महल के बड़े चौक में जमा हो रहे थे।

इकबाल ने फतवा दिया था, डोंडी पिटवा कर गली-गली में घोषणा करवाई थी कि आज दिन के तीसरे पहर मरहूम सुलतान का जनाजा शाही महल से निकलेगा। कब्रस्तान तक सुलतानों को ले जानेवाली चार घोड़ों की खुली बग्घी में सुलतान का शव एक पटले पर रक्खा जाएगा। जिसे देखना हो, उसके देखने के लिए; जिसे परखना हो उसकी परख के लिए मरहूम सुलतान का सिर खुला रखा जाएगा।

और जनाजे को पहली विदा देने के लिए, मरहूम सुलतान को शिकस्त देकर कत्ल करनेवाला गाज़ी इकबाल शाह खुद तशरीफ लायेंगे।

कब्रस्तान से लौटने पर, चौथे पहर के अन्त में और पाचवें पहर के आरम्भ में, नजूमी ज्योतिषियों के बतलाए शुभ मुहूर्त्त में, मदुरा के सातवें सुलतान इकबाल-पहले की ताज़पोशी की रस्म अदा होगी।

कई लोग जैसे इस फरमान की राह ही देख रहे थे। अब उन्हें मानो राह देखने का बदला मिल गया हो। दूसरे कइयों को यह सारी बात काफिरों जैसी प्रतीत हुई। भला यह जनाजा कैसा ! नजूम कैसा ? ऐसी ताज़पोशी कैसी ?

सुलतान के ताजपोशी के दरबार में कर्नाटकी आनंदी नाचेगी, अनेक को अपने संशय का उत्तर, इसी सम्भावना में मिल गया।

कुल्हाड़े, फरसे और तलवार-भाले लेकर चलनेवाले पिण्डारियों का दल आगे बढ़ा। फिर चार काले घोड़े जिसे खींच रहे थे वह गाड़ी, उसके पटले पर सुलतान गयासुद्दीन की लाश पड़ी थी, जिस पर एक बार भाले पर चढ़ा हुआ सिर, साफ करके फिर से अपनी जगह लगा दिया गया था। और इस सावधानी के लिए कि रास्ते में उछलने-हिलने वाली गाड़ी के सबब, सिर कहीं उछलकर गिर न जाय, इसके लिए, चमारों से उसे अच्छी तरह सिलवा दिया गया था।

चार घुड़सवार आगे, चार पीछे और एक एक अगल-बगल में चल रहे थे।

लोग अच्छी तरह देख लें और भविष्य में बराबर पहचान सकें, इस उद्देश्य से इकबालशाह गाड़ी के पीछे चलनेवाले पिण्डारी दल के आगे-आगे चल रहा था। उसके पीछे एक पिण्डारी उसके घोड़े के साथ चल रहा था। इकबाल पूरी आन, बान और शान में था। उसने सुलतान की पोशाक पहनी थी। पान का डिब्बा उठाये एक हड़ाप्पा पीछे-पीछे आ रहा था। एक पिण्डारी ऊँचा छत्र उठाये चल रहा था। दोनों ओर दो-दो बाँदियाँ उसे धीमे-धीमे पंखे झल रही थीं।

इस शान से सम्मान देने वाला सुलतान शिकस्त पाये हुए सुलतान को उसकी आखिरी मंजिल तक पहुँचाने जा रहा था।

किसी-किसी सुलतान ने इसी तरह अपनी आखिरी मंजिल पूरी की थी और दूसरे किसी को इस तरह की आखिरी मंजिल के लिए कयामत तक राह देखना बदा था।

लेकिन नया सुलतान इकबालशाह आज खुद एक जनाजे के साथ चल रहा था, यह अजीब बात थी और अजीब बात न भी थी।

मरहूम सुलतान चाहे जैसे मगर शिकस्त खा चुका था। सल्तनत की शतरंज पर चाहे जैसे सुलतान गयासुद्दीन ने खता खाई थी और आज उसकी बाज़ी पूरी हो चुकी थी!

उसे शिकस्त देनेवाले का नाम पिण्डारी के रूप में प्रसिद्ध हो चुका था परन्तु किसी ने उसे अपनी आँखों देखा न था, इसलिए अपने भावी सुलतान को प्रजा-जन अपनी नज़रों से देख लें, इसमें कोई बुराई न थी।

जनाजे के पीछे, काष्ठपटल के कोने पर, भाले का त्रिकोण बनाया गया था। यह एक पुराना रिवाज़ था। इस त्रिकोण पर शाही मंजिल की चाबियाँ रखी गयी थीं। ताकि लोग उन्हें भली-भाँति देख लें। और इसका मतलब यह भी था कि विजयी व्यक्ति जहाँ से आया है, विजय पाकर भी वहाँ नहीं लौटेगा, वरन् मरहूम सुलतान के वफादार वारिस की तरह, नया सुलतान बनकर, अपनी जगह कायम रहेगा।

धीरे-धीरे जनाजा उठा और जनाजेदार गाड़ी आगे चली। इकबाल ने क्रूर-दृष्टि से अपने आस-पास देखा। दृष्टि दावात और कलम लेकर पीछे-पीछे चलनेवाले कारकून फिरोज़ पर पड़ी। इकबाल के चेहरे पर तृप्ति की लालसा का उल्लास व्यक्त हुआ।

राजमार्ग से निकल कर जनाजा और जुलूस बाजार के पीछे की एक छोटी गली से गुज़रा। यहाँ लोगों की बस्ती घनी थी और इधर-उधर कई छोटी-छोटी टेढ़ी-मेढ़ी गलियाँ भी थीं।

सहसा एक गली में से, गुलेल से छूटे हुए बड़े-बड़े पत्थर आकर गिरे। ये किसी के सिर और किसी के पैर पर लगे।

कुछ पिण्डारी गली की ओर दौड़े।

तब दूसरी गली से पत्थर बरसने लगे।

किसी ने ताक कर निशाना चलाया हो इस तरह एक पत्थर जनाजे की गाड़ी के घोड़े को लगा। घोड़ा अचानक ही इस प्रहार के लहू झरते घाव से पागल बना, हवा में उछला। एक और घाव दूसरे घोड़े के पैर में हुआ और वह ज़ोर से हिनहिनाकर भागा।

चौंके ए घोड़े ने जनाजे को घसीटते हुए, पिण्डारी कटक के अब अग्रभाग के बीच से निकलने की कोशिश की! किसी को लगी, कोई गिरा, कुछ कुचले गये और अब तो पिण्डारी दल में भगदड़ मची। पीछे के पिण्डारी

रोशन क्रोध में थी—"मेरे पास ! क्या काम है ? मुझे क्या हो सकता था ? अगर मेरे लिए तुम्हारी मुहब्बत सच्ची थी तो क्यों न तुम मेरे वालिद के कातिल इक़बाल का सिर अपने हाथ में लेकर यहाँ आए ?"

"तुम्हारा ख़याल है, मेरी मुहब्बत सच नहीं है ?"

"मुबारक, बुरा न मानना ! लेकिन, मेरे वालिद के इस कत्ल ने मेरे दिमाग़ को भटका दिया है ! मेरे दिल को मुरझा दिया है । क्या कहूँ ? कैसे कहूँ ? किसे कहूँ ? कुछ समझ में नहीं आता ! मेरे दिल में एक आग जल रही है । यह सिर्फ़ इकबाल के ख़ून से बुझ सकती है ! जो कोई उस का सिर लाकर मुझे देगा, उस पर मैं अपनी जान कुरबान कर दूंगी !"

क्षणभर के लिए रोशन मौन रही।

फिर उसने मुबारक के दोनों हाथ थाम लिए। सुलगती हुई आँखों से वह उसका चेहरा देखती रही—"मुबारक, तुम यहाँ क्यों आए ? उस शैतान का सिर काट लेने के लिए, वहीं क्यों कर न रुक गए ?"

"रोशन, तुम्हारे दिल में आग लगी है ! और तुम्हारा ख़याल है, मेरा मन शान्त है ? मैं पास में खड़ा था, जब तुम्हारे पिता की हत्या हो रही थी। इतनी जल्दी सारी घटना घटी कि रोकने का कोई उपाय मैं काम में न ला सका।...मेरे वालिद की जान भी जोखिम में थी। अगर मैं इकबाल का खरीता लेकर शम्बूरराय के पास न आता और जवाब लेकर अब अगर जो न लौटूं तो मेरे वालिद की जान का खतरा है !...रोशन, कुछ भी समझ में नहीं आता—किस्मत मुझसे कैसा खेल खेल रही है ? क्योंकर ऐसी धोखेबाज़ी हो रही है ?..."

कुछ देर दोनों ख़ामोश रहे।

मुबारक ने रोशन को अपनी तरफ़ खींच लिया और उसके आँसू पोंछना शुरू किया !

"रोशन" उसने कहा—"मुश्किल के इस वक्त मैं अपने वफादार नौकर की सहायता से बच पाया ! घटनाएँ इस तेज़ी से गुजरीं कि किसी को सोच विचार करने का वक्त नहीं मिला ! लेकिन, अब हम शांतिपूर्वक विचार

कर सकेंगे। मैं लूंगा इकबाल से तुम्हारे वालिद के कत्ल का इंतकाम! ज़रूर लूँगा यह बदला!"

"इस सारे दौरान में मलिक फिरोज़ कहाँ थे? या वे किसी औरत के साथ ज़नानखाने में छिपे बैठे थे? बड़ी-बड़ी डींगें हाँकनेवाला और घबरा देनेवाली नज़रों से मुझे घूरते रहनेवाला वह मलिक कहाँ है? कोरी बातें ही बघारता था, वह?"

मुबारक तनिक हँसा—"मलिक फिरोज़ इस वक्त इकबाल शाह का कारकून बना बैठा है।"

अपना ज़हर भर कर वह बोली—"हाँ, यही होगा! जहाँ सभी बातूनी बैठे हों; जहाँ के सौदागर पिंडारियों को रूपया उधार देते हों, वहाँ पिंडारियों का पिंडारी, लुटेरों का लुटेरा ही मलाबार का सुल्तान बन कर नहीं बैठेगा, तो और कौन बैठेगा?"

"रोशन, इस वक्त तुम्हारा दिल कटुता से उमड़ रहा है, उफन रहा है! दुःख और उदासी से भरा हुआ है। मदुरा पर जब पिण्डारियों की बिजली गिरी, तब हम कितने चकित रह गये थे! और मूढ़ बन गए थे, यह तुम्हारी समझ में नहीं आएगा। तुम्हारा मन, तुम्हारी अक्ल—सभी तुम्हारे वालिद के खून के नीचे दफन हो गया है। लेकिन, तुम हरगिज़ यह न भूलना कि एक दिन मेरी मुहब्बत और मेरी जवानी तुमसे इज्ज़त पाएगी। इंसाफ मांगेगी और पाकर रहेगी।"

बाहर नीचे की पगडंडी पर किसी के खँखारने की आवाज़ आई।

"कोई आ रहा है।" कहकर रोशन दूर हट गई—"अरे, ये तो खुद मौसा हैं! वज़ीर साहब आ रहे हैं!"

रोशन का मौसा और शम्बूरराय का वज़ीरेआज़म आदिलशाह असली ऊपर आया। वह बहुत मोटा आदमी था, इसलिए ऊपर चढ़ते हुए हांफ रहा था।

कुछ देर के लिए वह नीचे बैठ गया।

"मौसा आप?" रोशन ने विस्मय से पूछा।

राज़ और महत्त्व पलभर में इस वक्त उसके ध्यान में आ गया। मुबारक उमरावखान को बचाने गया। उसने इकबाल के हाथ से कुल्हाड़ा छीन लिया ! फिर मुबारक का हाथ पकड़ कर, उस हाथ-हाथ में थमे कुल्हाड़े से इकबाल ने मरणान्तक प्रहार किया था !.......

आदिल शाह ने, त्रास से भरे-भरे मुबारक के चेहरे को देखा ! फिर अपनी नज़र फेर ली—

"ले जाओ इस क़ातिल को !" आदिलशाह ने कहा—"कातिल चाहे नौजवान हो, मगर उस पर रहम करना नामुनासिब है !"

१६ फाँसी की सज़ा

कोई भी सल्तनत बिना-फाँसीघर की नहीं होती ! मदुरा की सल्तनत भी अपने कारागृह और फाँसीघरों से सुसज्जित थी !

ऐसे ही एक फांसीघर की एक काली अंधेरी कोठरी में सुलतान फिरोज़ के कैदी मुबारक को बन्द कर दिया गया था !

मुबारक की सज़ा की बात सुनकर हसन सौदागर को आश्चर्य हुआ था ! उसका विश्वास था कि इसमें ज़रूर कोई भूल है ! सुलतान फिरोज़ इतना बेशरम नहीं हो सकता !

लेकिन, भरे दरबार में जब मुबारक के खिलाफ़ लगाए गए जुर्म की जाँच की गई और मान लिया गया कि उमरावखान का कत्ल मुबारक ने किया है और सुलतान ने सज़ा सुनाई दी हसन सौदागर के कलेजे में आग लग गई ! बूढ़ा एकदम अनाथ बन गया !

गए कल की तो बात है, बूढ़ा मजबूत और अचल खड़ा था। आज अचानक जैसे कहीं से वह टूट गया ! गए कल, उसके कलेजे में हिम्मत थी कि उसने सुलतान गयासुद्दीन की हयात में, फिरोज़ को अपनी साजिश के लिए धन दिया था ! उस वक्त सल्तनत के खिलाफ़ षड्यंत्र में शामिल होना यमराज---जिब्रिल के खिलाफ़ मोरचा बनाने जैसा काम था ! तब भी हसन सौदागर ने अपने एकमात्र नौजवान बेटे को फिरोज़ के काम के लिए सौंप दिया था !

लेकिन आज बूढ़े का सारा गणित उलट गया ! सारा हिसाब ग़लत निकला !

पहले तो सुलतान ने उससे मुलाकात करने से ही इंकार कर दिया। दरबार में उसे बैठक भी न दी, मुबारक से मिलने की मंजूरी ही न दी, तब यह भयानक सत्य बिजली के एक झटके की तरह, उसके कलेजे को खाक कर गया !

सुलतान फिरोज़ कठिनाई के दिनों के अपने सहयोगियों को अब समाप्त कर देना चाहता था। अतः इस दृष्टि से प्रमाणरूपेण, सैयद मंजूरशाह सस्ते में छूट गया था। वैसे, उसका उपकार भी कम था ! और सौदागर हसन के बारे में तो सुलतान यही चाहता था कि उसे कहीं से कोई सहारा न मिले, वह समूचा समाप्त हो जाए !

विचित्र बात तो यह थी कि पिंडारराज के ज़माने में जाने कितने आदमी मारे गए, जाने कितने कत्ल हुए, जाने कितने लूटे गए और उन सबके कातिलों और लुटेरों की खोज और जाँच न करके सुलतान सिर्फ़ काज़ी उमरावखान का ही मामला लेकर बैठ गया था ! इसके मूल में क्या रहस्य था ?

अपनी टूटी हुई देह को लकड़ी के सहारे टिकाता हुआ, सब को दया का पात्र बनाता हुआ बूढ़ा हसन सौदागर पैर घसीटता हुआ उमरावखान काज़ी की कोठी पर पहुँचा और वहाँ वह रोशन से मिला।

"बेटी," हसन सौदागर ने पूछा—"सुलतान के इंसाफ को सुलतान के पास रहने देना। उसकी वैरभावना से अपने कलेजे में काँटे न बोना। क्या तेरा खयाल है : मेरे बेटे ने तेरे बाप का कत्ल किया है ?"

रोशन का चेहरा काठ की तरह कठोर बन गया। उसकी आँखों के अतिरिक्त, उसका रूप और यौवन जड़वत् प्रतीत होते थे !

"रहने दो सौदागर यह बात ! मुझसे ही क्यो पूछते हो ?" रोशन ने कहा—"अपने कातिल बेटे से ही पूछ देखो !"

"कातिल ? मेरा बेटा कातिल ? और तेरी जबान पर ये बोल ?"

"सौदागर, सुलतान की कचहरी में तुम देरी से पहुँचे थे। क्यों न देरी से आओ ? जल्दी क्यों आने लगे ? लेकिन मैं तो वहाँ पहले से हाज़िर थी। मैंने सारे बयानात सुने हैं। सुलतान फिरोज ने अपनी हुकूमत की शुरूआत, इन्साफ का कदम बढ़ाकर, की है !"

"तेरे मुँह में ये वचन !! रोशन ? और तेरी मुहब्बत ? जरा विचार करके देख। मेरा बेटा, तेरे बाप की हत्या, भला, क्यों कर करने लगा ?"

"क्या वह पिण्डारियों के साथ नहीं था ? क्या तुमने पिण्डारियों को रूपया-पैसा नहीं दिया था ? क्या तुमने उन्हें हथियार और घोड़े नहीं दिए थे ?"

"बेटी...ये....ये...ये..." जैसे अपने ही जाल में फँसे हुए कौलिक कीट की भाँति बूढ़ा तड़प कर रह गया..."ये तो मलिक फिरोज खुद भी..."

"मैं मलिक फिरोज की चर्चा नहीं करती।" रोशन ने दाँत पीसकर कहा—"तुम अपने बेटे की बात करने के लिए यहाँ आए हो। और मैं तुम्हें तुम्हारे बेटे के पराक्रम की कथाएँ सुना रही हूँ। कचहरी में कई बयान लिखे गए, मैंने सभी ध्यानपूर्वक सुने हैं...सैयद मंजूरशाह क्योंकर भूठ बोलने लगा ?...उसका बयान भी कचहरी में मैंने और सब लोगों ने सुना है। कुछ लोगों ने इस घटना को अपनी आँखों देखा है। और जिस तरह देखा है, उस तरह बयान भी किया है। बूढ़े, मेरे वालिद की जान लेकर, अब मुझे अधिक चक्कर में डालने की कोशिश मत करो। और मुझे ज्यादा मत सताओ !"

"मगर....मगर...रोशन...बेटी...तेरे बाप की हत्या करने से मुबारक को क्या मिलता है ?"

"बूढ़े, मुबारक ने कचहरी में यह सब तो नहीं बताया, वरना मैं तुम्हें सुना देती। कचहरी में जितनी बात हुई उतनी मैंने तुम्हें सुनाई। अगर मुझे पूछते हो तो सुन लो कि मेरे वालिद समर्थ काज़ी थे। वे तुम्हारे—बाप-बेटे के पिण्डारियों के सम्बन्ध जान लेने पर, चलने न देते। इसलिए

वालिद का कत्ल करके तुम सुलतान को उल्टा-सीधा समझाकर, काज़ी का ओहदा लेना चाहते थे। ताकि पिण्डारियों के साथ तुम्हारे चोर-धंधे बराबर चलते रहें। लेकिन सुलतान फिरोज तो एहसानशाह के खान-दान का असली सूरज है। वह अपनी हुकूमत में किसी लूट को चलने नहीं देता।"

"लेकिन...तेरी....शादी...."

"वह शादी अब नहीं होगी। हरगिज़ नहीं हो सकती। अब तुम जाओ। तुम्हें देखती हूँ, तो मुझे तुम्हारे-जैसे लोगों के भरोसे रहकर अपनी जान से जानेवाले अपने वालिद की याद आ जाती है......तुम जाओ!......जाओ ......जाओ!"

और रोशन की बढ़ती हुई आवाज़ सुनकर अनवरी बेगम भीतर से निकल आई।

उसे देखकर बूढ़ा हसन खड़ा हो गया—"अब समझा बेटा रोशन! तूने मुझे कई न कहने-योग्य वचन कह दिए हैं। अच्छा...खुदा तुझे सलामत रखे, तुझ पर अपना रहम रखे!"

वृद्ध सौदागर हसन वहाँ से चला गया। यह क्या हो गया, किस लिए हुआ?—इस उधेड़बुन में मानो उसकी मति भ्रमित हो गई।

सुलतान फिरोज के शाही महल की ओर वह गया। वहाँ, कई लोग बाहर आ रहे थे और कई भीतर जा रहे थे, लेकिन किसी ने उसे भीतर न जाने दिया। वह बाहर ही खड़ा रह गया। किसी ने उसका स्वागत नहीं किया। किसी ने उसे बैठने तक को नहीं कहा। किसी ने उससे बात नहीं की। मानो पत्थर पड़ा हो, उस तरह वह वहीं का वहीं बैठा रहा।

बहुत देर के बाद अपने लोगों से घिरा हुआ सुलतान फिरोज बाहर आया!

"मलिक फिरोज!" बूढ़े ने ललकार कर पुकारा। इस ललकार से पल भर के लिए निस्तब्धता छा गई।

"फिरोज! तेरी नौकरी, तेरी ईमानदारी, सब पर लानत है! अगर दुनियाँ में किसी बूढ़े आदमी की आहों और उसके शाप की कोई क़ीमत हो, तो, तेरी मौत गयासुद्दीन और इकबाल से भी ज्यादा भयंकर हो!

आज से मेरे लिए तेरी नौकरी और तेरी तरफदारी हराम है। लानत है तेरे नाम पर, तेरी सल्तनत पर ! तेरी..." बूढ़ा आवेश के आवेग में काँप कर रह गया !

स्तब्ध सुलतान फिरोज पलभर के लिए वृद्ध का मुँह देखता रह गया और अपनी आँखों के सम्मुख उसने जो मानवीय खंडहर देखा, उससे कुछ देर के लिए वह जड़वत् खड़ा रह गया !

दूसरे क्षण, उसने हँसकर कहा—

"इस बूढ़े के कातिल बेटे को इन्साफ ने फाँसी की सज़ा दी है। इससे, इस बूढ़े का दिमाग खराब हो गया है। उमर कोतवाल, इस बूढ़े को अपने मकान पर पहुँचाकर, पक्के पहरे का प्रबन्ध कर दो !"

उमर कोतवाल ने दो दोरंगियों को हुक्म दिया। दोरंगी हसन सौदागर को गिरफ्तार करने के लिए, आगे बढ़े, लेकिन उन्होंने निरे आश्चर्य से देखा कि बूढ़ा अपने लहू में लथपथ पड़ा है।

"ले जाओ, इसकी लाश को, दफन कर दो !" इतना कह कर सुलतान फिरोज वापस शाही महल में चला गया।

बहुत देर के बाद अनवरी बेगम आई और सुलतान ने उससे कहा—

"आखिर बूढ़ा जान पर खेल गया। मेरा ख़याल था कि बकवास के बाद चुपचाप बैठा रह जाएगा। लेकिन वह तो छुरा मारकर, मर गया ! अनवरी, मुझे इतना बुरा लगा कि फिर मैं दौलताबादी बेगम के पास न जा सका !"

"फिरोज, तुम्हारा जिगर कच्चा है और तुम्हारे मकसद पक्के हैं, इसी वजह यह तकलीफ है। मुझे तो डर लगता है कि जल्द या देरी से, ऊँचे-ऊँचे, लम्बे-चौड़े, मकसदों के खंडहरों के नीचे इस बूढ़े की तरह, किसी दिन तुम्हारा कलेजा भी बैठ जाएगा !"

"मेरा कलेजा बैठ जाएगा ? इस बात में क्या रखा है ? मेरा जिगर फौलाद का है !"

"लेकिन वह असली फौलाद नहीं है, फिरोज। क्या तुम्हें यह खयाल न था कि बेटे की फाँसी की सजा सुनकर, बाप तुम्हारे पास आएगा ? वह

रोशन के पास जाएगा, जरूर जाएगा, यही समझकर तो मैं वहाँ पहले ही पहुँच गई थी !"

"रोशन के पास ? तुमने उस बूढ़े को रोशन से मिलने ही क्यों दिया ?"

"भले, मिले ।"

"रोशन ने उसे क्या कहा ?"

"यही पूछो कि रोशन के मुँह से अनवरी ने क्या कहा ? बाकी, मुझे लगता है कि तुम बरबाद होने वाले हो ! अगर तुम्हें अपने मन की मुरादें पूरी करनी हों तो, या तो मन को अपने ऐसा कठोर बना लो कि चाहे जितने बूढ़े अपनी जानें दे दें तो, यह समझो कि रास्ते से इतने-इतने काँटे दूर हो गए । और अगर कलेजे को अपने इतना पथरीला न बना सको तो इरादे बाँधना छोड़ दो !"

"तुम रोशन की कहती हो ?"

"हाँ । कचहरी में तुम्हारे तमाशे—मंजूरशाह को अदालत से डराकर बयान दिलवा देना......तुम्हारे सिपाहियों के कारनामें और घर के काज़ी उमर कोतवाल......मदुरा के रईस और अमीर चाहे आज तुम्हारी इंसाफ-परस्ती की तारीफ करें लेकिन, कोई इस अनवरी बेगम की आँखों में धूल नहीं झोंक सकता...तुम तो नहीं ही !"

"उमर कोतवाल भी नहीं ?"

"बेचारा उमर कोतवाल ! जिस तरह अपने शरीर की भूख मिटाने के लिए मलिक और अमीर खानसामा रखते हैं, उस तरह वह मेरा खानसामा है। वह बेचारा क्या मुझ पर धूल उड़ाएगा ? और तुम भी क्या उड़ा सकते हो ?"

"इसके लिए मैंने कभी कोशिश भी नहीं की ।"

"अकेली रोशन पर अपनी छाप डालने के लिए और उसे पाने के लिए तुमने इतना बड़ा नाटक किस लिए खेला ? यह मेरी समझ में नहीं आता । जब जरूरत पड़ती, तब चार बाँदियाँ रोशन के मुँह में कपड़ा ठूँसकर, उठाकर, उसे तुम्हारे हरम में, तुम्हारी सेज पर, पटक देतीं । फिर मर्द जैसे मर्द होकर, तुम यों सर्प की चाल क्यों चलते हो ?"

"अनवरी ! यह तुम नहीं समझ सकती । दौलताबादी बेगम से लेकर सभी बाँदियाँ और खातूनें तो मिट्टी के पिण्ड हैं । मैं एक ऐसी औरत चाहता हूँ, जो मुझे प्यार करे, मुझसे मोहब्बत रखे ।"

अनवरी फिरोज़ को इस तरह देखती रह गई, जिस तरह अजायबघर के किसी नए प्राणी को कोई देखता हो—

"औरत का प्यार ? मोहब्बत ? मेरा फिरोज़, मिट्टी का ऐसा पुतला है ? अरे पगले, प्यार और मोहब्बत तो नशे में चकचूर, शायरों के ख्वाब हैं । फिरोज़, छोड़ दे इन ख्वाबों को । वरना, तू न घर का रहेगा और न घाट का । और मुफ्त में जो सल्तनत हाथ लग गई है, उसे भी खो बैठेगा ।"

"इस चीज़ को तुम नहीं समझ सकती, अनवरी ! इन्कार नहीं करता कि सल्तनत और हुकूमत—सभी पाने जैसी चीजें हैं । लेकिन, एक औरत का दिल...लेकिन तुम्हारे पास जब दिल ही नहीं है तो, तुम कैसे सब समझ सकती हो ?"

"मेरे पास ज़रूर ऐसा दिल नहीं है, और इस वजह मैं खुश हूँ । क्यों कि मुझे सच-झूठ और इधर से उधर करने की ज़रूरत नहीं पड़ती । मुझे तो इतना ही चाहिए कि मेरे हुक्म के मुताबिक सब कुछ चल रहा है । दूसरा मैं कुछ भी नहीं चाहती । और तीन कौड़ी की एक औरत का दिल जीतने की बेवकूफी मुझे किसी दिन परेशान नहीं करती । मेरे दुर्भाग्य ने मेरा रिश्ता तुमसे जोड़ दिया है ! और रोशन के पीछे तुम इतने पागल हो गए हो ! चाहे पागल हो जाओ । चाहे अपने इंसाफ के नाटक किए जाओ । चाहे जितने बेकार आदमियों को फाँसी दे दो, चाहे जितने बेकार आदमी आत्महत्या करें, मुझे इसका रंज नहीं, लेकिन याद रखना फिरोज़, मैं अनवरी बेगम, सल्तनत को जिससे नुकसान पहुँचे, ऐसा कोई काम न करने दूँगी ।"

"तुम तो जब देखो तब, सल्तनत और हुकूमत के झाड़ पर चढ़कर इस तरह बैठ जाती हो कि फिर नीचे उतरना ही मुश्किल हो जाता है ! एक बेचारी यह रोशन है । इसके माँ और बाप दोनों गए—बाप गया जन्तर बजाता हुआ और कल, इसका शौहर बनने के ख्वाब देखनेवाला मुबारक भी जन्तर बजाता हुआ चला जाएगा । रोशन के वालिद की जागीर और

उसका मुआविजा, सभी मेरे कब्जे में हैं। कुछ दिन भूखों मरेगी तो, पैर पकड़ती हुई आएगी और जब पैर पकड़े, तब उठाकर उसे छाती से लगा लूंगा। इसमें भला, सल्तनत क्या, हुकूमत क्या, नफा क्या, बेवकूफी क्या ? मैं नहीं समझता। यह तो 'एक और एक दो' जितनी सीधी बात है।"

"तो होगी, लेकिन कई बार एक और एक दो होने के बजाय तीन हो जाते हैं। इनमें तीन हो जाएँ, तो परवाह नहीं। तुम मौज करो और चाहो तो दूसरी चार बेगमें भी रख लो और चुन-चुनकर बाईस बाँदियाँ और दासियाँ बसाओ। तुम्हें एक रास्ता दिखाती हूँ—तुम्हारा यह काम बीच-बीच में रुक न जाया करे, इसलिए आज ही जड़ को जड़ से काट दो !"

"किस तरह ? रोशन खुद चलकर मेरे पास आए, ऐसा काम करना चाहिए। उसे बाँदियों के जरिए उड़ाकर लाने की बात मुझे पसंद नहीं।"

"अरे उल्लू ! रोशन......रोशन......रोशन क्या करता है ? रोशन के अलावा मदुरा में और भी पचास हज़ार आदमी रहते हैं और पूरी सल्तनत में पच्चीस लाख आदमियों की आबादी है।"

"लेकिन......"

"लेकिन मैं रोशन की ही चर्चा कर रही थी। ज़रा तुम धीरज रखो। ज़रा मेरी बात को समझो। रोशन और मुबारक की शादी होने जा रही थी, समझे ? आज रोशन की मुहब्बत पूरी तरह नफरत में बदल गई है, फिर भी शायद उसके मन की गहराई में मुबारक से मुहब्बत भी होगी।"

फिरोज़ ने होठ चबाया—"आने वाले कल मुबारक फाँसी पर लटका दिया जाएगा, लेकिन, मुझे तो ऐसा लगता है जैसे बरसों लग रहे हैं !"

"तो एक काम करो—जेल में रोशन और मुबारक की मुलाकात होने दो।"

"मुलाकात होने दूँ ? मुबारक और रोशन की ?"

"हाँ। वरना रोशन के दिल में अनजाना ज़ख्म रह जाएगा और वह कभी भी फिर से हरा हो जाएगा। कचहरी के बयानात इतने पक्के हैं और दौलताबादी बेगम को आगे बढ़ाकर मैंने इतनी पक्की मिट्टी का लेपन किया है

कि रोशन के मन में आज तो दूसरी कोई बात नहीं। बाप के कत्ल के सामने आज उसके लिए अपने प्रेमी की मौत की कीमत नहीं है। जब तक उसके दिल में अपने वालिद के कत्ल की गहरी गमगीनियत मौजूद है, तब तक एक बार उस कातिल से रोशन को मिलने दो। जेल के फाँसी घर से वह अपने दिल में इतना बड़ा धिक्कार और नफरत लेकर लौटेगी कि फिर तो वहाँ से उछलकर सीधी तेरी बगल में आ जाएगी!"

"अनवरी, तुम ठीक कहती हो!"

"जिस मोहब्बत के पीछे तुम पागल बन रहे हो और रोशन बरबाद होने के लिए बैठी है, उस मोहब्बत को मैंने अपनी ज़िंदगी में कहीं जगह नहीं दी है। मुझे यह पूरी बेवकूफी लगती है कि आदमी अपने शरीर की भूख पर शादी के, मोहब्बत के, दिल के, और शायरी के रंगोरोग़ान क्यों चढ़ाता है? और इस तरह की बेवकूफी कई कई लोग करते हैं। और तुम ही बार-बार बेवकूफी के इस घोड़े पर सवार हो जाते हो, इसलिए बेककूफी के इस दरिया की थाह लेने के लिए मैंने अपने दिल को कई सालों से इसी काम में लगा रखा है। मैंने कभी किसी से प्रेम नहीं किया, करनेवाली भी नहीं जानती, जानना भी नहीं चाहती। फिर भी मैं यह अच्छी तरह समझती हूँ कि प्रेमी-आशिक-माशूक आपस में किस तरह बातचीत करते हैं! इसलिए मुबारक के पास रोशन को इस वक्त भेज दो! कल जब मुबारक की लाश कब्रस्तान तक ले जाई जाएगी, तब उस दृश्य को तुम और रोशन एक दूसरे के गले में हाथ डालकर, देखना!"

जब रोशन के पास खुद सुलतान फिरोज़ पहुँचा, तब उसे आश्चर्य हुआ और 'नवाई' भी लगी!

फिरोज़ बोला—"रोशन, तुम्हारे वालिद की जगह मुझे लेनी पड़ेगी और तुम्हारा सारा इन्तज़ाम करना पड़ेगा। मेरी एक इच्छा है, तुम्हारी भलाई के लिए कि एक बार तुम जेल में मुबारक से आखिरी बार मिल लो!"

"मुबारक से आखिरी मुलाकात? किसलिए मैं उससे मिलूँ?"

"उसने तुम्हारे वालिद का कत्ल किया है, खैर यह तो साबित हो चुका है और एक हकीकत है। इस हकीकत को सारी अदालत ने और तुमने भी देखा-सुना है। इसमें शक की कोई गुंजाइश नहीं है। अब सुल्तान के तौर पर नहीं, तीन तीन सुल्तानों के काज़ी के ओहदे पर काम करनेवाले तुम्हारे वालिद की तारीफ करनेवाले आदमी के तौर पर कहता हूँ कि मैंने खुद अपनी आँखों से उस हरामी इकबाल के बाज़ू में खड़े रहकर तुम्हारे वालिद की हत्या करनेवाले मुबारक को देखा है। अफसोस है कि तुम्हारे वालिद की रक्षा के लिए मैं आगे न बढ़ सका, क्योंकि हमारे बीच में हज़ारों पिण्डारी खड़े थे।"

"अब तो यह बात हो चुकी है, मैं मुबारक से नहीं मिलना चाहती। कौन है मुबारक मेरा कि मैं उससे जाकर जेल में मिलूँ?"

"अगर तुम यही कहती हो कि मुबारक मेरा कौन होता है, तो ज्यादा मैं कुछ जानना नहीं चाहता, लेकिन तुम्हारे वालिद ने उससे तुम्हारी शादी तै की थी। एक बार अपने वालिद की दुख्तर के तौर पर, अपने वालिद के कातिल को देख आओ, अपने सन्तोष के लिए नहीं, तो मेरे सन्तोष के लिये।"

जब अपनी अँधेरी कोठरी में रोशनी हुई तो, मुबारक को आश्चर्य हुआ। बढ़ती जाती रोशनी में उसने देखा कि दरवाजे खुले हैं और बाहर दो-तीन दोरंगी खड़े हैं।

मुबारक ने पूछा—"क्यों दोरंगुलु! वक्त हो गया? मैं तैयार हूँ।"

दोरंगियों के दरोगा दोरंगुलु ने कहा—"मुबारकखान अभी देर है। माबदौलत सुल्तान के हुक्म से एक मुलाकात रखी गई है।"

मुबारक ने देखा—दोरंगी एक ओर हट गये। उनके पीछे से रोशन आगे बढ़ी। आगे आकर कोठरी की देहली पर खड़ी रही।

"रोशन?" मुबारक ने आतुरता और अचरजपूर्वक कहा—"रोशन ...तुम?....मेरे लिये, क्या माफी का पैगाम लेकर आई हो?"

"माफी? और तुम्हें? मैं तो आई हूँ—अपने बाप के कातिल को आखिरी बार देखने के लिए।"

"रोशन, कल मैं खुदा के दरबार में जानेवाला हूँ। यमदूतों की पुकार मेरे कान में गूँज रही है। ऐसी हालत में तुझसे कहता हूँ, सुन, तेरे बाप का कत्ल मैंने नहीं किया। मैं कत्ल करूँ, इसकी कोई वजह ही नहीं थी।"

"मौत सिर पर मँड़रा रही है, फिर भी तुम्हारा झूठ तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ता है? मैं तो इसलिए आई थी कि देखूँ—तुझ में अब भी अपनी नौजवानी का नूर इतना बच रहा है कि मेरे कदमों में पड़कर तू अपने गुनाहों को कुबूल करे। अगर तू कुबूल करे और मैं खामोशी से...खामोशी से...लेकिन नहीं...जाने दो अब इस बात को! जो आदमी मौत के साये में भी झूठ को नहीं छोड़ता, वह जिन्दगी में किस सचाई से चिपट कर रहनेवाला था? मेरी यही खुशकिस्मती है कि मैं तुम्हारे संग से बच गई!"

"रोशन!"

"मेरे वालिद का कत्ल! अगर मैंने अदालत की कार्रवाई अपनी आँखों से न देखी होती और कानों से न सुनी होती तो, लगता कि तुम्हें फँसाने और सताने के लिए किसी ने षड़यन्त्र किया है। अगर मैंने कार्रवाई न सुनी होती तो, कदाचित्, मेरे दिल में दाग़ एक रह जाता। खैर, अब तो हमारे बीच कोई बात बाकी नहीं रही। मैं तुम्हें यही कहने आई हूँ। चाहे जो हो, मैं एक आमिल की लड़की हूँ, खानदानी माँ-बाप की खानदानी बेटी हूँ। जिस वक्त तू सल्तनत के इन्साफ के जरिये भेजा हुआ खुदा के दरबार में जा रहा है अपने गुनाहों को कुबूल करने के लिए तब मैं तुझे—अपने बाप के कातिल को माफ करती हूँ।"

"रोशन!"

"मुबारक, तेरे गुनाहों ने दो-दो खानदानों को खत्म कर दिया है—मेरे वालिद और तेरे वालिद....।"

"मेरे वालिद...?"

"हाँ, तेरे वालिद, मुबारक! तेरा खयाल था कि इस खलक में कहीं खुदा नहीं है? क्या तेरा खयाल था कि मेरे वालिद का कत्ल कर दिया

तो, तेरे वालिद मदुरा के काजी बनने के लिए जिन्दा रहेंगे ? तेरे वालिद भी मारे गए। उन्होंने खुदकशी—आत्महत्या कर ली !"

मुबारक का चेहरा सफेद पड़ गया। उसकी देह से जैसे प्राण उड़ गए !

बड़ी देर तक वह बुत बना खड़ा रहा।

रोशन ने कुछ कहा हो तो, कहा हो, लेकिन उसने नहीं सुना। और उसे वहीं छोड़कर रोशन वहाँ से लौट गई।

सुबह जब दोरंगियों ने फाँसीघर के दरवाज़े खोल कर मुबारक को अपनी आखिरी मंजिल की मुसाफिरी के लिए बाहर निकाला तब मानो जेलखाने से सिर्फ एक चलता-फिरता मुरदा ही बाहर निकला ! दोरंगियों ने भी इसे महसूस किया।

मुबारक के सिर के केश एक ही रात में पूनी जैसे सफेद हो गये थे !

१७ ★ कुमार कम्पनराय

नियम है कि पहली नमाज के पहले ही सल्तनत के इन्साफ़ के आखिरी सज़ायाफ्ता को सज़ा मिल जानी चाहिए।

अत: सुबह हुई, न हुई—अभी मुँह-अँधेरा था, अभी आकाश में प्रभात की आभा ने अपना सुनहरी पल्लव बिछाया न था—कि सुलतान के कोतवाल के दोरंगी मुबारक को लेकर, चले गये।

फाँसी का तरीका था कि सज़ायाफ्ता को हाथी के पैरों से बाँधकर, दोनों तरफ मजबूत बंधनों से जकड़कर, एक भारी शिला पर चित लिटा दिया जाता, फिर उस पर हाथी अपना पैर रख देता—सामान्यतया हाथी किसी आदमी पर पैर नहीं रखता, इसलिए उसे शराब पिलाकर उन्मत्त बनाया जाता है। सजा शूली हो या फांसी की, उसका अमल इसी तरह होता है। शाही खानदान का आदमी अगर हो तो उसे जेल में ही जहर का प्याला पीना पड़ता है। मौत की सज़ा—इन्साफ़ के दफ्तर से चाहे जिसके नाम पर पड़ जाय, लेकिन इस पर अमल इसी तरह किया जाता है।

इस सज़ा में सिर्फ एक ही फर्क़ है—अगर सजा सिर्फ़ मौत की है तो अपराधी को शिला पर औंधा लिटाया जाता है ताकि वह उन्मत्त हाथी को अपनी ओर आता हुआ न देख पाये। लेकिन हाथी के अपराधी को चित ही लिटाया जाता है ताकि वह अपनी ओर आनेवाले हाथी को और अपनी छाती पर पड़नेवाले पैर को, अन्त तक अपनी आँखों देख ले। मुबारक को फांसी की सज़ा दी गई थी। हाथी तैयार था।

शहर के बाहर एक बहुत बड़ी शिला पड़ी रहती थी, उसके पास कोई फटकता तक नहीं था। मनुष्यों का खून पी-पीकर यह शिला बहुत चिकनी हो गई थी।

काजी के तौर पर उमरावखान की इज्जत उतनी न थी जितनी एक आमिल के रूप में। सुलतान गयासुद्दीन के कत्ल से, इकबाल के कत्ल से, अमीरों को जितना खयाल न आया था, उतना उमरावखान काजी के लिये आया था। एक अच्छा हमदीन काजी, सूखे के साथ हरा जल जाए, इस तरह मरने योग्य लोगों के साथ मार डाला गया।

इसलिए सुबह से ही सैकड़ों आदमी, यह खूनी तमाशा देखने के लिए अपनी अपनी जगह से आ उठे थे।

दोरंगी मुबारक को पकड़कर लाये। मुबारक की नजरों में उसके वालिद हसन का खून से सना हुआ शरीर घूम रहा था। दूसरा कुछ देखने के लिये उसके पास आँखें नहीं थीं। दूसरा कुछ समझने की अक्ल भी नहीं थी।

शिला पच्चीस-तीस हाथ दूर रह गई थी।

अचानक हाथी इस तरह चला मानो वह पागल हो गया है, व्याकुल हो गया है। उसका महावत् घबराकर जैसे रोकने की कोशिश कर रहा था। लेकिन रुकने के बजाय हाथी और ज्यादा उतावला-बावला हो रहा था।

हाथी को बिफरा हुआ देखकर पास में खड़े हुए लोग इधर-उधर दौड़-धूप करने लगे। इनमें से सिर्फ़ दो ही आदमी पूरी हिम्मत से अपने स्थान पर बैठे रहे, मानो वे हाथी को समझाने के लिये बढ़ रहे हैं।

"भागो,...भागो....भागो, हाथी बिगड़ गया है।"

चारों ओर से शोर उठा। मुबारक के पहरेदार दोरंगी भी पहाड़-जैसे हाथी को अपनी ओर आता देखकर मुबारक को वहीं छोड़कर अपने प्राण बचाकर भाग खड़े हुए।

चारों ओर के शोर से एकदम बेपरवाह हाथी मुबारक की तरफ़ दौड़ा। दूर और निकट खड़े हुए लोगों के श्वांस थम गये। लहू को ठण्डा

कर देनेवाली, कटार की धार जैसी तीखी चीख हाथी के गले से निकली, जिसे सुनकर दर्शक मुट्ठियाँ बाँधकर भागने लगे।

हाथी वह मुबारक के पास आया। खड़ा रहा। भागती हुई भीड़ में से दो आदमी, भागने के बजाय तुरन्त आकर मुबारक के पास खड़े रह गये। तब हाथी कुछ झुका। उसने अपना दाहिना पैर जरा ऊँचा उठाया और सूंड़ को मोड़ लिया। उन दोनों आदमियों ने मुबारक को उठाया, उठाकर हाथी के पैर पर धर दिया। हाथी ने उसे सूँड में पकड़कर ऊँचा उठाया। हाथी की पीठ पर दोनों तरफ रस्सियों की जो सीढ़ियाँ थीं, दोनों ओर, एक एक साथी सीढ़ी पर चढ़ने लगा।

और बिजली की चमक की तेज़ी से हाथी पीछे लौटा और ऐसी गति से, कि जो प्रथम दृष्टि पर क्षिप्र प्रतीत न हो और हाथ से फेंका हथियार उस तक पहुँच न सके, अच्छा घोड़ा भी दौड़कर पहुँच न पाये, पानी के समधार प्रवाह की भाँति मदुरा से दूर और दूर भागने लगा!

क्या हुआ, क्या हो रहा है, क्या होगा इसका पार पाने से पहले ही, जब तक दर्शकों का होश लौट आये, तब तक तो हाथी और उसके चारों भगौड़े क्षितिज पर एक बिन्दुवत् दृष्टिगोचर हुए।

भागते हुए हाथी की सूंड़ में से अपने सिर पर प्रलम्बमान मुबारक को महावत ने सहारा दिया, उसके पीछे बैठे हुए व्यक्ति ने भी सहारा दिया।

मुबारक ने उसका मुँह देखा और विस्मय से वह बोल उठा—"नागर नायक! तुम?...तुमने...तुमने......नागर नायक?"

मुबारक ने नागर नायक की पीठ थपथपाई और दौड़ते हुए हाथी की हवा में झूलती सीढ़ियों पर ऊपर चढ़ने की कोशिश करनेवाले दोनों साथियों को हाथ का सहारा देकर उसने ऊपर चढ़ा लिया।

और हाथी तो तेज़ और तेज़ चला जा रहा था। अब तो उसके सवार अपने पीछे के कोलाहल को भी नहीं सुन सकते थे।

जान में जान आने पर, होश आने पर मुबारक ने पूछा—"नागर नायक, तुम?...तुमने....तुम यहां कहां से आये?"

"तुम्हें मैरने दूँ ? और वह भी फिरोज़ के हाथों ?"

"मेरे वालिद !"

"मैं वक्त पर उनके पास नहीं पहुँच सका। मैंनें पहले ही कह दिया था—'सौदागर, मुझ पर विश्वास रखना', लेकिन उन्हें विश्वास न रहा और सौदागर ऐसा करेंगे, यह ख़याल तो मेरे दिमाग़ में भी कभी नहीं आया।"

"वालिद चले गये !...रोशन !...नागर नायक, मेरे जैसे बदकिस्मत को बचाने के लिये, तुमने अपनी जान की बाज़ी क्यों लगाई ? मुझे किस लिये जीवित रखा ? अब मैं जीकर क्या करूँगा ?"

"इस सवाल का जवाब, मुबारक, मैं दूँ, या तुम दोगे ? तुम्हें जीवित रखने का धर्मकर्त्तव्य मेरा था, मैंने उसका पालन किया। अब जीकर क्या करना चाहिये, यह जानो तुम और जाने तुम्हारी जवानी। वैसे मुझे, इस सवाल का जवाब क़ठिन प्रतीत नहीं होता !"

"नायक, ज़िन्दगी में जीने के लिये जो कुछ था—जो कुछ माया, ममता, मोहब्बत थी, उस सब को मैं खो चुका हूँ ! मुझे जीवित रखने के लिये तुमने बहुत बड़ा जोखम उठाया है, मुझे तुम्हारी इस लाभहीन, अर्थहीन जोखम को देखकर ग्लानि उत्पन्न हो रही है, रंज हो रहा है, अफसोस हो रहा है। मुझ-जैसे जीवित शव को बचाने के बदले अगर तुम अपनी तरक्की की तजवीज करते, तो, अब तक तुम कहाँ से कहाँ पहुँच जाते !"

"हसन सौदागर के बेटे को ज्यों का त्यों छोड़कर मैं जा सकता हूँ क्या ?"

"अरे, तुम जैसे ईमानदार सेवक दुनियाँ में बहुत कम हैं किन्तु तुम्हारी ईमानदारी से क्या फायदा उठाऊँ ? नागर नायक, मैं तुम्हारी ईमानदारी के बारे में कुछ नहीं कहता फिर भी तुम्हारी यह ईमानदारी मेरे लिये उत्पीडक बन गई ! तुमने मुझे जीवित रखा परन्तु जीकर मैं अब क्या करूँगा ? अगर मुझे तुमने मरने दिया होता तो, मेरी जिन्दगी के साथ साथ मेरे कलेजे में जलनेवाली आग भी बुझ जाती। यातना सहने के लिये लम्बा जीवन सामने न रहता ! अब मैं क्या करूँगा ?"

"मैं जानता था इस वक्त तुम्हारी अक्लमन्दी बहरी हो गई है, इसलिये तुम्हारी जगह यह विचार भी मुझे ही करना पड़ेगा। एक तरुण व्यक्ति जीकर क्या करता है, यह तुम मुझे आज पूछते हो, कल नहीं पूछोगे।"

"आज तो मैं यही सोचता हूँ नागर नायक, अगर यह मेरा शरीर हाथी के पैरों के नीचे कुचल दिया जाता तो और कुछ नहीं तो जिन्दगी भर मलिक फिरोज के सपनों में मैं आया करता।"

"स्वप्न की बात को किसने जानी है ? और फर्ज करो, उसे स्वप्न भी आएं तो उससे तुम्हें क्या लाभ ?"

"यों भी कौन-सा लाभ होने वाला ?"

"तुम्हारे वालिद के नाम पर जो कलंक लग गया है, उसे तुम्हें धोना है। तुम्हारी प्रेयसी तुमसे छीन ली गई है, उसे लौटाना है। तुम पर और तुम्हारे खानदान के नाम पर जो धब्बा लग गया है, उसे धोकर, उसका पूरा बदला लेना है। अरे एक जवानी या एक ज़िन्दगी की क्या बिसात, दो दो जवानियों और ज़िन्दगियों का काम तुम्हारे पास में है !"

मुबारक चुप रहा।

हाथी समगति से अपना पंथ पार करता जा रहा था। ये लोग कहां जा रहे थे, जाकर क्या करनेवाले थे, इस ओर मुबारक का तनिक भी ध्यान न था। एक घड़ी, दो घड़ी, चार घड़ी मुबारक चुप रहा।

और उसके बाहर का मौन उसके भीतरी मन्थन का रसायन मानो उसके मुंह पर मलकर एक नई चमक दे रहा था। उसके भाल पर एक नयी चमक आ गई थी। उसकी आँखों का विषाद एक अर्द्धविक्षिप्त अग्नि में परिवर्तित हो गया था। उसके ओठ खंडित प्रतीत होते थे और सूखे भोजपत्र के समान कठोर बन गये थे। उसके चेहरे पर भोजपत्र का सूखा बदामी रंग छा गया था। उसके चेहरे की हड्डियाँ मिट्टी की न रहकर फौलाद की बन गई थीं। बड़ी देर तक वे रास्ता काटते गये। कावेरी के तट पर वे हाथी से उतरे और उसे जल क्रीड़ा के लिए छोड़कर एक ओर बैठ गये !

नदी के किनारे बैठकर चार आदमियों ने नाश्ता किया। शेष दो एकदम चुप थे।

मुबारक ने कहा—"नागर नायक, तुम्हारा एहसान तो मैं भूल गया। मुझ पर दुगुना एहसान है तुम्हारा। मुझे तुमने बचाया और मेरी नौजवानी को सुशोभित करे, ऐसी राह दिखाई। अब जरा मुझे यह तो बताओ, तुमने अपने इस अपार साहस को कैसे सफलीभूत बनाया?"

"इसमे कई कठिनाइयाँ थीं और नहीं भी थीं। एक ओर काम सरल था, एक ओर कठिन था। कठिन था—फाँसीघर के हाथी के असली महावत को अपने रास्ते से हटाने का, वह भी पूरा हुआ।"

"किस तरह?"

"इसके लिए अगर तुम किसी के कृतज्ञ बनना चाहो, तो बनो कर्नाटकी आनंदी के। उन्हीं ने यह काम अपने हाथ में लिया था।"

"उन्होंने मेरे लिये इतना कष्ट क्यों उठाया?"

"तुम्हारे वालिद की इज्जत बचाने के लिये और एक निर्दोष नौजवान को फाँसी के फन्दे से सुरक्षित रखने के लिये, कुछ करने की उनकी इच्छा थी। जब हम वहाँ पहुँचे—सरकारी महावत को पालतू कुत्ता बना लेने में कितनी देर लगती? बस, उस महावत को मैंने मार डाला, आज उसकी लाश हाथीखाने की घास के नीचे सड़ रही होगी। शायद अब किसी की नजर उस पर पड़ जाय। हाथियों का तो मैं जानकार हूँ ही। हमने हाथीखाने का एक हाथी लिया, मैं महावत बना और....हम यहाँ तक आ पहुँचे।"

"अब?"

"आगे चलो। आगे जाकर देखा जायगा।"

नागर नायक ने सीटी बजाई और हाथी अपनी वन और जलक्रीड़ा छोड़कर चला आया। चारों जन उस पर सवार हो गये।

अब हाथी ने कावेरी नदी में प्रवेश किया। नदी के वेगवन्त प्रवाह में तिरछा और तिरछा तिरने लगा। अपनी सूँड़ को जयध्वज के समान ऊँची

उठाकर, चार का भार उठाये वह इस भयंकर नदी के पार सरलता से तैर निकला।

तेजी से वे आगे बढ़े। पर्वतमालाओं और निर्झरों के बीच से निकलते हुए आगे और आगे चलते गये।

शाम हुई। हाथी की अथक और अभंग सवारी करने से उनके शरीर में पीड़ा हो रही थी। हाथी की पीठ की उछाल का साथ उनके शरीर की एकतानता नहीं दे पा रहा थी। अब तो देह की उछाल का मेल, हाथी की पीठ की उछाल से टूट टूट जाता था। अब उनकी रीढ़ खम्भ पर जैसे कोई हथोड़े की चोट मार रहा था।

दिन के ढलते हुए प्रहर में सूर्य की अस्तमान किरणों के प्रकाश में, दूर दूर उन्हें एक ऊँचा पर्वत दृष्टिगोचर हुआ और वे उसी की ओर आगे बढ़े।

ज्यों ज्यों निकट पहुँचते गये, त्यों त्यों उन्हें मालूम हुआ कि दूरी से जो एक पर्वत प्रतीत होता था, वास्तव में वह मिट्टी की एक बहुत बड़ी दीवार थी। और निकट पहुँचने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि मिट्टी की अखंड दीवार दरअसल एक बहुत बड़ा दुर्ग है!

यह दीवार भी अभिमन्यु के चक्रव्यूह-सी प्रतीत होती थी। उसमें प्रविष्ट होने का मार्ग टेढ़ा-मेढ़ा और चक्करदार था। दीवार के पास पहुँचने के बाद यह भी ज्ञात हुआ कि यह तो सात सात दीवारों और चक्रव्यूहों से सुरक्षित दुर्गराज है!

निकट पहुँचने पर, भीतर जाने के मुड़े हुए मार्ग पर उन्होंने सैनिकों की एक टुकड़ी देखी।

उस टुकड़ी को देखकर हाथी खड़ा रह गया।

सैनिकों ने मुसाफिरों को ध्यान से देखा। महावत की ओर ध्यान से देखा और फिर तो, सावधान होकर अभिवादन किया। हाथी अन्दर गया। पद पद पर सैनिकों की सशस्त्र टुकड़ियाँ मिलीं और प्रत्येक टुकड़ी के सामने हाथी रुके, सैनिक सिर झुका कर प्रणाम करें और हाथी आगे बढ़ गया।

आखिर घाणी के बैल की तरह, गोल-गोल रास्ते काटकर उन्होंने तीन दीवारें पार कीं। तब, मानो किसी मेघवन्त आकाशावस्था का मेघाडम्बर धरती पर उतरा हो, वैसे काले पाषाण की बनी गगनस्पर्शी एक दीवार दिखाई दी।

उसकी ड्योढ़ी के द्वार पर दोनों ओर सशस्त्र सैनिक खड़े थे। उन्होंने ऊँचा देखा और तुरन्त अपने सिर झुका लिये। स्वयंचालित-से हाथ उनके जुड़ गये।

दरवाज़ा पारकर हाथी भीतर आया। पीछे पीछे बाहरी सैनिकों का नायक प्रतीत होनेवाला एक सैनिक दौड़ता हुआ आया और उसने अमांराम जैसे एक अधिकारी के कान में कुछ कहा और अमांराम अपना काम वहीं छोड़कर दौड़कर हाथी के निकट आया।

हाथी के चारों सवार नीचे उतरे।

अमांराम ने नीचे झुककर नागर नायक के चरणों का स्पर्श किया। दोनों हाथ जोड़कर कहने लगा—"प्रभो, महामात्य माधव देव पधारे हैं और आपकी चिन्ता कर रहे हैं।"

"मैं अभी उनकी सेवा में उपस्थित होता हूँ। तब तक इन देवीजी के विश्राम का प्रबन्ध कीजिए।"

नागर नायक ने चारों में से सबसे छोटे प्रतीत होनेवाले मुसाफिर की ओर संकेत किया।

"देवीजी ?...देवी ?" मुबारक चुप न रह सका। उस मुसाफिर ने अपना नकाब हटाया और मुबारक की फटी हुई आँखों के सामने, नकाब के भीतर से एक सुन्दर रमणी-वदन प्रकट हुआ।

तब...अपने कल्याण की सहायिका...हाथी के पैरों के नीचे से मुझे बचानेवाली...दौड़ते हुए हाथी के बाजू में उड़ती हुई सीढ़ियों पर चढ़नेवाली....एक युवती...!

"देवि !...देवि ! मेरे प्राणों की रक्षा करनेवाली, आप का शुभ नाम ?"

"मेरा नाम ?...मेरा नाम कर्नाटकी आनंदी !"

"और नागर नायक ! उनकी तारीफ....यह कौन सा दुर्ग है ?....मैं कहाँ हूँ...आप कौन हैं ?"

"यह विजयनगर साम्राज्य का दुर्गराज चन्द्रगुट्टी है और जिसने नागर नायक के रूप में आपकी सेवा करना स्वीकार कर अपना कर्त्तव्य किया है, वे मदुरा विजय के लिये प्रस्थानित विजयनगर-साम्राज्य की प्रचण्ड सेनाओं के दंडनायक, विजयनगर-साम्राज्य के महामंडलेश्वर राय बुक्काराय के छोटे भाई, स्वयं कम्पनराय हैं !"

१८ ★ चन्द्रगुट्टी का अजेय दुर्ग

मुबारकखान के लिये चन्द्रगुट्टी के दुर्गपाल के आतिथ्यसत्कार में कोई कमी न थी। एक विशाल सरोवर के तट पर एक सुन्दर आवास बना था। एक रसोइया और दो सेवक उसकी सेवा में थे। भोजन गरमागरम और सभी रसास्वादनों से पूर्ण, मिलता था। उसके आवास की चाँदनी पर एक पलंग बिछा था और उस पर पंखियों के कोमल-पंखों से बनी सुकोमल सेज बिछी थी। आस-पास ऊँचे-ऊँचे वृक्ष थे। सम्मुख विशाल सरोवर था, जहाँ सदैव मन्द मन्द शीतल पवन बहता रहता।

ठेठ वेणुगंगा और कावेरी के पार से पर्णानदी तक, प्राणरक्षा की प्रलंब दौड़......उसमें भी हाथी की सवारी......और वह भी बिना कुछ विश्राम लिए, बिना कुछ खाये-पिये ! लोग तो पालकी की सवारी की थकान की फरियाद करते हैं, उन्होंने भला, घोड़े पर कभी सवारी न की होगी ! घोड़े पर विराम लिए बिना लम्बी सवारी करनेवाले लोगों ने कभी ऊँट की सवारी का मज़ा न उठाया होगा। ऊँट पर चढ़ कर जो लोग अविश्रान्त-प्रवास की फरियाद करते हों, उन्होंने कभी हाथी की सवारी की न होगी। हाथी की लम्बी मुसाफिरी के समान थका देनेवाली दूसरी कोई चीज़ इस संसार में उत्पन्न नहीं हुई, और न उत्पन्न होगी।

इसलिए दो दो दिन और दो दो रात, कहीं विश्राम लिए बिना, केवल हाथी के लिए ही शक्य, ऐसी यह मुसाफिरी....अपनी चाल को तनिक भी धीमी किये बिना ही हाथी पानी पी सकता है...आहार कर सकता है....

और विपत्ति के समय आठ आठ दिन तक, प्रतिदिवस आठों पहर समान गति से दौड़ सकता है...!

ऐसी अथक यात्रा...और उसके पश्चात् प्राप्त इतना सुन्दर आवास.... इतना सुन्दर भोजन....इतना सुन्दर शीतल समीर....ऐसी सुकोमल सेज... तब भी मुबारक को नींद नहीं आई।

उसका चित्त मानो किसी भड़के हुए घोड़े पर सवार हो गया था! उसका अपना नौकर...स्वयं जिसे अनेक बार क्षुद्र सम्बोधनों से बुलाया होगा, दुत्कारा होगा, वही विजयनगर साम्राज्य की सेना का दंडनायक निकला!... वही विजयनगर के महामण्डलेश्वर राय बुक्काराय का भाई कुमार कम्पन-राय निकला!

यह विस्मय वस्तु यदि यहीं समाप्त हो जाती, तब भी ठीक था, किन्तु उसके वालिद कहा करते थे कि नागर नायक उनका अपना वफादार नौकर है...यह कैसे हो सकता है? कैसे सम्भव हुआ होगा? क्या मरहूम वालिद भी......

उसके वालिद का इन्तकाल हुआ...अवसान क्या वे पा गये? यही कहो कि मलिक फिरोज़ ने उन्हें धोखे से मार डाला...मलिक फिरोज़, जिस पर उसके वालिद के अनेक उपकार थे, वही एहसानफरामोश फिरोज़....वह एहसानशाह की खानदान का था...परन्तु उसमें एहसान जैसा कुछ न था! वह तो सिर्फ एहसानफरामोश था। उसने बेचारे सैयद मंजूरशाह को दगा दिया...भोले भाले सैयद को दगा दिया...उसने अपने वालिद को दगा दिया! ...सिर्फ वह दग़ाखोर आदमी है!!

इसी एहसानफरामोश ने उसे रोशन से जुदा कर दिया है। मानो सात-सात मुल्कों के सात-सात समुन्दर उसके और रोशन के बीच में आकर खड़े हो गए थे! इस सारे षड्यंत्र के एक-एक बिंदु का कारण एहसानफरामोश होने पर भी अपने-आपको एहसानशाह कहलानेवाला फिरोज ही था! उसी की धोखेबाजी ने इस समस्त आपदा की रचना की है!

मुबारक के नौजवान दिल में आग लगी थी! यह आग नागरनायक

अथवा कुमार कम्पनराय जैसी एक नहीं, अनेक विचित्रताओं से भरी थी। यह आग कर्नाटकी आनन्दी के चमत्कारी संसार की ज्वालाओं को पीछे छोड़ देने में समर्थ थी।

मदुरा की राजनीति, उसके वालिद की व्यापार नीति, कर्नाटकी की संगीत-नृत्य नीति की थाह मुबारक के विचित्र विस्मय ले सकें या न ले सकें, इसकी मुबारक को तनिक भी चिंता नहीं थी। उसके विस्मय अथाह धाराओं पर तैर सकें या नहीं, इसकी भी उसे चिंता नहीं थी।

जिस सेज पर सोने के लिए बहिश्त की हूरें ललचा जाएँ। अप्सराएँ जहाँ रहने के लिए आकर्षित हों, वहाँ, उसी सेज पर मुबारक को नींद नहीं आ रही थी और हृदय में धूएँ के गुब्बार उठ रहे थे। वन में दावानल लग जाने पर, जिस प्रकार सारा वन धूए से भर जाता है, उस प्रकार उसके रोम-रोम में दावानल सुलग रहा था और उसके मस्तिष्क एवं उसके हृदय में धूएं के गुब्बार घुसे जा रहे थे!

उसके हृदयानल का केंद्रबिंदु यही वेदना थी कि वह अभी भी जीवित था, जब कि उसके पिता का देहान्त हो चुका था। और उसकी रोशन भी उससे दूर चली गई थी! अगर रोशन मर जाती तो मुबारक को उतनी वेदना न होती, जितनी उसके जीते-रहते हो रही थी! उसके वालिद उससे दूर थे, मगर वे मर चुके थे और रोशन उससे दूर थी और ज़िंदा थी!

सेज पर लेटे-लेटे उसका मन, इसी केन्द्रबिंदु के आस-पास मँड़रा रहा था। कितना बड़ा फरेब!....जिसकी उसने पूरी नमकहलाली से सेवा की, खिदमत की; सौदागर का बेटा होने पर भी जिसके लिए सिपाहगिरी स्वीकार की—वही आदमी...वही नापाक आदमी...इस तरह की साज़िशों की रचना करता है!!......

इकबाल की लूट में रोशन के वालिद मारे गए...और उस पर हत्या का यह आरोप लगाया गया और वह भी खुद फिरोज़ के मुंह से...! उस पर चलाया गया मुकदमा....रोशन की उपस्थिति में....रोशन अनवरी बेगम के पास बैठी थी....और अनवरी के धंधे सारे मुल्क में कौन नहीं जानता?.... फांसी की वह सज़ा?...फांसी-घर में रोशन की मुलाकात...रोशन के

वालिद के कत्ल का इल्जाम उसके सिर पर और अपने बेटे को मौत की सजा होने का समाचार सुनकर, उसके आघात से मरनेवाले वालिद....ये भयंकर घटनाएँ बड़ी तेज़ी से मुबारक की नींद को हराम करने लगीं !

वह सम्पूर्ण शय्या मानो मुबारक के लिए अग्निसेज बन गई—मानो उस सेज से ज्वालाएँ फूट रही थीं !

मुबारक अपनी सेज से खड़ा हो गया। आकर वह छत की पाल पर बैठा। मंद-मंद पवन की लहरियाँ वृक्षों को भेद कर, आ रही थीं और उनकी धीमी साँसें मानो रोशन की अंतिम मुलाकात के प्रत्येक बोल को जीवन दे रही थीं और साँसों में झंकार भर रही थीं !

सामने विशाल सरोवर था और उसके घने नीले जल पर मंद पवन की लहरियाँ उठ रही थीं। उनकी सुमंद कल्लोल-लीला में उसे अपने वालिद की भयंकर मृत्यु की अंतिम आह सुनाई देती थी !

ऊँचे-ऊँचे तरुवर सरोवर के चारों ओर बना पाल के किनारे-किनारे खड़े थे। आकाश से झरनेवाला किरणहीन तेज, धरती पर छाया अंधकार, सरोवर का चमकता हुआ नील श्याम पट, तट के तरुवर—ये सभी मानो भाँति-भाँति के विचित्र आकार-प्रकार धारण कर रहे थे !

और एक एक आकार में उसे मानो मलिक फिरोज की अनेक परछाइयाँ दिखाई देती थीं। मुबारक खान के कान मानो बहरे हो गए थे। उसकी आँखें जैसे फटी रह गई थीं। उसका चेहरा ऐसा लगता था जैसे किसी आदमी ने भूल से हलाहल जहर पी लिया है !

सुबह जब एक गुलाम मुबारक को जगाने के लिए आया, तब उसने कल के थके हुए मेहमान को देखा—जैसे कब्र से कोई जीवित कंकाल निकल आया है ! मुबारक के केश खड़े हो गए थे। उसका चेहरा भोजपत्र की तरह उजड्ड और भावहीन बन गया था। उसकी आँखों में मानो बाघ की खून की प्यास आकर समा गई थी। उसके होठों और उँगली के नखों पर दाँत और मुट्ठी की भयंकर भींस से खून के कतरे फूट आए थे। मुबारक ऐसा लग रहा था जैसे अकाल मृत्यु से मरा हुआ आदमी, अपने दुश्मन से बदला लेने के लिए कब्र में से वापस उठकर आ गया है !

भयानक बैर, अपने खानदानी पिता की जान के ग्राहक...अपनी मँगेतर के हाथ और दामन के चोर....अपने जीवन की तमाम उम्मीदों, और अभिलाषाओं के चोर मलिक फिरोज़ से वैर और बदला लेने की भावना उसके दिल में दूसरा जीव बनकर आ बैठी थी।

पालतू घोड़ा जब बिफर जाता है, तब उसके मुँह की शान बदल जाती है, इसी तरह मुबारक के चेहरे की शान बदल गई थी और उसे देखकर, गुलाम कुछ रुक गया था। यहाँ भाँति-भाँति के अतिथि आते थे और उनके चेहरों में रातोंरात पलटी हुई सूरतों को देखने का अभ्यासी गुलाम भी मुबारक की बदली हुई सूरत देखकर, स्तब्ध रह गया।

"जी....सुबह का नाश्ता!" गुलाम ने बाअदब पूछा।

"मुझे कुछ नहीं चाहिए।"

"जी, स्नान....?"

"जी, सैर के लिए जाएँगे?"

"नहीं जाऊँगा।"

"जी तो....तो"...

मुबारक ने उसकी तरफ देखा। उसकी आँखों से गुलाम अधिक बेचैन हो गया।

"जी, दुर्गपालजी ने कहलाया है—आप नित्य कर्म से निपट जाएँ तो...." गुलाम ने हाथ जोड़कर कहा।

मुबारक ने वाक्य पूरा न होने दिया। वह बीच में ही तनिक आवेश में बोल उठा—

"नित्य कर्म नहीं रहा। अब मेरा सुबह से शाम तक सुबह-दोपहर-शाम-रात और दिन एक ही नित्य कर्म है और मैं उसमें से कभी भी फारिग नहीं हो सकूंगा!"

"तो दुर्गपाल जी के दोरंगी से कहूँ..."

गुलाम ने क्या कहा यह भी मुबारक ने न सुना। सुनने को तैयार तक न हुआ। वह तो अपने अंतर की आग के पैदा किए धूएँ में लिपटा हुआ अपने मन के भीतर और भीतर उतर गया!

सुलतान फ़िरोज़ एहसानशाह की शैतानी सूरत को अपने मन में रचने के लिए मुबारक भीतर और गहरा उतर गया।

कुछ देर हुई होगी कि एक ऊँचा-लम्बा और पहलवानी बदन का एक आदमी वहाँ आया। उसकी पोशाक सादी थी। मलमल का घुटनों तक पहुँचनेवाला कुर्त्ता और कर्नाटकी सलवार, जिसमें कई सिलवटें पड़ी हुई थीं—वह पहने हुए था। उसके सिर पर चौड़ी लाल किनारीवाली, छः सात हाथ लम्बी, मलमल की पगड़ी बँधी थी। पगड़ी के रूप में बहुत छोटा और टोपी के तौर पर बहुत बड़ा, उसका शीश मुकुट था। इस मुकुट पर दो छोटे पंख और उसके बीच में एक बड़ा-सा हीरा सुशोभित था। हीरे के आस-पास लाल मानिक जड़े थे। इनके बाद नीलम की पतली रेखाएँ थीं। स्वर्ण वराह से दुगुनी गोल, सच्चे रत्नों की यह राजकीय मुद्रा इस आगंतुक व्यक्ति को बहुत बड़ा, उच्चाधिकारी घोषित कर रही थी।

आगंतुक अधिकारी को लगभग भूमि तक झुक-झुककर प्रणाम करने के उपरान्त उस गुलाम ने मुबारक से कहा—

"खान साहब, दुर्गपालजी पधारे हैं!"

गुलाम वह चला गया।

मुबारक की अंतर्मुख आँखें बाहर आईं—उठकर उसने आगन्तुक का स्वागत किया—

"आप स्वयं ने इतना कष्ट किया? मुझे आज्ञा दी होती।"

"अतिथिजी, मैं चद्रगुट्टी का दुर्गपाल विनयादित्य चालुक्य हूँ। मुझे महामात्यजी का आदेश है कि जब आप को प्रातः कर्मों से अवकाश प्राप्त हो, तब मैं आपको उनके पास ले जाऊँ। इसलिए मैं घोड़ा लेकर, आया हूँ। अगर आपको वह अनुकूल प्रतीत न हो, तो पालकी मँगवा दूँ।"

"जी नहीं। अगर सिपाही को घोड़ा ही अनुकूल न होगा तो, और क्या होगा? मैं तो ठहरा सिपाही और सौदागर—दोनों। इसलिए घोड़ा तो मेरा श्वास और प्राण है।"

"यदि आपको अवकाश हो तो?......"

"जी हाँ, चलिए। महामात्यजी को अधिक देर तक प्रतीक्षा कराना अनुचित है।"

आवास के बाहर प्रांगण में एक नौकर दो घोड़ों की रास थामकर खड़ा था। विजयनगर साम्राज्य के घोड़े अद्वितीय हैं, यह मुबारक ने उन घोड़ों को देखकर सोचा। उसके वालिद घोड़ों के मशहूर सौदागर थे। वे दूर-दूर से असली घोड़े मँगवाते। इसलिए मुबारक को भी घोड़े की परख थी।

दुर्गपाल के घोड़े कम से कम एक-एक हज़ार स्वर्ण वराह के तो अवश्य होंगे। उनकी पतली गर्दन, पतला मुँह, पतले पर, मजबूत पैर, छोटे पतले कान—कमल के फूल में मानो किसी ने वज्र का सार भर दिया है, ऐसे घोड़े कि दिल्ली का सुलतान देखे, तो उसका दिल जल जाए......!

मुबारक ने सोचा—अगर ऐसा एक घोड़ा मेरे पास हो तो पंख निकल आएँ और मलिक फिरोज यह जान ले कि उसके खुद के जगाए वैर का बदला कैसे लिया जा सकता है। मलिक फिरोज जो मेरी दृष्टि में कभी मदुरा का सुलतान नहीं बन सकता, जो अपनी तथाकथित तख्तनशीनी और सल्तनत के कारण मेरे ईमान को माँग या खरीद नहीं सकता। वह तो सिर्फ दगाबाज, द्रोही और बेईमान है। उसने मेरे वालिद का खून किया है। और वही रोशन का चोर है। वही मेरे दिल के अरमानों का कातिल है!

और एक भी शब्द बोले-बिना मुबारक, आगे-आगे मौन चलते हुए दुर्गपाल विनयादित्य के पीछे-पीछे चलता रहा। दोनों घोड़े धीरे-धीरे चल रहे थे। सरोवर के किनारे-किनारे, घास के मैदानों के बीच लाल मिट्टी वाली पगडंडी पर बढ़ रहे थे। सरोवर तट प्रदेश में ऊँचे-ऊँचे वृक्षों की हार-माला थी, जैसे इन वृक्षों ने सरोवर की तटस्थली को मजबूती से पकड़ लिया है।

अब चौड़ा रास्ता आ गया, जिस पर आठ-आठ घोड़े एक साथ चल सकते थे। यहाँ भी लाल मिट्टी पर अच्छी हरी घास उठ रही थी। और घोड़े मानो लाल मखमल की बिछावन पर चल रहे थे। उनकी टापों से तनिक भी आवाज़ न उठ रही थी। पगडंडी के उस ओर भी ऊँचे वृक्षों की पंक्तियाँ थीं।

मुबारक को ऐसा आभास हुआ मानो उनके घोड़े किसी अंतहीन हरे, भूतलमार्ग से निकल रहे हैं अथवा पैरों-नीचे की बिछावन लाल-लाल, हरे-हरे, सूर्य-किरण से चमत्कृत हीरों से जड़ी पड़ी हैं !

ऊपर चलित प्रतीत होता गगनाम्बर, एक ओर चलित सरोवर और चारों ओर प्रसरित मौन प्रशांति ने क्षण भर के निमित्त मुबारक के मन की ज्वाला को शमित कर दिया। अब इस रमणीयता के अवगुंठन के पीछे स्थित वज्रगढ़ पर उसकी आँखें लग गईं।

इस वज्रगढ़ की दीवारें, एक भीतर एक यों तीन-तीन थीं, और जैसे तीन-तीन बालक एक दूसरे के बीच हाथ बढ़ाकर खेल रहे हों इस प्रकार ये परस्पर गूँथे हुए प्रतीत होते थे। अन्तिम तीसरी दीवार, जो भीतरी भाग में थी, अनुमानतया पचास हाथ ऊँची और पाँच योजन की गोलाई में थी।

कोरी मिट्टी से बने हुए इन तीन परकोटों के अन्दर पचास हाथ चौड़ा मधुर जल का एक सरोवर था। पत्थर की चार भीतरी दीवारों और मिट्टी की प्रथम तीन दीवारों के बीच में वर्तमान यह सरोवर एक विशाल मधुर जल पूरित खाईं की कमी की पूर्ति करता था।

पत्थर के चार चक्रों में, पहले और दूसरे चक्र के बीच में हरी-हरी निकुञ्जमालाएँ थीं। दूमरे और तीसरे चक्र के बीच में पशु-पक्षी, और कतिपय पिंडारी रहते थे। पहले और दूसरे चक्र का पट बहुत चौड़ा था और इसमें चारों ओर सेना की छावनी थी। पहले चक्र के बीच में युद्ध-सामग्री, शस्त्र सामग्री और मणिकग्राम आदि थे। इसी प्रकार मिट्टी की तीनों दीवारों के बीच में, दोनों पड़ावों में सेना का बड़ा विस्तार था। बीच की दीवार की खाली जगह में खेत थे जिनमें दुर्ग के सैनिक और नेताओं के लिए अन्न उत्पन्न किया जाता था !

हरी-भरी जमीन, शेष संसार से इसे अलग कर लेने को व्याकुल ऊँची-ऊँची पर्वतमालाओं-जैसी दुर्ग की दीवारें, वृक्ष-राजियों में कलरव करते पंछी, गोचरों में चरते हुए पशु, शांत संतुष्ट निनाद और दूर-दूर से सुनाई देने वाला मानव कंठस्वर—यह सब मनुष्य के मन पर छाई हुई जगत् की

आधि, व्याधि, उपाधि, बैर, वासना और क्षुधा को दूर कर आनंद पर्यटन की ओर उन्मुख करता था।

क्षण-भर के लिए मुबारक को गहरे संतोष और शांति के सिवाय दूसरा कुछ स्मरण न रहा। उसे आभास हुआ कि यदि मनुष्य इस धरती पर कहीं अनन्त शांति प्राप्त कर सकता है तो, यही कर सकता है।

सरोवर के किनारे बैठने के लिए पाँच-साँतसौ हज़ार कदम की दूरी पर छतरियाँ बनी हुई थीं!

ये लोग आगे और आगे बढ़ते गए। सरोवर के उस पार, पथरीली दीवार में एक द्वार दिखाई दिया और उस द्वार के सामने सरोवर को लाँघने के लिए लकड़ी का पुल बना हुआ था।

इस मजबूत पुल पर लोग आ-जा रहे थे। मुबारक ने सोचा कि उन्हें भी इसी पुल से होकर मुख्य दुर्ग के भीतर प्रविष्ट होना है।

किन्तु दुर्गपाल पुल की ओर जाने के बजाय आगे बढ़ता गया। मुबारक उसके पीछे-पीछे चला। कुछ दूर जाने पर, मुख्य मार्ग से न पतली, न मोटी एक पगडंडी अलग फट निकली। इस स्थान पर बारह दोरंगियों का पड़ाव था। उनके निकट से निकलकर मानो वे किसी हरी गुफा में प्रविष्ट हुए। दोनों ओर बड़े-बड़े पेड़ खड़े थे—पीपल, शीशम और सागौन के पेड़ सामने खड़े एक दूसरे की डालियों को चूम रहे थे और पगडंडी पर अंखड छत्र की छाया करते थे। पगडंडी किसी ब्राह्मण के सिर पर पड़ी हुई जनेऊ के समान प्रतीत होती थी। उसके सामने पेड़ों की घनी घटाएँ दृष्टिगोचर होती थीं।

ये लोग घटाओं के निकट आए। मुबारक ने देखा कि विशाल वृक्षों के नीचे हरी-हरी घास फैली हुई थी। वहीं एक चौरस चबूतरे पर सागौन के चार पतले स्तम्भों पर पत्तों और बेलों से एक कुटिया को आच्छादित किया गया था। परस्पर गुथी हुई लतिकाएँ सघन छत्र-छाया बन गई थीं और रंग-बिरंगी पुष्पावली से छत्र रंगमंडप का भ्रम उत्पन्न करता था।

मुबारक को बड़ा अजीब लग रहा था कि चले तो थे विजयनगर साम्राज्य

भीतर घास की पतली सलाइयों से बनी एक रंगीन चटाई बिछी हुई थी। बाँस के चौखटे पर परस्पर गुंथी हुई लताओं की ही दीवारें थीं। उन पर खिले हुए रंग-बिरंगे, लाल, पीले, सफेद फूल चारों ओर से महक रहे थे। ऊपर समुद्रशोष के चौड़े पत्तों से छत्र छाया गया था।

नीचे लाल मिट्टी से लैपन की हुई भूमि थी उस पर किसी सुघर और कलावंती होलेय नारी की पाँचों उँगलियों का अर्धचन्द्राकार रांगोली चित्र बना हुआ था। एक चटाई पर छोटी गद्दी थी और उसके पीछे एक तकिया सजा हुआ था। गद्दी पर असली नीलगिरि का व्याघ्रचर्म बिछा था। तकिए पर चीते का चर्म ढँका था। सम्मुख एक छोटा सा पटल रखा था। पटल पर लेखनी थी और मसिपात्र भी था। उसमें गहरी काली मसि भरी थी। और उसके पास में कई लेखनियाँ रखी थीं। उनके निकट भोजपत्र के कई लिखे, और अनलिखे पत्र रखे थे। गद्दी के दोनों ओर भोजपत्र की पोथियों पर पोथियाँ और उन पर भी पोथियाँ रखी थीं। कोने में पानी की एक सादी कलशी रखी थी। उस पर पीतल का सपाट ढक्कन था, जिस पर कलशी में से जल भरने के लिए छोटा-सा लोटा रखा था। उसके पीछे बाँस की बनी हुई वंजी पर पंचधातुओं के दो-चार गिलास रखे थे।

इन सभी उपकरणों पर मुबारक की दृष्टि गई और लौटकर गद्दी पर बैठे हुए आदमी पर पड़ी। घुटनों से ऊपर धोती चढ़ाए, एक गोरा, पतला-दुबला किंतु लम्बे कद का व्यक्ति बैठा था, उसके गौर स्कन्ध पर श्वेत उपवीत पड़ा था। पोथी का नाम था—'माधवधातुवृत्ति !'

दुर्गपालजी ने उसे कहा था कि भीतर महामात्यजी उसकी राह देख रहे हैं, लेकिन भीतर आने पर इस कुटीर में इस पोथी घसीटनेवाले व्यक्ति के सिवाय मुबारक को और कुछ न दिखाई दिया।

तब क्या विजयनगर साम्राज्य का महामात्य आचार्य माधव यही है ? एक विशाल साम्राज्य—जिसने तुंगभद्रा से लेकर कावेरी तक के पथक के छोटे-बड़े सैकड़ों दुर्गपालों, नायकों और राजाओं को अपने अन्तर में समा

लिया है, जिसके महोदर में कर्नाटक जैसा साम्राज्य है, समस्त तेलुगु और काम्पिल प्रदेश है, वनवासी हजारी और चोरामण्डल जैसे प्रदेश हैं, होनावर, बादामी, आनेगुण्डी, येनुकोण्डा, द्वारसमुद्र और चन्द्रगुट्टी जैसे राज्य हैं। दक्षिण के इतिहास में यदि बेलगोला और अहिच्छत्र के वीर-वणिक किसी साम्राज्य में विलय हुए हों तो यह विजयनगर साम्राज्य ही है। दक्खन में जैसे गजराज के मृतदेह में सहसा प्राण आ गये हों, ऐसा यह प्रचण्ड विजयनगर-साम्राज्य, दक्खन की तवारीख में पहली ही बार सातवाहन, चेर, चोल, पाण्ड्य, सोलंकी, यादव एक ही छत्र की छाया में एकत्र हुए हैं और सर्व मतमतान्तरों से सर्वोपरि विजयधर्म की स्थापना करनेवाला विजयनगर.... और उसका महामात्य....अनन्त सत्ताधारी, लोकपूज्य, ज्ञानी-पण्डित—सो वह यही है क्या!!

जिसका आवास संगमर्मर के महल में नहीं, जिसकी देह पर रेशम के वस्त्र नहीं, जिसकी सेवा में दास-दासियों की भीड़ नहीं, अरे जिसकी सुरक्षा के लिये सैनिकों की टुकड़ियाँ नहीं, अंग पर जिसके आभूषण नहीं, हाथ में जिसके कोई हथियार नहीं, जिसके मुँह से निकले हुए बोल का हुक्म बजाने के लिये घुड़सवार नहीं, भीतर नामानिगार नहीं, मुंशी नहीं, एक कारकून भी नहीं! अरे जहाँ वजीरेआज़म का पड़ाव हो, तो छोटा-मोटा शहर बस जाता है। प्रार्थियों से लेकर अधिकारियों तक की एक बहुत बड़ी भीड़ खड़ी हो जाती है...कहाँ तो वजीरेआज़म का वह ठाठ और कहाँ यह महामात्य?

—अगर वजीरेआज़म के पास पहुँचना हो तो पहले कारकूनों, सिपाहियों मुंशियों और अफसरों से भरे हुए चार-पाँच कमरे पार करने होंगे; तब भी दीवान के बाहर दोनों ओर सशस्त्र सिपाही खड़े होंगे। पहले वे भेंट के लिये आये हुए व्यक्ति के वस्त्रादि की बड़ी कड़ी जाँच करेंगे, कहीं उसके पास छिपा हुआ हथियार तो नहीं है। और तो और, हमदीन मलिकों और अमीरों की भी तलाशी ली जाती है।

कहाँ तो वह दबदबा! और कहाँ यह महामात्य, जो अपने पास एक ऐसे विधर्मी को आने दे रहा है, जिसके विषय में वह कुछ भी नहीं जानता

है ! और वजीरेआज़म क्या कभी खुद ही कुछ लिखते होंगे ? आजतक नहीं सुना है कि वजीरेआजम खुद अपने हाथ से कुछ लिखता है और वह भी कोई अति निजी पत्र हो, तो हो, लेकिन यह तो राजकाज खूँटी पर टाँग कर लिख रहा है, व्याकरण का एक ग्रन्थ । अरे, वज़ीरों, अमीरों और मलिकों के तो व्याकरण ही विचित्र होते हैं....उन्हें कोई लिखकैर नहीं गया, वे खुद ही उसे अपने दिमाग में पैदा कर लेते हैं और एक यह आदमी है—महामात्य कि पेड़ की छालों की छालें उतार कर लिखे जा रहा है । और अगर यह इन सब पोथों को सिर्फ एक एक बार ही पढ़ लिया करता है तब भी अमात्यकर्म के लिये तो इसके पास समय होना चाहिये ? वह अवकाश, यह कहाँ से पाता होगा ?

मुबारक की आँखों में प्रकाशित विस्मय, मुबारक के चेहरे का विस्मय, इन दोनों विस्मयों को शमन होने का तनिक अवसर देकर महामात्य ने शान्तिपूर्वक पूछा—

"अतिथि, आपके लिये हमारी सेवा और प्रबन्ध पर्याप्त तो है ? आपको कोई कष्ट तो नहीं ?"

१९ ★ 'मैं तैयार हूँ'

महामात्य के प्रेमप्रश्न का उत्तर मुबारक ने दिया—"जी नहीं।" उसकी आँखें मन ही मन में उससे यह मौन प्रश्न पूछ रही थीं—कहाँ तो पहाड़ जैसे कद्दावर और उछलकर घोड़े पर बैठ जाने वाले तुर्क, कि जिनके देहभार से घोड़े भी झुक जाते हैं, और कहाँ विजयनगर के ये दुबले-पतले लोग !...

"आप तो हमारे मँहगे मेहमान हैं।" माधव ने कहा।

"जी मँहगा तो कौन जाने ! लेकिन मेरा हाल तो, मान न मान मैं तेरा मेहमान जैसा है।"

"फिर भी क्या हुआ ? आप हमारे अतिथि तो हैं ही ! कहिये, हम आपके लिए क्या प्रिय कर सकते हैं ?"

"जी, क्षमा करें, मुझे स्वयं भी दण्डनायक कम्पनराय से यही प्रश्न पूछना पड़ा था।"

"उन्होंने आपसे क्या कहा ?"

"उन्होंने बताया कि मेरी समस्या युद्ध-संबन्धी नहीं, राजनीति की है और अवसर मिलने पर इसका समाधान मुझे महामात्य जी से पूछना चाहिये।"

"हाँ, हमारा यही तरीका है। इसीलिये मैंने आपको यहाँ बुलाया, यद्यपि आप थके हुए हैं।"

"जी आपने मुझ नाचीज़ को बुलाया, उसके लिये मैं आपका शुक्र-गुज़ार हूँ। आप न बुलाते तो, मुझे विजयनगर जाना पड़ता।"

"उस हालत में आपको लौटकर यहीं आना पड़ता, हमने एक वर्ष के लिये सारस्वत सत्र निमंत्रित किया है। देश-देशान्तरों के पण्डितजन यहाँ पधारे हैं और तुरुष्क आक्रमणों के कारण विनष्ट हमारे अनेकानेक ग्रन्थों का हम उद्धार एवं प्रतिसंस्कार कर रहे हैं।"

"क्षमा कीजिए, चार ही कोस की दूरी पर आपके सिर पर शत्रु-समुदाय गरज रहा है, फिर भी आपके पास इसके लिये समय है? उत्तर में दौलताबाद का सूबा इस्माईलमुख, पूर्व में तुरुष्कप्रेमी कलिंग का गजपति और दक्खन में मदुरा की सल्तनत! ऐसी हालत में भी आपको ज्ञान और शास्त्रों के सत्र बुलाने का समय मिल सकता है?"

महामात्य माधव ने कहा—"क्या आप हमें तुर्कों की आँखों से ही देखेंगे? आप हमारी हिन्दू परम्परा से परिचित प्रतीत नहीं होते?"

"जी!..."

"देखिए, मैं आपको बताता हूँ: हम ऐसे राजा नहीं हैं जो दिग्विजय के लिये निकलते हैं। हम अपना धर्ममत और अपना शासन दूसरों पर लादने के लिये नहीं निकले हैं। हमने इस राज्य की स्थापना अपनी संस्कृति और अपने संस्कार के अभेद्य दुर्ग के रूप में ही की है। यदि हम इसकी संस्थापना के मूल उद्देश्य को ही भूल जाएँग तो हमारे अस्तित्व की सार्थकता ही क्या रहेगी? और फिर जिन राजाओं और जिन नायकों ने अपने अपने राज्य और भू-भाग—एक महासाम्राज्य की स्थापना के लिये प्रदान कर दिये हैं और विलयन स्वीकार किया है, उनके त्याग का अर्थ ही क्या रह जाएगा? कई लोग, कई तुरुष्क, तुरुष्क सल्तनत को सामने रखकर ही सोचते हैं कि उस सल्तनत के प्रतिरोध में हमने इस साम्राज्य की रचना की है और हमारे विजयधर्म राज्य को भी वे एक साम्राज्य मानते हैं। किन्तु हमें अपनी सत्ता बढ़ाने की भूख नहीं है, न किसी अन्य प्रदेश को पचाने की ही हमारी भूख है। हमारे आचार, विचार, परम्परा और संस्कार के पलने के समान इस

प्रदेश पर हम अपना ही आधिपत्य चाहते हैं किन्तु किसी दूसरे का विनाश करने के लिये नहीं, क्योंकि हमारी संस्कृति की रचना ही नाश को रोकने के लिये हुई है !"

"तब आप मदुरा को किस में मानते हैं ?"

"तुंगभद्रा से लेकर सेतुबन्धरामेश्वर तक और पूर्व तथा पश्चिम समुद्र तक हमारी विद्या, हमारे संस्कार और हमारी परम्परा के पुण्यावशेष और संस्मरण विद्यमान रहे हैं। इसलिये मदुरा का निर्माण तो विजयनगर साम्राज्य के अंतर्गत है।"

इतनी स्पष्ट और प्रत्येक शंका को निर्मूल करनेवाली, स्वस्थ स्वर में उच्चरित वार्त्ता के लिये मानो मुबारक तैयार न था। व्यवहार में चाहे जितना भावहीन और कठोर बननेवाला, किन्तु मीठी-मीठी और मुलायम जबान से बात न करने का अभ्यस्त, तुरुष्क सौदागर का बेटा क्षणभर के लिये मूक रह गया !

महामात्य बोले—"शायद आपको यह बात कुछ अधिक स्पष्टतायुक्त प्रतीत हो और आप सोचते होंगे कि आपको यह गुप्त बात न बतलानी चाहिए और मदुराई सल्तनत के कारण हमें जो असुविधाएँ और आपदाएँ मिली हैं उनकी फरियादों और शिकायतों की ओट में हमें मदुराविजय की अपनी इच्छा को छिपा लेना चाहिये। लेकिन ऐसी राजनीति में हमारा विश्वास नहीं है, क्योंकि हम छिपकर किसी पर प्रहार नहीं करते, करेंगे भी नहीं। हमारे संस्कार और संस्कृति का जो प्रदेश मूलकेन्द्र है, उसे अपना कहते, हमें संकोच क्यों होना चाहिये ? इस भावना को क्योंकर हमें छिपाकर रखनी चाहिये ? व्यर्थ ही मानसिक व्यथाओं को बटोरकर, उनसे लिपट-लिपट कर, क्यों कर हमें झूठे वैर के बीज बोने चाहिये ?"

"वैर....वैर, तो क्या वैर बाँधने से समर्थ एक साम्राज्य के आपके समान समर्थ महामात्य चौंकते हैं ? आपको...आपको किसका संकोच किसलिए है ?"

'वास्तव में तुम यह कहना चाहते थे मुबारकखान कि वैर बाँधते हुए हम डरते हैं। ठीक है न ?"

"जी...मैं...मैं...।"

"नहीं, यदि आप मुझे कोई सत्य वार्ता सुनाना चाहते है तो इसमें क्यों-कर संकोच रखना चाहिये ? इस संसार में अनेकानेक संताप और अनिष्ट इसलिए उत्पन्न होते हैं कि सचमच नहीं कह दिया जाता है। तुम्हारी बात सत्य है। तुम्हारी मान्यता सत्य है। मदुरा या किसी अन्य राज्य से वैर बाँधते हुए मुझे भय लगता है !"

"भय ?...आपको भय लगता है ?"

"हाँ ! आज, कल अथवा परसों...हमारा मदुरा-विजय अटल है। इसके लिये हमारी विजय-यात्रा निश्चित है, इसके निमित्त संग्राम यदि अनिवार्य हो तो वह भी स्वीकार है—परन्तु यह सब इसलिये कि मदुरा हमारे धर्म का, हमारे संस्कार का, हमारे पराक्रम का और हमारे पूर्वजों का पितृदेश है ! आज भी जिनके नाम, सैकडों-सहस्रों वर्षों के पश्चात् भी हमारी दृष्टि में जीवन्त हैं—वे हमारे पूज्य भगवान अगस्त्य, भगवान राम, भगवान पुषस्त्य, भगवान रामानुज, भगवान वेदान्तदेशिक, भगवान बाहुबली, वीर जटायु, वीर चन्द्रगुप्त और सहस्रों नायम्वर और आलवार जहाँ हुए हैं, जहाँ तीन तीन संगम युग घटित हुए है, जहाँ से नाना छप्पन देशों के व्या-पार के लिए वीर-वणिक प्रस्थान करते हों, जहाँ से जावा, विजय और बाली द्वीपों तक हमारे जैत्र रचे गये हैं, ऐसी वह हमारी पितृभूमि है, मदुरा इसी के अन्तर्गत है। अतएव पुनः उसे प्राप्त करना—हमारा कुलधर्म है, पितृऋण है। इसके निमित्त जितने भी जंग जरूरी होंगे, हम लडेंगे। परन्तु इसके लिये हम किसी से वैर बाँधते हुए डरते हैं, क्योंकि वैर का अन्त नहीं। रक्त बीज से जिस भाँति बहते लहू में से अनेक रक्तबीज पैदा होते हैं, वैर से अनन्त वैर उत्पन्न होते हैं।"

"यदि यही हालत है महामात्यजी, तो मैं किस प्रकार उपयोगी सिद्ध हो सकता हूँ ? क्योंकि मैं एक महान् वैर को अपने सिर पर लेकर निकला हूँ।"

"न्याय के निमित्त युद्ध करना एक बात है और वैर के लिए युद्ध करना दूसरी बात है।"

"इस बारीक भेद को आप जैसे विद्वान् और विचारक ही समझ सकते हैं। मेरी समझ से बाहर है। और मैं इसे समझना भी नहीं चाहता। क्योंकि आप अपने कुलधर्म की बात करते हैं, पितृऋण की बात करते हैं, तब तो मेरा भी कुलधर्म है और मुझे भी पितृऋण चुकाना है। और ये दोनों एक विशाल वैर को पुकारते हैं। मलिक फिरोज़ मुझे अपनी जवानी के लिए चुनौती के समान प्रतीत होता है। मेरी इंसानियत के सामने ललकार की तरह प्रतीत होता है। मेरे वालिद की हत्या का दोष उसी के सिर पर है। उसने मेरी भावी पत्नी के चित्त को भ्रमित किया है। इस धरती पर मेरे और फिरोज़ के लिए कोई जगह नहीं है। हम दोनों में से एक को पहले कूच करना पड़ेगा, यह अत्यंत ज़रूरी है।"

"किन्तु तुम्हारे ये द्वेष तो निजी ही हैं न ?"

"जी हाँ, आप मेरी दास्तान जानते हैं, नागर नायक से पूछ सकते हैं। मुझे सल्तनत या साम्राज्य की कोई कामना नहीं है। मैं तो जन्म और व्यवसाय से सौदागर हूँ। मैं सिपाही नहीं हूँ और जंग मेरे खून में नहीं है। जंग मेरी दृष्टि में समय का दुरुपयोग है। आज तक किसी को जंग से कभी कुछ न मिला ! किसी का उद्धार नहीं हुआ। हाँ, इंसान की शैतानियत ने जंग से हज़ारों निर्दोष और निष्पाप मासूमों को परेशान किया है। हज़ारों घरबार जंग ने बरबाद किए हैं। जंग से क्या कभी किसी को एक भी घर मिला ? लाखों का लहू बहता है पर जुनून वश से बाहर ही रहता है। एक सल्तनत नष्ट हो जाती है लेकिन दूसरी उठती नहीं। कोई साम्राज्य कभी युद्ध के बल बना नहीं, बनता नहीं, बन ही न सकेगा। साधारण जनता सुरक्षा चाहती है। अपने जीवन-व्यवहार की निर्भयता चाहती है। उसे इस बात की परवाह नहीं कि कोई आदमी राजा बनता है या रंक !"

"मैं आपके इन विचारों से सहमत हूँ।"

"आप सहमत हैं ? किन्तु आप तो मदुराविजय के लिए तैयार हैं !"

"हाँ, यह भी सच ही है।"

"मैंने आपसे अर्ज़ किया, मेरा बैर तो मलिक फिरोज से है। उसके

साथियों से है, जिनकी साज़िशों के कारण मेरे वालिद का खून हुआ। जिनकी पापलीला के कारण रोशन के बाप की हत्या हुई और उस अपराध का आरोप मुझ पर लगाया गया! अब जब तक मैं ज़िन्दा रहूँगा, कभी मलिक फिरोज़ को चैन से नहीं रहने दूँगा। सुख की नींद नहीं सोने दूँगा! कयामत तक उसे स्मरण रहे ऐसा भयंकर प्रतिशोध मैं उससे लेना चाहता हूँ कि जब तक वह जीवित रहे उसके हृदय को उसके पाप काटते रहें! और जब उसकी मौत निकट आए, वह शान्ति से न मर सके! मदुरा की जनता के विरुद्ध, अमीरों के विरुद्ध, किसी के विरुद्ध—एक मलिक फिरोज़ 'सुल्तान' को छोड़कर, रोष या संताप नहीं है। मुझे इस बात की भी चिन्ता नहीं है कि मदुरा पर विजयनगर का शासन स्थापित होता है या सल्तनत उस पर राज्य करती है। मलिक फिरोज़ और उसके साथी—बस मुझे तो उन्हें ही...उन्हें ही...उन्हें ही!..."

"भाई, आपने तो भयंकर बदले की तैयारी की है!"

"इसमें दोष मेरा नहीं, उनका है। मैं कोई पीर, औलिया या फकीर नहीं हूँ। मैं एक ऐसे सौदागर का बेटा हूँ जिसका व्यापार और जिसके काफिले दिल्ली से चीन और जावा तक जाते हैं।...आज वे सब..."

"आपकी स्थिति मैं समझ सकता हूँ।"

"मैं बदला लेना चाहता हूँ। क्षमा करें, आप बदले की मेरी भावना को नहीं समझ सकते। मेरे पिता ने माँ के अभाव में मेरा लालन-पालन किया। ऐसे वालिद का मैं बदला लेना चाहता हूँ। बचपन से ही मैं और रोशन साथ-साथ बड़े हुए, साथ-साथ खेले और एक-दूसरे की शादी तय हुई। आज मुझ पर कत्ल का आरोप लगाकर मेरी रोशन को मुझसे दूर कर दिया गया है। आप तो जानते हैं कि एक सौदागर की इज्ज़त सारे मुल्क में मशहूर होती है और लोग उससे लाखों वराहों का, दीनारों का लेन-देन करते हैं। हज़ारों आदमी उसके साथ पलते हैं, लेकिन इस सारे व्यवहार और ढाँचे को अकेले एक दगाबाज़ ने अपनी बेईमान साज़िशों से तोड़ दिया। अतएव आप मेरी प्रतिशोध भावना को पहचान सकते हैं। और मेरा यह प्रतिशोध मात्र एक

पीढ़ी में पूरा होनेवाला नहीं। पूरी सात पीढ़ियों तक बदले की यह रस्म चलती रहेगी। इस वक्त आपके सामने जो पुतला खड़ा हुआ है, वह मानव-सुलभ आशा और अभिलाषाओं का पुतला नहीं है। वह तो, जरूरत पड़ने पर, शैतान से भी सौदा करने को तैयार है। अब वह केवल खाक का पुतला है।"

"क्या आप अकेले इस प्रतिशोध को ले सकेंगे ?"

"जी नही ! इसी हेतु मैं आपके पास आया हूँ। कुमार कम्पनराय मुझे फाँसी के फन्दे से छुड़ाकर यहाँ तक लाए है, इसलिए मेरा मन कहता है कि विजयनगर साम्राज्य मेरी मदद करेगा। यदि मेरी सहायता करने की आपकी मर्ज़ी न होती, तो कुमार अपने प्राणों की बाजी लगाकर, मेरी रक्षा नहीं करते !"

"मनुष्य सदैव स्वार्थी होकर ही काम नहीं करता ! आप यह क्यों भूल जाते हैं कि नागर नायक आपके वालिद साहब के वफादार नौकर रहे हैं। उनके मित्र रहे है।"

"यह एक बात ऐसी है कि मैं इसे समझ नही पा रहा हूँ। किसलिए कुमार कम्पनराय ने मेरे वालिद की सेवा करना स्वीकार किया ?"

"यह बहुत आसान चीज़ है, मुबारकखान ! हम मदुरा के रागरंग देखना चाहते थे ! मदुराविजय से पूर्व वहाँ की शासन स्थिति देखना हमारे लिए आवश्यक था ! आज या कल, देर या अबेर; विजयनगर साम्राज्य पर दिल्ली के तुरुष्क आक्रमण करनेवाले हैं। दौलताबाद की हालत ऐसी है कि कह नहीं सकते कब वह हम पर हमला कर दे ! ऐसी सूरत में, हम अपनी पीठ की ओर से बेखबर नहीं रह सकते ! मदुरा खंजर लेकर हमारे पीछे खड़ा है, हम उसे सहन नहीं कर सकते ! अतएव मदुराविजय हमारा धर्म नहीं, आपद्धर्म है। इस हेतु हम मदुरा की दशा देखना चाहते थे। हसन सौदागर हमारे पृथ्वीसेट्टि के मित्र थे। उनके द्वारा नागर नायक हसन सौदागर के पास रहे। मैं नहीं मानता कि हसन सौदागर को मृत्युपर्यन्त इस तथ्य की खबर हो कि नागर नायक दण्डनायक कुमार कम्पनराय हैं !"

"जी, चाहे जो हो ! मुझपर तो कुमार का अपार उपकार है। मदुरा में उनके रहने से ही मैं अपनी सातों पीढ़ियों के प्रति उत्तरदायी बन सका। और जीवित रह सका। अब मैं आपसे एक प्रश्न पूछ सकता हूँ ?"

"अवश्य !"

"मदुरा में मलिक फिरौज़ की जो दशा होती होगी, वह होगी। सल्तनत का जो हो, हो। मैं सौदागर का बेटा हूँ इसलिए सल्तनत और सुल्तानों की मुझे फिक्र नहीं, लेकिन मदुरा के तुर्कों का क्या होगा ? वहाँ हमारी जो मस्जिदें और दरगाहें हैं, उनका क्या होगा ? मदुरा के लोगों के माल-मिल्कियत का क्या होगा ? क्या सबको मेरे बैर की आग में खाक होना पड़ेगा ? क्या आपकी सेनाओं की पगधूलि में उन्हें खत्म हो जाना पड़ेगा ?"

"इस विषय में विजयनगर साम्राज्य के, विजयधर्म महाराज्य के महामात्य के रूप में, आज या भविष्य में जब तक हमारा पुरुषार्थ विद्यमान रहता है, जमानत दे सकता हूँ—कि किसी भी तुरुष्क को कदापि सताया नहीं जाएगा। उसके बीबी-बच्चों की, बूढ़ों-बालकों की पूरी हिफ़ाजत की जायगी और किसी देवस्थान, मस्जिद, दरगाह, या कब्रस्तान ही क्यों न हो, की पवित्रता का पूरा पूरा ध्यान रखा जाएगा। किसी के घर-बार-सम्पदा को छुआ तक नहीं जाएगा।...मुबारकखान, विजयनगर की सेना लुटेरों की सेना नहीं है। वह किसी दिन किसी घड़ी, दिग्विजय के लिए नहीं निकलेगी। किसी प्रकार के अनाचार, लूट, अपमान आदि से अपने पवित्र संस्कारों की पताका पर वह काला धब्बा नहीं लगाएगी ! विजयनगर की सेना किसी पर-भूमि पर चढ़ाई करने नहीं जा रही है। वह तो अपनी ही पितृभूमि के संरक्षण के लिए प्रस्थान कर रही है।"

"विजयनगर की सेना जनता में से लोगों को गुलाम बनाएगी और —और अगर बनाएगी तो किसे बनाएगी ?"

"मुबारकखान, विजयनगर की सेना का काम गुलामों को पकड़ना नहीं, गुलामों को आज़ाद करना है। किसी इंसान को गुलाम बनाने की हम

कल्पना भी नहीं कर सकते । यह हमारे धर्म, विधान, संस्कार, न्याय और परंपरा के प्रतिकूल है ।"

"तब तो अवश्य—मलिक फिरोज़ से मेरे बदले की वसूली और अपनी पितृभूमि की पुन:प्राप्ति के निमित्त आपकी विजययात्रा—दोनों एक दूसरे के पूरक बन सकते हैं । महामात्यजी, मदुराविजय के आपके जैत्र में मैं आपकी सेवा करने को सादर उपस्थित हूँ । मैं तैयार हूँ, वज़ीरेआज़म !"

अनवरी बेगम ने कहा—"रोशन ! तू कब तक यों हैरान होती रहेगी ? और कब तक मुझे हैरान करती रहेगी ?"

"सुल्ताना, क्या मैं आपको हैरान करती हूँ ?"

"और क्या ! तू दिनभर एक ही कमरे में उदास बैठी रहती है, कुछ कहती-सुनती नहीं। कोई आता है, तो उसे देखती-ताकती रह जाती है, क्या यह हमारे या तेरे लिए अच्छा है ? हमारी मेजबानी के लिए भी यह अच्छा नहीं कहा जा सकता !"

"लेकिन मैं यहाँ मेहमान नहीं हूँ। और मेरे लिए अब मेहमान और मेजबान की रीतियाँ नहीं रह गई हैं !"

"सुल्तान की मेजबानी का यही मूल्य है ?"

"सुल्तान अब तक मुझे मेहमान नहीं बना सके। मेजबान का अपना फर्ज अदा नहीं कर सके—इसका क्या होगा ?"

"फर्ज अदा नहीं कर सके ? क्या कहती हो ? यहाँ तुम्हें किस बात की कमी है ? इंतजाम ऐसा है कि जैसे तू भी सुलताना है। इससे ज्यादा क्या चाहती है ?"

"माफ करें, सुलताना ! मेरे लिए इस मेहमानदारी की, इस दीवान-खाने की, इस शान-शौकत की कोई कीमत नहीं है, अगर मैं किसी बियाबान में रहूँ तब भी फर्क मुझे मालूम न होगा !"

"पगली, लड़ाई और जंग का वक्त रहा। तू अब भी अपने वालिद की मौत का अफ़सोस करती है? ज़रा सोच कर देख—यह ठीक है कि तेरे वालिद एक कातिल के हाथों कत्ल हुए, मगर वे तो बुजुर्ग थे, मौत के किनारे बैठे थे। और तू तो जवान है। परी की तरह खूबसूरत है। तुझे कब्र में लेटे अपने बाप के बजाय, गुलचमन में घूमनेवाले अपने आशिक का ख़याल करना चाहिए।"

"आशिक ?...मेरा आशिक ?...कौन ?"

"इश्क जो करे, वही आशिक ...प्यार जो करे वही प्रीतम !! सुलतान फिरोज़ तेरे पैगाम की राह देख रहा है, इंतज़ार कर रहा है।"

"शुक्रगुज़ार हूँ, सुलताना साहिबा, लेकिन मुझे इंतज़ार नहीं, इसका क्या होगा ?"

"लड़की, यह न भूल कि वह मदुरा का सुलतान है। महल के दरवाज़े के बाहर रोज़-रोज़ जितने आदमी हाथी के पैरों-नीचे कुचल दिए जाते हैं, वे उसी के हुक्म से कुचले जाते हैं।"

"तो मुझे भी हाथी के पैरों-नीचे कुचलवा देगा, यही न ? अगर यह मेहमानदारी भी मुझे स्वीकार करनी पड़ेगी तो खुशी से कर लूँगी !"

अनवरी बेगम रोशन के निकट लेट गई। मक्खन से भी कोमल उसकी देह और त्वचा को शरमानेवाली माखनिया आवाज़ में उसने कहा—

"सुलतान तुझे हाथी के पैरों-नीचे नहीं, लेकिन हाथी की पीठ पर, सोने के हौदे में बिठाना चाहता है, रोशन तू खुद इस बात को जानती है।"

"और सुलतान जानते हैं कि वक्त पड़ने पर वे मुझे हाथी के पैर से कुचलवा सकते हैं।"

"तब, उन्हें इंतज़ार क्यों करा रही है ?"

"इंतज़ार मैं करा रही हूँ, या वे मुझे करा रहे हैं ?"

"तो बुलवाऊँ उन्हें ?"

"तुम उनकी सुलताना—एक औरत होकर, अपने खाविंद के पास उसकी होनेवाली माशूक को बुलाओगी ? बुला सकोगी ?"

"क्यों नहीं ? देवगिरि के सूबेदार इस्माइल मुख की दुख्तर और सुलतान गयासुद्दीन की बेगम के पास सुलतान फिरोज़ को कौन ले गया था ?"

"और अपने खाविंद की मौत होने पर भी क्या ग़यासुद्दीन की बेगम ने सुलतान की माशूक बनना मंजूर किया ?"

"क्यों नहीं ? लाख कोशिश करो, अफ़सोस करो, मरो, मगर मुर्दा क्या फिर से ज़िंदा हो सकता है ? अरे उन काफिरों की औरतों की तरह आग में जल मरो, तब भी क्या मरा हुआ फिर लौट सकता है ? हाँ, यह बात और है कि वह कयामत के दिन ज़िन्दा हो जाएगा।...इसलिए इंसान के परेशान होने से क्या फायदा ? अरी उल्लू ! जवानी चंदरोजा है, इसकी मौज़ों में बहते-बहते भी अगर मरनेवाले को याद कर लें तो कौन 'ना' करता है ? तुम मौज़ करते हो, या मरे हुए के लिए रो-रोकर अपनी आँखें फोड़ रहे हो—यह देखने के लिए मरनेवाला कहाँ आता है ? इसलिए इस्माइल मुख की बेटी ने सोचा कि मरहूम सुलतान की बेवा बनकर रहने से बेहतर है, हयात सुलतान की माशूक बनकर रहना !...और अगर शादी की ज़रूरत देखती हो तो, शादी कर लेने में सुलतान को कोई उज्र नहीं है। अरे पगली, मेरा प्रस्ताव शादी का नहीं, इश्क का है !"

रोशन चुप रही।

अनवरी बेगम और नजदीक खिसक आई। उसने रोशन के कंधे पर हाथ धर कर कहा—"तो, तू भी सुलतान की राह देख रही है, यही न ? तो, बुलवाऊँ उसे ? इस वक्त वह मेरे कमरे में ही बैठा है। क्यों नाहक अपनी जवानी को जहर बना रही है ?"

"क्या, उमर कोतवाल वहाँ नहीं हैं ?"

क्षण भर के लिए अनवरी का सिर फटने लगा ! उसकी आँख में बाघिन का खूनीपन उतर आया, लेकिन रोशन का सर्वथा भावहीन और निष्पाप प्रतीत होनेवाला चेहरा देखकर उसे दूसरा ख्याल आया कि इस सवाल के जरिये रोशन का इरादा कटाक्ष करने का नहीं है।

"नहीं जी, मेरे कमरे में उमर कोतवाल का क्या काम हो सकता है

काज़ी की कचहरी में हररोज़ पचीसों मुजरिम हाथी के पैरों-नीचे कुचले जाते हैं और उसके न्याय की राह देखते हैं, ऐसी दशा में अपनी सुलताना को सलाम बजाने की फ़ुरसत उसे क्योंकर मिल सकती है ? बेटी, मैं सुलतान को यहीं तेरे पास में भेजती हूँ।"

अनवरी बेगम बाहर निकल गई।

कुछ देर बाद सुल्तान फिरोज़ हँसता हुआ कमरे में आया—

"प्यारी रोशन...।"

रोशन सुलतान फिरोज को सिर से पैर तक देखती रही, फिर एक भी शब्द कहे-बिना वहाँ मँह फेरकर खड़ी हो गई।

"मेरी माशूक ! जिस दिन से मैंने तुझे देखा है, उस दिन से मेरे दिल में हमेशा तेरी तमन्ना रही है। मैंने तमाम सुल्तानाओं, बेगमों, बाँदियों और माशूकों को तुम्हारे सामने तुच्छ माना है।"

"जिस तरह इस वक्त तुम मुझे लग रहे हो ?" रोशन ने जैसे उसे जलते हुए लोहे से दाग दिया।

"क्या कहा, छोकरी ? क्या तू जानती नहीं कि मैं सुल्तान हूँ और मनमानी कर सकता हूँ। तेरी राजी या नाराजी की मुझे कोई परवाह नहीं है। यह गुस्ताखी ! अरे, एक नाचीज़ अमीर की एक नाचीज़ और नादान लड़की ! क्या तुझे मदुरा के सुल्तान के अधिकारों की जानकारी नहीं है ? क्या तू नहीं जानती, उसके हाथ कितने लम्बे हैं ?"

"उसके हाथ कितने लम्बे हैं, यह तो मैं नहीं जानती लेकिन कितने छोटे हैं, यह जरूर जानती हूँ।"

रोशन के चेहरे पर अविचल रेखाएँ अंकित थीं।

"मेरे हाथ छोटे हैं और तू जानती है ? तू, बेअदब, लौंडिया...! मेरी दया पर...।"

"सरकार, ये हाथ मदुरा की सल्तनत के तख्त तक पहुँच सके होंगे। दौलताबाद के सूबेदार की लड़की यानी मरहूम सुल्तान की बेगम तक पहुँच चुके होंगे, लेकिन अब तक ये हाथ मुबारकखान के सिर तक नहीं पहुँच पाये

हैं और मदुरा के सुल्तान के हाथों की लम्बाई और ताकत के अन्दाज़ के लिए मेरे पास दूसरा कोई माप नहीं है।"

फिरोज़ अवाक् रह गया। फिर बोला—

"मुबारक को...........उस छोटे से परिन्दे को पकड़कर नोंच डालने में मदुरा के सुल्तान को कितनी देर लग सकती है? तीन टके के सौदागर के लड़के के लिए तू मदुरा के सुल्तान से इन्तज़ार कराना चाहती है? कहाँ गई तेरी तमीज़?"

"मेरी तमीज़ और मेरा सब कुछ मेरे वालिद की मौत के साथ मर गया है। याद है सुल्तान, मैं आपका इन्तज़ार करनेवाली थी और आप मुबारकखान का सिर लाकर मुझे देनेवाले थे। मेरे पास आनेवाले थे। मैं इन्तज़ार करती रह गई और आज आप खाली हाथ लौट आए!"

"मुझे मुबारक के बारे में खबर मिला है कि वह फांसी की सजा से भागकर कहीं चला गया है। मैंने ठेठ चन्द्रगुट्टी तक अपने सिपाही दौड़ाए, लेकिन वे खाली-हाथ लौट आए। बता, अब मैं क्या करूँ?"

"तो मैं भी क्या करूँ?"

"मुबारक के बारे में दूसरी खबरें ये मिली हैं कि उसने इकबाल के बचे-खुचे पिण्डारियों को इकट्ठा किया है और मदुरा और बेलगोला के मार्ग पर लूटमार शुरू कर दी है। दरियायी रास्ते से या काफिलों की राह वह मदुरा के सुलतान तक माल-असबाब नहीं पहुँचने देता। वह अरब और खुरासानी सौदागरों को लूट लेता है और किसी के पास होलेय या पालेर (दास) नहीं रहने देता। कब्र के मुर्दे को काटनेवाले चूहे की तरह वह दौलताबाद और मलाबार के बीच के पहाड़ी इलाकों में लूटमार मचा रहा है। मैंने उसे पकड़ने के लिए फौजें भेजी, तो उसे भी परेशान होकर लौटना पड़ा!"

आप, मदुरा के सुल्तान, एक लड़की को अपनी माशूक बनाने की बातें करते हैं और आपका एक चोर सल्तनत के सहारों को काटता हुआ घूम रहा है! साधारण आदमी आपके इन हालात को नहीं समझ सकता।'

रोशन के अब तक के भावहीन स्वर में कटाक्ष का मिश्रण देखकर सुल्तान फिरोज़ उफन उठा—

"नादान लड़की, तू भूल जाती है कि इस वक्त तू मेरे पंजे में है? समझी?"

"समझी सरकार! आप मदुरा के सुल्तान हैं और आपके हाथों की पहुँच एक लड़की को पकड़ कर रख सकती है, लेकिन आपके इन हाथों में से मुबारकखान-जैसे कातिल छूटकर भाग सकते हैं। सल्तनत को अपनी लूटमार से परेशान कर सकते हैं। इस वक्त जो टेढ़ा-मेढ़ा जा रहा है, लेकिन वक्त पर सीधी राह चलने को मजबूर होनेवाले आपके ससुर की सूबेदारी से आपके सम्बन्ध को वह काट सकता है। इसलिए आपके पंजे में सिर्फ वही लड़की रह सकती है, जिसके वालिद को मार डाला गया है—इतनी बात अगर मैं न समझूँ, तो दूसरा कौन समझेगा, सरकार?"

सुल्तान फिरोज के कान फट गये। इतनी दुबली-पतली, बगीचे में एक छोटी-सी बेल उगी हो, ऐसी यह लड़की उठकर अपने सुल्तान को ऐसे कटु-वचन सुना दे? कहाँ गई लोहपुरुष के रूप में चाहे जिस लड़की को अपनी हथेली पर नचाकर अपनी माशूक बना लेने की उसकी ख्याति? खुद सुल्तान फिरोज़......मदुरा का तख्त वह चाहता था, इसलिए मरहूम सुल्तान गयासुद्दीन को उसी ने मारा था।......मानो मारा तो इकबाल को अनवरी बेगम ने था, लेकिन सोचकर देखने पर तो बात एक ही है दो-दो दावेदार आखिर इसीलिए तो मारे गये कि खुद फिरोज़ तख्त को चाहता था। फिर यह लड़की......और अधिक विचार करने पर सुल्तान के मस्तिष्क ने काम करना बंद कर दिया।

"नादान लड़की,"—उसने चिल्लाकर कहा—"मेरी बात सुन ले, मदुरा का सुल्तान कहता है कि तेरे वालिद को मारनेवाले कातिल, दग़ाबाज़, बेईमान मुबारक का सिर सुल्तान फिरोज़ जरूर हाँसिल करेगा। जब तक वह सिर हाथ में नहीं आता, तब तक सुल्तान के वचन को तू फिर मिल

गया के समान, मान ले। अब अधिक देर इन्तज़ार न करा और मेरा और अपना वक्त जाया न कर।"

"वक्त ?......जाया ?......साहब, मेरे लिए वक्त तो रुककर खड़ा रह गया है, इसलिए वक्त के बरबाद होने का सवाल ही नहीं उठता और आप जो अपना वक्त बरबाद कर रहे हैं, वह मत कीजिए। मुबारकखान का सिर मेरे सामने हाज़िर कर दें फिर यह रोशन ज़िन्दगी भर आपकी बांदी बनकर रहेगी......मुझे सुल्ताना बनने का या बेगम होकर रहने का लोभ न तो कभी था और न कभी होगा। आप अपना वक्त बरबाद न करके पहले मुबारकखान का सिर लाकर मुझे दीजिए, फिर तो मैं ज़िन्दगी भर आपके कदमों की धूल बनकर रहूँगी।"

चार कदम वह दीवार की तरफ बढ़ी और लकड़ी का एक सन्दूक लेकर लौटी। फिर उसे खोलकर काले पड़ गये लहू से चमकता हुआ एक कुल्हाड़ा बाहर निकाल कर हाथ में उठा लिया। उस कुल्हाड़े को हाथ में लेकर वह सीधी सुल्तान की ओर बढ़ी। सुल्तान उसके चेहरे की रूक्ष एकाग्रता और सदन्तर भावहीनता देखकर दो कदम पीछे हट गया।

"घबराइये मत, मेरी आपसे कोई दुश्मनी नहीं है, सिर्फ मुबारक के लिए ही मेरे मन में कभी न बुझनेवाला वैर है। इस कुल्हाड़े से मुबारक ने मेरे वालिद का सिर काटा था, इसी कुल्हाड़े से उसका सिर काटकर, लेकर आप मेरे पास आइये। मेरी अपनी कोई प्यास नहीं है, जो कुछ है इस कुल्हाड़े की है। इसकी इस प्यास को आप बुझाइये और उसका सबूत लेकर, अपनी प्यास बुझाने के लिए मेरे पास आइये।"

सुल्तान फिरोज ने कुल्हाड़े को हाथ में उठाया मगर जैसे वह जलता हुआ अंगारा हो, उसने उसे दूर फेंक दिया।

"मूर्ख लड़की, एक अदना आदमी के साथ अपने अदने वैर को तू सुल्तान की इन्तजारी के खिलाफ दीवार बनाकर खड़ा करना चाहती है ? एक मामूली मुज़रिम के लिये सुल्तान क्या राह देखता खड़ा रह जाएगा ?

तू अपने-आप को क्या समझती है ? और क्या समझती है मदुरा के सुल्तान को ?"

"तो यह खड़ी हूँ मैं, सुल्तान ! अपनी मुराद पूरी करो। तेरा तेल गया मेरा खेल गया ! लेकिन याद रखना सुल्तान अब तुम्हें रोशन नहीं मिलेगी, तुम्हें मिलेगी मिट्टी की एक पुतली—जिसमें दौलताबादी माशूक से भी अधिक नीचता होगी और अनवरी बेगम से भी ज्यादा बेईमानी होगी !... जिसमें तुम्हारी एक बाँदी–जितनी खिदमत की तमन्ना भी, नहीं होगी। सुल्तान तुम अपने–आपको मदुरा का सुल्तान मानते हो। मदुरा की जनता की जान से मनमाना खेल खेलते हो।...क्या आपका खयाल है, मैं आपके इन्कारनामों से कारनामों के प्रति अन्धी बन गई हूँ ? अरे तुम तो मुबारक से भी गये बीते हो, उससे भी नीच हो ! मुबारक में जूझने का हौसला तो है, तुममें तो वह भी नहीं ! तुम तो सुल्तान बुज़ुर्गों के उस कातिल से भी गये बीते हो !"

दो कदम उछलकर फिरोज़ ने रोशन का हाथ पकड़ लिया और हाथ पकड़कर उसे अपनी तरफ फेर लेने के लिये ज़ोर लगाने लगा।

उसने रोशन की आँखों में जलते हुए ज्वालामुखी देखे। एक के बाद एक, खंजर–जैसे घाव मारनेवाले कातिल स्वर में, दबा हुआ बिच्छू जिस तरह एक पर एक डंक मारता है, वैसे स्वर में रोशन धीमे धीमे बोली, लेकिन सुल्तान को तो यही भ्रम हुआ कि इस कमरे में कहीं एक नागन छिप कर बैठी है और फुंकार रही है—

"इस दुनियाँ में मेरे लिये अपने वालिद जैसा दूसरा कोई न था और न है। मुझ में जो कुछ प्य र या मुहब्बत जैसी चीज थी, वह तमाम मेरे वालिद की ज़िन्दगी के आसपास थी और उसे राहत देने के लिए थी। फिर वे मारे गये। उन्हें मारनेवाला मेरा और मेरे खानदान का दुश्मन है। उस मौत का बदला लेनेवाला ही मेरी आशनाई का हक़दार है और रहेगा !"

रोशन ने कुल्हाड़ा हाथ में उठाया।

"लेकिन तुम्हें यह कुल्हाड़ा किसने दिया...कहाँ से मिला ?"

"उमर कोतवाल ढूंढ़ कर यह कुल्हाड़ा ले आये।"

"लेकिन जब तक मुबारक न मिले, तब तक क्या किया जाय ?"

"उसका पता लगाया जाय।" रोशन ने सुल्तान के सामने कुल्हाड़ा रख दिया।

सुल्तान ने उसका हाथ झकझोर कर कहा—"लड़की तूने बहुत कुछ कह दिया, मेरी बात सुन ले और इसे मेरी प्रार्थना मानती है तो प्रार्थना मान ले और हुक्म मानती है तो हुक्म समझ ले—मुबारक का सिर काटकर लाने की कोशिश की जाएगी। उसे पकड़ने के लिये फौज भेजी जाएगी, जल्द या देरी से मगर वह पकड़ा जाएगा और तब कुत्ते की मौत मरेगा और उसका सिर तेरी कोठी के सामने भाले पर टाँग दिया जाएगा.... लेकिन मैं तब तक राह नहीं देख सकता। अब तक मैंने धैर्य रखा कि चलो नादान छोकरी है और बाप की मौत से ग़मगीन है। वक्त निकलने पर रास्ते पर आ जाएगी...लेकिन तेरी नादानी और नाफरमानी अब हद से बाहर गुज़र चुकी है और मदुरा का सुल्तान उसे हरगिज़ बरदाश्त नहीं करेगा। एक लुटेरे के सिर के पीछे कुल्हाड़ा लेकर भटकने और एक नादान लड़की को सुल्तान की सेवा का अपना फर्ज़ समझाने के बजाय मदुरा के सुल्तान और सल्तनत के पास दूसरे कई ज़रूरी काम हैं। अब मदुरा का सुल्तान तेरे मिज़ाज़ पर रहम दिखाने से इनकार करता है। अब भी मुबारक का सिर लाया जायेगा, अगर तेरे चोर के तौर पर नहीं पर सुल्तान के चोर के तरीके पर, मगर छोकरी, सुल्तान तब तक राह देखना नहीं चाहता, इस बात को अच्छी तरह समझ ले !"

इतना कहकर सुल्तान फिरोज़ अचानक उछला और उसने अपने मजबूत हाथों से रोशन को गर्दन और घुटनों के नीचे से पकड़कर उठा लिया। उठाकर कुछ ही दूर पर बिछे हुए गलीचे पर पटक दिया। और दूसरे ही पल सुल्तान की तीव्र वेदनामय चीख़ इस रंगमहल की चारों दीवारों को भेदकर मानो सारे महल में राहत और चैन को खोजने के लिये निक़ल पड़ी !

सुल्तान ने रोशन को गर्दन और घुटनों से उठाया था। इससे रोशन का मुँह सुल्तान के बाएँ कंधे पर पड़ा था। रोशन ने बिल्ली की तरह

सुल्तान के बाएं कान का आधा ऊपरी भाग अपने दाँतों में दबा लिया था। जब सुल्तान ने रोशन को फेंका, तब रोशन अपने दाँतों से सुल्तान के कान से लटक रही थी।

जिस प्रकार लिपटी हुई नागिन को कोई झटक देना चाहता है, उस प्रकार सुल्तान आकुल-व्याकुल होकर रोशन को झटकने के लिए जूझ पड़ा!

और लहू की धारा सुल्तान के वस्त्रों के बाएँ भाग को भिगोती हुई नीचे टपकने लगी। और जिस भाँति जंगली बिच्छू के काटने पर डंक की वेदना असह्य हो जाती है, उसी भाँति सुल्तान अपने घुटनों में घुसा हुआ जमीन पर पड़ा चिल्ला रहा था। और जमीन पर खड़ी हुई रोशन आँखों से आग बरसाती हुई उसके सामने खड़ी थी।

सुलतान की वेदनाभरी चीख सुनकर अनवरी बेगम पास के कमरे से दौड़ती हुई आई। नीचे से दौड़ता हुआ उमर कोतवाल आया। एक-दो सिपाही भी आए।

इन सब ने देखा कि सुलतान अपने कर्णक्षेत्र पर लगी हुई आग को बुझाने के लिए अपने हाथ को हवा में उड़ा रहा है।

सुलतान की आँखों में मानो हरा जहर जमा हो रहा था।

"क्या हुआ? क्या हुआ?......"

धीमे-धीमे सुलतान खड़ा हो गया। उसके होठ जोर से भिंचे हुए थे। उनकी मुट्ठियाँ बन्द थीं। शिकारी परिन्दे के डैनों की तरह उसकी उँगलियाँ खुल-खुलकर बंद हो रही थीं।

उसने एक भी शब्द नहीं कहा। और न किसी ने उससे कुछ पूछा ही।

एक-एक कदम वह इस तरह आगे बढ़ा मानो रोशन को जिंदा ही दफ़न कर रहा है......एक, दो, तीन।......

फिर भी रोशन इस तरह स्वस्थ और एकाग्र मन खड़ी थी, जिस तरह सुनहरे रंग का लौह स्तम्भ खड़ा हो। उसके अधर पर लहू के बूँद उभरे हुए थे, जैसे किसी ने लौह स्तम्भ की मूरत की कुंकुम से पूजा की हो!

अचानक बाहर शोर मच गया—एक, दो आदमी दौड़ते हुए भीतर आ घुसे—

"सरकार! सरकार!! सरकार!!!"

"क्या है?" फिरोज ने खड़े होकर, पीली मिट्टी के से खून से लथपथ अपने मुँह को दरवाजे की तरफ़ मोड़कर, पूछा।

एक सिपाही ने कहा—"हुजूर......सरकार! बेअदबी माफ......सरकार!"

"लेकिन बात क्या है?" फिरोज़ ने बेसब्री से पूछा।

"जी सरकार! टोंडाईगढ़ में भयंकर लड़ाई हुई। विजयनगर की सेना ने टोंडाईगढ़ पर अधिकार कर लिया है, शम्बूरराय मारा गया है, और उसकी सारी सेना नष्ट हो चुकी है। अब विजयनगर की सेनाएँ मदुरा की ओर बढ़ी आ रही हैं। युद्ध में घायल और जंगली रास्तों से भागकर आए हुए शम्बूरराय के वज़ीरे-आज़म आदिलशाह असली खुद यह समाचार लेकर आए हैं और आपकी मुलाकात की प्रतीक्षा में खड़ें हैं!"

"इस बदमाश को हाथी के पैरों में डाल दो......और इस सिपाही को भी......ऐसे वक्त कैसी बुरी खबरें लाया है कमबखत! जाओ, फौरन मेरे हुक्म की तामील करो!"

२१ ★ उपहार

महाभारत काल के वेद व्यासजी ने महाभारत में एक ऐसा प्रसंग लिखा है जो लोक-व्यवहार, राज्य-व्यवहार और राजनीति के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। पाण्डवों और कौरवों की शत्रुता प्राणांतक थी। कौरव पाण्डवों का सुख-वैभव देख नहीं सकते थे। और यह सम्भव नहीं था कि पाण्डव कौरवों के अभिमान को सहन कर सकें। कौरवों की शत्रुता इतनी बढ़ गई थी कि उन्होंने पाण्डवों का सर्वस्व छीनकर उन्हें जीवित जला देने का प्रयत्न किया था। उन्हें दर-दर का भिखारी बना दिया था।

ऐसी दशा में, एक समय शत्रुराज गंधर्व राजा चित्रसेन और कौरवों के बीच युद्ध हो गया। इस युद्ध में कौरवों का पराजय हुआ और चित्रसेन द्वारा पराजित दुर्योधन और उसके भाई पकड़कर बंदी बना लिये गये।

यह सुनकर भीम बहुत खुश हुआ। उसकी इस खुशी पर खेद प्रकट करते हुए धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा—"हमारे आंतरिक कलह के लिए पाँच पाण्डव और कौरव सौ भाई हैं। परन्तु जब पराया और बाहरी शत्रु आक्रमण करता है, तब पाण्डव और कौरव मिलकर एक सौ पाँच भाई हैं। जाओ, सेना लेकर दुर्योधन की सहायता के लिए लड़ो!"

महाभारत हिंदुओं के संस्कार, धर्म, और संस्कृति का प्राणग्रंथ है। फिर भी किसी हिन्दू राजा ने इसकी शिक्षाओं पर ध्यान नहीं दिया। और उलटे

वे, पड़ोसी राजा पर आक्रमण होने पर भीम की भाँति खुश होने लगे। इसी प्रकार जब तुरुष्कों का आक्रमण हुआ तब वे एक एक कर नष्ट हो गए।

और तुरुष्कों का पहला आक्रमण हिमालय से रामेश्वर तक हुआ।

तुरुष्कों को महाभारत की जानकारी हो या न हो किन्तु उन्होंने इसकी शिक्षाओं का आनुसरण किया था। उनके सुलतान, सूबेदार, मलिक, अमीर और वजीर आपस में लड़ते। फिर भी हिन्दुओं के विरुद्ध एकत्र हो जाते।

और यद्यपि मदुरा की सल्तनत दिल्ली के प्रति बेवफा थी। सल्तनत के खिलाफ बागी थी, सुलतान और उसके सूबेदार के विरुद्ध उसने बगावत की थी, फिर भी आसपास के हिन्दू राज्यों के सामने उसके खड़े हो जाने पर दिल्ली के सुलतानों ने सदैव अपने हममजहब सूबेदारों की सहायता की थी।

ऐसे में विजयनगर राज्य की रचना हुई। तुंगभद्रा के दक्षिण तट पर एक व्यक्ति जाग उठा—जिसने दो सौ, ढाई-सौ, वर्षों में पहली बार तुरुष्कों के विरुद्ध, एकता का महाभारत का उदाहरण समझा और सबको एक सूत्र में आबद्ध किया। इसमें से विजयधर्म महाराज्य का विजयनगर साम्राज्य बना, उभरा और बढ़ा।

तब मदुरा विच्छिन्न हो गया। लेकिन इससे उसकी कोई हानि नहीं हुई। अरब महासागर के मार्ग से उसे दौलताबाद से मदद मिलती रहती। दरियाई रास्ते से सोमनाथ और खंभात के द्वारा सल्तनत को सहायता पहुँचती।

अपने ही खिलाफ खुली बगावत करनेवाले और स्वतंत्रता का झण्डा उठानेवाले हमदीनों की वे पूरी मदद करते और इसमें बुराई न देखते। हिन्दुओं के विरुद्ध वे एक थे।

लेकिन पूर्व समुद्र में केवल दरियाई मार्ग सुगम था और विजयनगर के पूर्वी समुद्र के सैनिक अधिकारियों ने उसे भी एकदम बन्द कर दिया था। और अब तो घाट के पार से, पश्चिम से आनेवाली मदद का मुँह भी बन्द हो गया था।

दौलताबाद के सूबेदार ने मरहूम सुलतान गयासुद्दीन दमगनी को अपनी लड़की दी थी। कुछ जानकारों का तो यह दावा था कि यह उसकी रखैल

की लड़की थी। चाहे जो हो किन्तु यह बात सच थी कि सुलतान गयासुद्दीन दौलताबाद के सूबेदार इस्माइल मुख का जमाई होने का दावा करता था। और इस दावे को प्रमाणित करने के लिए पहाड़ जैसी अपनी देह के समक्ष छोटी-सी कंकरी प्रतीत होनेवाली अथवा धतूरे के फूल की बराबरी में रात-रानी के फूल-जैसी लगनेवाली दौलताबादी बेगम की ओर उँगली उठाकर वह इशारा करता। इस्माइल मुख ने इस दावे को कभी अस्वीकार नहीं किया था। और अब ऐसा ही दावा सुलतान फिरोज़ एहसानशाह भी इसी रातरानी के फूल को आगे बताकर करता था। और इस दावे से इन्कार करने के बजाय इस्माइल मुख ने फिरोज़ की सहायता के लिए थोड़ी-बहुत सेना भी भेजी थी।

परन्तु उस वक्त पश्चिमी घाट की ऊँची और लम्बी पर्वतमाला की तलहटी में और नीलगिरि की पहाड़ियों के बीच में मुदारकखान नामक भारी खूँख्वारी पिण्डारी अपने करतब दिखाता था।

इकबाल की मदुरा की लूट, इकबाल की मौत और सुलतान फिरोज़ की तख्तनशीनी—इन सबके बाद में भी राज्य-व्यवस्था में, व्यवहार और प्रबन्ध में कोई फर्क नहीं आया था। चाहे हिन्दू हों या तुरुष्क, मदुरा में सभी अन्यायग्रस्त थे। कम्पू, रईस, हिन्दू, तुर्क, पामर और शेष सभी वर्गों की छीनी हुई सम्पत्ति, ज़मीन, नारियाँ और जब्त खेत सब चले गए थे और फिरोज़ के अभिवचन पर भी, वापस नहीं मिले थे और अगर इतना ही होता तब भी मगरूर के पहाड़ी लोग—हिन्दू, तुरुष्क, बेसवागा, पिण्डारी आदि नए सुलतान के हाथों कुछ न कुछ पाने की आशा में चुपचाप बैठे रहते और उसे वक्त पर सहायता भी देते। किन्तु भयभीत सुलतान समस्त व्यवहार को भूल चुका था। मरहूम सुलतान गयासुद्दीन को राज्य शासन की लम्बी अवधि मिली थी और उसके पास कवायद सीखी हुई सज्जित सेना थी। और जानिसारों के 'गारदी' सैनिक थे। ये सेनाएँ भली भाँति लैस थीं। फिर भी वह पहाड़ी रईसों और पिण्डारियों को वशीभूत करने में समर्थ न हो सका, और पिण्डारियों की खुली बगावत में उसे अपनी जान से हाथ धोने पड़े!

यही काम सुलतान फिरोज़ अपनी उस सेना से पूरा करने के लिए निकला था, जो पिण्डारियों के हाथों पिट चुकी थी और जिसके गारदी सिपाहियों की कमर टूट चुकी थी ? और जिस कार्य को मदुरा के रईसों और अमीरों और लामों ने पिण्डारियों के विरुद्ध एक होकर अपनी जान और जायदाद की रक्षा के लिए किया था. उसे सुलतान फिरोज़ अपना अद्भुत कार्य मानता था और उसका समस्त श्रेय खुद ही लेता था। यह उसकी भूल थी। इसलिए पिंडारी सुलतान फिरोज़ का भी मुकाबला करने को, उसे नाकों-चने चबवाने के लिए प्रस्तुत थे। परन्तु उनमें कोई योग्य नेता नहीं था, अतः वे नेता की राह देख रहे थे। इस दृष्टि से मुबारकखान को इकबाल के बनाए मार्ग पर चलने में तनिक भी असुविधा नहीं हुई।

कल ही जो सुलतान का कैदी था। सुलतान से जिसे फाँसी की सजा मिली थी, वह हाथी के पैरों के नीचे न कुचला जाकर, खुद पागल हाथी की तरह घूमता था और सुलतान की सूली पर चढ़ने के बजाय, खुद ही सुलतान की बाजुओं में शूल चुभो रहा था !

नीलगिरि और उसके पास-पड़ोस की पर्वतमालाएँ बहुत करारी और भयंकर हैं। वहाँ बड़ी-बड़ी गुफाएँ भी हैं। इन्हीं में इकबाल का पड़ाव था और इन्हीं में से एक में मुबारक खान का डेरा था। वहाँ अपने तीन-चार साथियों के साथ वह बैठा था। दूसरे लोग इधर-उधर बैठे अपना भोजन कर रहे थे।

मुबारकखान वनमानुष के समान लगता था और जैसे जनम-जनम का पिंडारी था। वह सुलतान के सेवकों के लिए काल के समान था।

वह बैठा था और बैठा-बैठा अपने कारनामों का रोज़नामचा लिख रहा था। अचानक दूर से बाघ की आवाज़ सुनाई दी। कुछ अन्तर पर तीन बार वही आवाज़ आई। मुबारक ने ज़मीन से कंकर उठाए और उन्हें गिनने लगा, एक से दस तक। मुबारक के मुंह से गिनती के बोल निकलने पर पागल आदमी की हँसी-जैसी छींक सुनाई दी।

मुबारक ने रोज़नामचा बन्द कर दिया। उसके पहले पेज पर मुबारक मुशायर नाम साफ-साफ पढ़ने में आता था। एकदम वह खड़ा हो गया।

हाथ के कंकर उसने फेंक दिए और कान लगाकर हवा में कुछ सुनने लगा। उसके तीन सशस्त्र साथी उसके पीछे सावधान होकर खड़े हो गए।

कुछ ही देर के बाद एक पिंडारी अपनी गर्दन मुबारक की ओर मोड़-कर उल्टे पैरों चलता हुआ उसके पास आया।

पास आकर वह सीधा खड़ा हुआ और बोला—

"उस्ताद, एक महिला पालकी में बैठकर आई है। उसके साथ में कुछ सैनिक भी हैं और वह आपसे मिलना चाहती है।"

"उसके कारण इतनी सावधानी!"

"आपका ही हुक्म है—हमारे पास में आनेवाले मुलाकाती या सिपाही चाहे जितने निरुपद्रवी या निर्दोष प्रतीत हों, उनका विश्वास नहीं करना चाहिए।"

"सच्ची बात है, किसी का भी भरोसा नहीं करना चाहिए!"

"जी।"

"सिपाहियों को वहीं रोक लो। पालकी भीतर आने दो।"

पिंडारी चला गया। कुछ ही देर में चार कहार एक पालकी उठा कर लाए।

"कहारों को ले जाओ और इनकी तलाशी लो।"

मुबारक का हुक्म पाकर पिंडारी कहारों को लेकर चले गए।

"आइए बहन! कोई भी महिला, चाहे वह खानदानी हो, चाहे दुश्मन के परिवार की हो, तब भी उसे मुबारक से नहीं डरना चाहिए। मैं अपनी इस झोंपड़ी में आपका इस्तकबाल करता हूँ।"

पालकी से एक नाटे कद की मोटी औरत बुर्का पहने नीचे उतरी।

"आप कोई फरियाद करना चाहती हैं? सुलतान या उसके अमलदारों के खिलाफ कुछ कहना चाहती हैं? आपकी मैं क्या सेवा कर सकता हूँ?"

महिला ने अपने चेहरे से नकाब दूर कर दिया और अत्यन्त विस्मय से मुबारक चार कदम पीछे हट गया—"कौन? अनवरी बेगम? आप?"

"हाँ। मैं अनवरी बेगम! मुबारकखान, मैं तुमसे कुछ बातें करने आई हूँ।"

मुबारक ने व्यंग्यपूर्वक कहा—"मेरा तो खयाल था कि बुर्का पहने कोई खानदानी बानू है ! तुम्हारी तो कल्पना ही नहीं थी !"

"मैं तुमसे खानगी बातें करना चाहती हूँ !"

"लेकिन तुमसे बातें करने से मुझे कोई फायदा नहीं है।"

"अगर कोई आदमी, और वह भी औरत, खानगी कुछ कहने-सुनने के लिए आती है तो, वह अपनी ही चर्चा होती है मुबारकखान ! चाहो तो मेरी तलाशी ले लो, मेरे पास किसी किस्म का हथियार नहीं है ! इतना तो मेरा भरोसा रखो।"

मुबारक ने अपने पीछे खड़े साथियों की ओर देखा। उनमें से चुपचाप एक आदमी गया और एक औरत के साथ लौट आया।

बिना कुछ कहे उस औरत ने अनवरी बेगम की तलाशी ली—सिर के बालों से लेकर पैरों के अँगूठे तक। फिर सशस्त्र सैनिक और वह औरत मुबारक के इशारे पर वहाँ से चले गए।

"तू एक जवाँमर्द कहता है अपने आपको और बेवफाई, नाफरमानी और काफिरों की दोस्ती को तूने अपना पेशा बनाया है। फिर भी एक औरत का तुझे इतना खौफ़ ? इतना अविश्वास ? मुबारक तू कोई जंग नहीं जीत सकता।" जाँच पूरी होते ही अनवरी-बेगम ने अर्ध तिरस्कार-पूर्वक कहा।

"यह विषय अत्यन्त कटुतापूर्ण है। बाद में हम इस पर चर्चा करेंगे... बहुत दूर से तुम आई हो, इसके पीछे जरूर कोई खास सबब है। और मैं भी शहरों का आराम और ऐश छोड़कर पत्थरों की तकिया लगाकर गुफाओं में रहता हूँ इसके पीछे भी जरूर कोई राज है, इसलिए अच्छा तो यही है कि हम काम की बातें करें।"

"लेकिन मैं तुमसे क्या बात करूँ ? तुम्हें अपने आप पर तो भरोसा है, लेकिन मुझ पर नहीं। फिर क्योंकर बात हो सकती है ?"

"तो, हमें बात किए बिना ही बिदा लेनी चाहिए। मेरे पास और भी

कई जरूरी काम हैं।" मुबारक ने लापरवाही से कहा।

"तुम्हें कौन-से काम हैं, यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ। उन्हीं के बारे में मैं बात करना चाहती हूँ लेकिन तुम्हें मुझ पर एतबार नहीं। मुबारक, तुम्हारी सारी बेवफाइयों के बाद भी मेरा दिल तुम्हारे लिए जलता रहता है। और इसीलिए आज मैं खुद चलकर यहाँ तक आई हूँ। ऐतबार जब नहीं, तुम्हारी भलाई की बात कैसे कर सकती हूँ? तुम्हारी भलाई की बात करूँ तब भी इस वक्त तुम्हारा दिमाग़ इस तरह फिरा हुआ है कि मेरी बात तुम्हें स्वार्थपूर्ण प्रतीत होगी। फिर भी खुदा गवाह है कि तुम्हारी भलाई के सिवाय मेरे मन में दूसरी कोई कामना नहीं है।"

"बेगम, तुम्हें मेरी इतनी फिक्र है, यह मैंने आज ही सुना और जाना। जानकर खुश हुआ लेकिन तुम्हारी बात जब तक मालूम न हो, मैं कैसे कुछ कह सकता हूँ?"

"मुबारक, मेरी पहली बात यह है कि इस दुनिया में ऐतबार न रखनेवाले की अपेक्षा ऐतबार रखनेवाला आखिरकार सुखी होता है।"

"स्वीकार है। फिर?"

"तुम मानते हो कि सुलतान फिरोज़ नीच नहीं है।"

"इस बात को शायद रोशन पसंद करे। मैं कैसे कर सकता हूँ, क्योंकि मैं सुलतान फिरोज़ को अच्छी तरह पहचानता हूँ।"

"और मैं भी पहचानती हूँ।"

"तुम्हारी और मेरी पहचान में बहुत बड़ी दूरी है। तुम्हारी तरफ सुलतान फिरोज़ बेवफा है या नहीं है, यह तुमने कैसे मान लिया? दुनिया के कई मामलों में औरत को समझाना बहुत मुश्किल है, तो कई मामलों में वह बहुत जल्द भरोसा कर लेती है। लेकिन, मेरा खयाल है कि तुम मर्द और औरत के रिश्ते पर चर्चा करने के लिए या सुलतान की विशेषता और अपने भोलेपन पर वार्तालाप करने के लिए इतनी दूर नहीं आई हो। तुम्हारा मकसद कुछ और है।" मुबारक ने कहा।

अनवरी बोली—"नहीं। सुलतान और मेरे रिश्ते की बात करने की जरूरत नहीं। लेकिन, जब बात निकल ही गई तो इतना कह देती हूँ कि ये रिश्ता ऐसा नहीं है कि जिसमें दूसरे किसी मर्द को मौका न मिले !"

"शुक्रिया।"

अनवरी बेगम ने ज़रा पास में सरककर, मुबारक का हाथ अपने हाथ में ले लिया—"मुबारक, इस शरीर के बाहरी दिखावे से भ्रमित न होना, बाहर से कुरूप लगनेवाले इस शरीर के भीतर, दूसरा एक शरीर है, जिसकी पहचान आसान नहीं, मगर एकबार पहचान हो जाने पर...."

"माफ करो और मेहरबानी करके चुप रहो, अनवरी बेगम ! औरत होकर जिस बात को कहते, तुम्हें शर्म आनी चाहिए, उसे मर्द होकर सुनते हुए मुझे शर्म आती है। मुझे ऐसी बेशर्म बातें पसन्द नहीं।"

"औरत कब शर्मदार बनती है और कब बेशर्म बनती है, इस राज को समझते हुए अभी तुम्हें आधी ज़िंदगी चाहिए, मुबारक !"

"पूरी ज़िन्दगी की ज़रूरत हो तब भी मुझे उज्र नहीं, लेकिन एक सुलताना खुद उठकर एक बागी के पास आकर दर्ख्वास्त करती हो तो ज़रूर उसके पीछे कोई राज़ है, वही मुझे बताओ, वरना..."

"यह मान लो मुबारक, कि मैं तुम्हारी माशूब बनकर आई हूँ। और अगर तुम्हें यह न मानना हो, तो मत मानो। यह मान लो कि मैं तुम्हारे पास सुलताना के तौर पर आई हूँ। अगर यह न मानना हो तो मान लो कि एक औरत के रूप में तुमसे भीख माँगने के लिए आई हूँ।"

"भिखारियों को भीख देने का काम सुलतान का है और वह तुम्हारा शौहर है। मुझ जैसे पहाड़ी चूहे के पास क्या रखा है, जिसके अपने और अपने साथियों के लिए भी पूरा प्रबंध नहीं है, वह तुम्हें क्या दे सकता है ? मेरे पास तो सिर्फ सुल्तान और सल्तनत के खिलाफ बगावत करनेवाले लोगों के लिए इंसाफ की आरज़ू है, और कुछ नहीं है !"

"अरे पागल ! गरीबों के लिए इंसाफ, इतनी महत्व की चीज़ नहीं कि जिसके लिए जवाँमर्दों और सुलतानों को परेशान होना चाहिए ! पगले ! सल्तनत, ज़वानी, आशनाई, इश्क—ये सब तो चंदरोज़ा चाँदनी है चाँदनी।

ये जब भी मिलें, तब भी इनका अच्छी तरह उपयोग करना चाहिए। और इंसाफ, वह तो खुदा का नूर है। और खुदा के नूर को आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों अवश्य प्रकट होना पड़ेगा। इंसाफ खुदा का अपना नाम है और वह इसे सँभाल लेगा, इसमें तुम्हें खुद बरबाद होने की क्या जरूरत है? सुलतान से लड़ने की क्या जरूरत है? इंसाफ के नाम पर लड़ने के लिए निकलनेवाला आदमी तो खुदा का बागी माना जाता है। जिसे खुदा की ताकत में ऐतबार नहीं, वही खुदा का काम अपने हाथ में लेता है।"

"यह भी एक दलील है।"

"दलील? पागल, यही सच्ची राजनीति है। ज़िन्दगी को जीने की कला और ज़िन्दगी की मौज—ये बहुत कीमती चीज़ें हैं। फिर क्योंकर तुम जैसा नौजवान ज़िन्दगी के ऐशो आराम और मौजों को छोड़कर इस तरह हैरान-परेशान हो रहा है, यह मेरी समझ के बाहर है।"

"हमारी बातचीत से ऐसा लगता है, जैसे हम आमिल या मौलवी हों और उनकी सभा में बैठे हों, गैरइंसाफ की एक चिनगारी रखकर खुदा अपने बंदे और शैतान के शागिर्दों के बीच में चुनाव करना चाहता है, बेगम!"

"छोड़ो इन बातों को! मैं तुमसे पूछती हूँ कि इन पहाड़ियों में भूखों मरते हुए, जंगली लोगों का साथ करते हुए, बदनामी बटोरते हुए, पत्थरों के बिछौने पर सोते हुए, परेशानियाँ उठाते हुए ही क्या सारी ज़िन्दगी खत्म कर देना है? या उसका कोई दूसरा बेहतर उपयोग भी है?"

"बेगम, तुम्हारी दृष्टि में यह अच्छा हो या न हो, लेकिन मेरे लिए इसके सिवाय कोई चारा नहीं है।"

"चारा क्यों नहीं? उपाय तो मैंने बताया है, न? तुम सुलतान की आधी गद्दी, आधा तख्त और आधी सेज दबाकर बैठ सकते हो!...तुम्हें यह तो मालूम है कि आखिरकार यह सल्तनत मेरी है और मेरे वालिद से इसे दगाबाज़ी, कत्ल और खून-खराबी पर लूट लिया गया है। फिरोज़ तो मेरा एक हथियार है और वह जानता हो या नहीं, फिर भी वह मेरा हथियार ही है!"

"वह ज़िन्दा हथियार है, ज़िन्दा साँप है, बेगम !"

"अगर वह साँप है, नाग है तो मैं सँपेरिन हूँ, मदारिन हूँ।"

"तब क्या तुम मुझे अपना बन्दर बनाना चाहती हो ?"

अगर तुम्हें बंदर बनना हो, तो बंदर बनकर रहो, मालिक बनना हो तो मालिक बनकर रहो, क्या बनना ? यह तुम्हारी मर्ज़ी की बात है। मैं तुम्हें आधा हिस्सा देती हूँ। आधा मालिक बनाती हूँ। औरत होकर मैं अपना बहुत-कुछ तुम्हें सौंपने के लिए आई हूँ ! तुम चाहो तो कल—चाहे फिरोज़ की जानकारी में या नाजानकारी में, जिस तरह तुम चाहो, आधी सल्तनत और मेरे शरीर को, मुझे अपना बना सकते हो। और मेरी सिर्फ एक ही शर्त्त है कि मदुरा की सल्तनत के खिलाफ तुम खतरा बनकर नहीं रहोगे मगर उसकी हिफाज़त के लिए फिरोज़ के कंधे से कंधा मिलाकर, मुस्तैद खड़े रहोगे।"

"मदुरा की सल्तनत !!......" मुबारक तिरस्कारपूर्वक ज़ोर से हँसा—"मदुरा की सल्तनत !...... दगाबाज़ी और बेईमानी पर जिसकी हस्ती खड़ी है.......लूटमार और नाइंसाफी से ही जिसका कारोबार चलता है, जिसका एक भी सुलतान कत्ल हुए बिना नहीं रहा........जिसका एक भी सुलतान बेईमान, दग़ाबाज़ बने-बिना नहीं रहा......जिसके हरेक सुलतान ने अपने ही वफादार साथियों के खून से अपने हाथों पर नापाक धब्बे लगाए...जिसने अपनी लूटमार में हमदीनों और गैरदीनों का फर्क नहीं समझा...मदुरा की सल्तनत के तीस सालों की यह काली तवारीख !.... दूसरे हमदीन चाहे दूसरे सुलतानों के सामने खामोश बैठे रहें, दूसरे चाहे लाचार बनकर रह जाएं लेकिन मैं अपने बाप का बेटा चुप होकर रहनेवाला नहीं। चुप होकर रहूँगा नहीं। जब भी इस सल्तेनत के खातमें का इतिहास लिखा जाएगा, मेरा नाम उसमें सबसे आगे आएगा।"

"तो, इस इतिहास को तुम सुधार भी सकते हो। मैं अनवरी बेगम अपने बाप के लहू की सौगंद खाकर कहती हूँ कि अगर तुम चाहो तो मैं तुम्हें मदुरा का दूसरा सुलतान बना दूँ। आज तक दुनिया में एक वक्त, एक तख्त पर एक ही सुल्तान बैठता आया है, लेकिन मैं इसी वक्त एक ही तख्त पर दो सुलतानों को बैठा कर दुनिया को दिखा दूँगी। एक सुलतान

फिरोज़ और दूसरा सुलतान मुबारक ! लेकिन तुमसे मेरी एक ही आरज़ू है, इस सल्तनत को बरबाद न करो !....सुलतान फिरोज़ जिस दिन विजयनगर की फौज़ों से लड़ने जाए, उस दिन तुम उत्तर से मिलनेवाली मदद का रास्ता न काटो ! तब तुम उसकी पीठ पर हमला न करो।.......चाहे तुम दानिश-मंद दानियल सानी बनना, चाहे तुम मुबारक रशीद बनना, चाहे तुम इंसाफ को धरती पर उतारना, चाहे तुम अनवरी बेगम के दिल की गद्दी पर बैठना चाहे बहिश्त की हूरों से रंगराग करना—बेगम अनवरी को इसमें कोई ऐतराज नहीं है, उसके दिल में जलन नहीं है, कोई ईर्ष्या नहीं है, वह चाहती है सिर्फ एक बात—तुम एहसानशाहों के इस तख्त को, इस सल्तनत को, चाहे जैसे मगर सलामत रखो !"

"बेगम, सुलतान फिरोज़ और मैं, कभी, किसी दिन, कहीं एक साथ नहीं रह सकते। एक तलवार की दो म्यानें हो सकती हैं लेकिन म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं। इस धरती पर मेरे और फिरोज़ के लिए एक ही ऐसी जगह नहीं है जहाँ हम दोनों रह सकें। अगर हम दोनों साथ साथ रहें तो अनवरी बेगम तुम्हारा हरम बहुत छोटा पड़ता है, इन्साफ की अदालत छोटी पड़ जाती है और मदुरा की सल्तनत भी छोटी पड़ जाती है और यह धरती तो क्या सारा आसमान छोटा पड़ जाता है !"

"और अपने इस वैर की आग में तुम मदुरा की सल्तनत का विनाश करने के लिए काफिरों के साथी बनना चाहते हो ? हमारे बुजुर्ग जलालुद्दीन एहसानशाह ने कितनी-कितनी हिकमतों, तकदीरों, करामातों और अक्ल-मंदियों से इस सल्तनत की स्थापना की है और मलिक काफूर को भी परास्त किया है ! भयंकर काले नाग जैसे खुशरू खाँ गुजराती को भी उन्होंने हथेली में चाँद दिखलाया है। दादैया सोमैया जैसे पाण्ड्यनायकों का सामना किया है......कितनी कितनी ज़हमतें उठाकर हिमालय की तलहटी में गड़ा हुआ इसलामी झण्डा यहाँ लाकर गाड़ दिया है...काफिरों का यह आखिरी मोर्चा, जिनके धर्म, मत, पंथ, संस्कार और संस्कृति, सबको हिमालय की कंदराओं से मारमार कर, और हाँक कर–निकालकर बाहर किया और सारा मुल्क फतह किया...बाकी रह गया यही एक मोर्चा...उत्तर की

जानिब से सुल्तान मुहम्मद तुग़लक और दौलताबाद के सूबेदार इस्माइल मुख आज अपनी तैयारियों की आखिरी सजावट दे रहे हैं....एक और चढ़ाई....और सारा रुख महासागर इसलाम का क्षेत्र बन जाएगा....और मुबारक, इस आखिरी मोर्चा के आखिरी जंग के आखिरी वक्त तू काफिरों का साथ देगा ?...हिन्दुओं की सोने की थाली में लोहे की मेंख जैसी मदुरा की सल्तनत का खात्मा हो जाए, यही तेरी मर्ज़ी है ?...मैं एक औरत... सुलतानों की शाहज़ादी और सुलतानों की सुल्ताना...अपने ख्वाब के खातिर अपनी जात को मिट्टी में मिला देने के लिए तैयार खड़ी है, ऐसे वक्त तुम अपने एक मामूली वैर को नहीं भूल सकते ?....आखिर तुमने खोया ही क्या ?...एक बूढ़ा बाप...वह बुड्ढा...क्या हमेशा बैठा रहता ?....कि जिसके लिए हमदीनों के सात सौ सालों के ख्वाब को और दो सौ सालों की मेहनत पर तुम पानी फेर देना चाहते हो...थोड़ी-सी दौलत...उसके बजाय मैं तुम्हें आधी सल्तनत दे रही हूँ...एक नादान जवान छोकरी.... उसके बदले में मैं तुम्हें एक सुलतान की शाहजादी और दूसरे सुलतान की सुलताना दे रही हूँ...अरे सारी सल्तनत की तमाम खूबसूरत छोकरियाँ तुझे सौग़ात में दे रही हूँ....मुबारक !"

"बेगम, खामोश ! अगर तुम इसी तरह आगे बोलती रही तो मेरी खिलाफत मुआफी बन जाएगी। मुझे हमदीनों या गैरदीनों की फतह की कोई फिक्र कभी सताती नहीं। मैं यही चाहता हूँ कि मनुष्यमात्र चाहे वह सुलतान हो चाहे पहाड़ियों में भटकनेवाला आदमी, लेकिन वह अमन-चैन से रहे। तुम्हारे इन सभी प्रलोभनों पर मैं एक पल भर के लिए भी विचार नहीं करूँगा, विचार करना नहीं चाहता और क्यों नहीं करना चाहता, यह मुझसे अच्छी तरह तुम जानती हो, खुद तुमने उसका कारण मुझे बतला दिया है— एतबार का अभाव। मुझे तुम्हारे एक भी शब्द पर जरा भी एतबार नहीं है !"

"तो क्या मेरी बातचीत बेकार गई ? तुम पर किसी बात का असर न हुआ ?"

"नहीं ! और उसका कारण जानना चाहती हो ?"

"कह दो वह भी।"

"दौलताबाद के सूबेदार इस्माइल मुख ने फिरोज की मदद के लिए पहाड़ी रास्ते से कुमुक भेजी है, यह कुमुक आज या कल तक इन पहाड़ियों में पहुँच जाएगी। और तुम इसलिए यहाँ आई हो कि मैं उस कुमुक को सही-सलामत निकल जाने दूँ। यह तुम्हारा सीधा स्वार्थ है और इस स्वार्थ पर परमार्थ की चद्दर ढँकने के लिए तुम मजबूर हुई हो। अगर मैं बेवकूफ होता, तो...तो बेगम, सुल्तान फिरोज और तुमने मिलकर मेरा हाल कैसा बनाने की कोशिश की थी ? मेरे बाप जैसा...इकबाल जैसा...या आदिल-शाह असली जैसा ?...जरा इस बात का भी खुलासा करती जाओ !"

"तुम्हें मुझ पर एतबार ही नहीं है, इसीलिए तुम इस तरह के उल्टे खयालात रखते हो। भला तुम मुझसे इतना तो पूछते कि ये सब बातें तो गुज़रे हुए कल की हैं, आज की घड़ी में ऐसा कोई सबूत दो, जिससे मुझे तुम पर एतबार आ जाए ! कुछ पूछोगे भी ? या पागल की तरह, तुम सभी बातों के लिए इन्कार ही करते रहोगे ?"

अपने कथन का क्या असर हुआ है, यह देखने के लिए अनवरी बेगम पलभर मुबारक की ओर ताकती रही। फिर उसने कहा—"विगत कल तक घटित कई मामलों में से एक मामला ऐसा है कि मुझ पर यकीन रखने के सबूत के तौर पर मैं तुम्हारे लिए एक सौगात लाई हूँ। उस पालकी को इस तरफ मँगवाओ !"

मुबारक का संकेत पाकर उसके चार सिपाही पालकी को उठाकर ले आए।

सिपाहियों ने पालकी मुबारक के पास रख दी और अनवरी बेगम ने पालकी का पर्दा आधा उठा दिया।

मुबारक देखता रह गया ! उसके अपार विस्मय के बीच रोशन पालकी से नीचे उतर आई !

उन दोनों को अकेले छोड़कर अनवरी बेगम बड़ी चतुराई से वहाँ से खिसक गई—"मैं जरा आराम करती हूँ। तुम्हें बहुत-सी बातें करनी हैं, चैन से कर लो।"

२२ ★ अंधकार की छाया

अपनी आँखों देखे दृश्य को भी मुबारक मानो सच न मानता हो, इस प्रकार अवाक् होकर रोशन को देखता रह गया ! वह अनवरी बेगम को सिर से पैर तक जानता था और फिरोज़ को भी अच्छी तरह जानता था। इसलिए वह अनवरी बेगम की इस अप्रत्याशित उदारता के लिए तैयार न था।

रोशन इस तरह उसके सामने खड़ी थी, जिस तरह एक कठपुतली खड़ी रहती है। उसका चेहरा इतना सूखा, फीका और भावहीन था मानो उसे काठ से कुरेद कर बनाया गया है। सिर्फ उसकी आँखें ही कुछ कह रही थीं—अपनी सफर के बारे में अनवरी बेगम ने और चाहे जो कुछ कहा हो, यहाँ आने का इशारा तो नहीं ही किया था। रोशन को भी निपट आश्चर्य हुआ था।

"रोशन, रोशन !" मुबारक गुनगुनाया। यह शब्द उसके गले से इस प्रकार निकला जिस प्रकार, रेगिस्तान में किसी प्यासे मुसाफिर ने कठिनाई से 'पानी' 'पानी' पुकारा हो ! 'रोशन', 'रोशन' उसके कण्ठ से निकला और वह मानो रोशन से नहीं, अपने आपसे बातें कर रहा था—जैसे अपनी आँखों के देखे हुए दृश्य का दिलासा अपने दिल को दिला रहा था !

मुबारक की आँखों के सामने से पहाड़ियाँ खिसक गईं, धरती खिसक गई, वनान्तर खिसक गए। उसे अपने से कुछ दूर खड़े हुए अपने सिपाही भी

वह तो तेरे ही लिए बचा रह गया है और मुझे तो फांसीघर का अनुभव हो चुका है।"

"अगर तेरा वह अनुभव पूरा हो चुका होता तो, मुझे यहाँ आने की दिक्कत न उठानी पड़ती। और इसके बाद में आनेवाली मुसीबतें भी मेरे सिर पर न मँड़राती।"

"सुल्तानों की पनाँहगीर के लिए भला, मुसीबतें कैसी ? एक तो सुल्तान की पनाहगीर और दूसरे सुल्ताना की मेहरबानी ! फिर तेरे लिए कैसी मुसीबत ?"

"मुसीबत किसे कहा जाय और किसे न कहा जाय, इस विषयक तेरा अनुभव, मेरे किस काम का ?"

"यह भी सच है रोशन, मुसीबत किसे कहा जाय, और किसे न कहा जाय, इस बारे में औरत और मर्द के खयालात हमेशा जुदा होते हैं। दूसरों की क्यों की जाय ? अपनी और तुम्हारी ही बात क्यों न करें ? सच तो यह है कि सिर्फ मैं एक ही तेरी मुसीबत का कारण हूँ, ठीक है ?"

"हाँ इस बारे में मेरे और तेरे दिल में तनिक भी शक नहीं है, यह अच्छी चीज़ है। इस एक बात में हमारे खयालात मिलते हैं। तू ही मेरे लिए बड़ी से बड़ी मुसीबत है, अभिशाप है। इसकी तुलना में दूसरी कोई आपदा मुझे वृहत्तर प्रतीत नहीं होती !"

"तेरी, अनवरी बेगम की और सुल्तान फिरोज़ की सारी मेहनत नाकामयाब हुई, सच है ? अगर एक मुजरिम के तौर पर मैं फाँसी के पंजे में फँस जाता तो यह सब कुछ न होता। उस सूरत में, मेरे बाप की सारी दौलत भी तुझे मिलती, तेरे वालिद की हत्या के उस झूठे इलजाम के ऐवज, जो मुझ पर शैतानों ने लगाया है ! एक औरत इस हद तक नीच बन सकती है, यह मुझे उस वक्त पहली बार मालूम हुआ रोशन ! फाँसीघर के अनुभव के पूर्व, मैं मूर्ख था, महामूर्ख था ! मैं अपनी आँखों और कानों के भरोसे पर यह मानता आया था कि औरत खुदा की मेहर का टुकड़ा है, लेकिन फाँसी घर की उस एक रात का अनुभव पाकर मैं आमिल हो गया, बुद्धिमान् बन

गया। उस एक रात ने मुझे उतनी तालीम अता फरमाई है, जो कयामत तक काफी है।"

"उस तालीम के दौरान में, अभी भी, मुबारक, तुम्हें एक बात सीखनी बाकी है।"

"तू बताएगी तो, वह भी पूरी हो जाएगी।"

"एक औरत का होनेवाला शौहर अगर उस औरत के वालिद का खून करता है और उस खून के बाद, अनाथ वह औरत एक नापाक शख्स के हवाले होने को मजबूर हो जाती है, तब उस घाव के लिए औरत किसी दिन माफी नहीं देती।"

"औरत के दिल और दिमाग़ का नाप लेने की कोशिश हरगिज न करनी चाहिये। कौन कह सकता है, कब उस पर भूत सवार हो जाता है, कब कोई जिद उसे लग जाता है—यह सब समझने की कोशिश न करने में ही अपना हित है।"

"मुबारक, तुम जिस औरत की बात करते हो वह औरत तो गलियों में टके की तेरह मिलती हैं, समझे? तू जिस रोशन की चर्चा करता है, उस रोशन के वालिद के प्यार को तूने नहीं परखा है। उस वालिद का तूने खून किया है। उस खून से अनाथ बन गई रोशन की ओर विलासी व्यक्ति के पंजे बढ़े हैं। उसके बाद रोशन के वालिद-जैसे मौसा का भी कत्ल हुआ। सारी जवाबदारी तुम्हारी है। और ख़ुदा के दरबार में कयामत के दिन तुझे जवाब देना पड़ेगा। लेकिन इतने लम्बे वक्त तक चुपचाप बैठी रहे, रोशन ऐसी नहीं है।"

बिच्छू डंक मारता है, नागिन फुंकारती है, बाघिन उछलती है, तब उनके वेग को कोई रोक नहीं सकता।

क्षुब्ध रोशन दो कदम आगे बढ़ी और अपनी छातियों पर छाए हुए वस्त्र में छिपा हुआ एक खूनी खंजर उसने बाहर निकाला और मुबारक पर प्रहार किया।

मुबारक ने जल्दी से उसका हाथ पकड़ लिया और झटक दिया, लेकिन

दूसरे स्थान पर चोट लग गई और उसमें से खून बहने लगा। फिर से मुबारक ने रोशन का हाथ पकड़ा।

"रोशन......" मुबारक चिल्लाया, मानो इस बिफरी हुई रोशन को मुबारक न पहचानता हो।

उसने होठ पीसे और अपने लहू से लाल अपने कपड़ों को देखा। दूसरे ही क्षण उसने इशारा किया और उसके साथी दौड़कर आए।

मुबारक नीचे गिर पड़ा।

उसके साथियों ने रोशन को पकड़ लिया।

एक साथी ने मुबारक के कपड़े खोल दिए। छोटी पतली कटार मुबारक के दाहिने बाजू में लगी थी। घाव गहरा था और लहू बह रहा था। लेकिन घाव खतरनाक नहीं था।

रोशन दाँत पीसती हुई देखती रही। कटार पर लगा हुआ लहू उसने अपने कपाल पर लगाया।

"वालिद, मेरे वालिद !" उसने तीखी आवाज़ में कहा—"अफ़सोस कि मैं तुम्हारे कातिल को उसके गुनाह की पूरी सजा न दे सकी। लेकिन अब तुम कयामत तक चैन से रहना। तुम्हारे कातिल का खून अपनी पेशानी पर लेकर मैं तुम्हारी पनाह में आती हूँ।"

एक साथी ने कहा—"सरदार, इसे कत्ल करने का फैसला कीजिए। इसने मेज़बान से धोखा किया है। इसने मेहमानदारी की शान को लजाया है। सरदार की जान लेने की कोशिश का भारी गुनाह इसने किया है।"

एक साथी के सहारे मुबारक बैठ गया। दूसरा साथी, घाव के बहते लहू को बंद करने के लिए आग जलाकर अपनी तलवार गरम करने लगा, ताकि घाव को उससे दाग दिया जाय।

तीसरे साथी ने कहा—"सरदार, मुजरिम की संगिनी औरत को भी गिरफ्तार करना चाहिए।"

मुबारक ने उत्तर दिया—"अनवरी बेगम को गिरफ्तार करो और मेरे खून की कोशिश करनेवाली इस छोकरी के न्याय के लिए जिर्गा बुलाओ। जिर्गा ही इसका इंसाफ करेगा।"

रोशन ने होठ काटकर कहा—"इंसाफ करेगा ? अपने वालिद के कातिल पर हथियार उठानेवाले का इंसाफ इस दुनिया में किसी ने किया है ? बुलाओ, अपने ज़िर्गे को। मैं भी जिर्गे की माँग करती हूँ। वह मेरी बात भी सुनेगा। न सुननी चाहिए, तब भी उसे सुननी पड़ेगी।

एक ओर मुबारक की शुश्रूषा होने लगी। दूसरी और नौबत बजने लगी। इस नौबत की आवाज़ सुनकर, चारों ओर से लोग दौड़ते हुए आए। देखते-देखते मुबारक के चारों ओर हथियारबन्द साथी जमा हो गए।

"अज़ीजो, इस वक्त जो घटना हुई है, सब को उसका हाल बताया जाएगा। उसके बाद आप लोगों की अलग-अलग मसनदें जिर्गे में बैठेंगी।"

"जिर्गा ?"

"हाँ जिर्गा ! आप एक कातिल का इंसाफ करेंगे।" रोशन बोली।

"कातिल ? कौन कातिल ?"

रोशन ने मुबारक की ओर ऊँगली उठाई—"ये रहा, कातिल ! इसने मदुरा के बाजार में इकबाल पिंडारी का सामना करने का ढोंग रचकर, मेरे वालिद की हत्या की है। उस हत्या के कारण सुलतान ने इसे फाँसी की सजा दी थी। मगर भागकर यह यहाँ चला आया। यहाँ अनायास इसकी मेरी मुलाकात हो गई। मैंने इस पर हमला किया और अपने बाप का बदला लेना चाहा। मैंने कोई गुनाह नहीं किया। कातिल यही है !" रोशन ने फिर से मुबारक की ओर ऊँगली उठाई।

"बदला लेने का काम मर्द का है, औरत का नहीं।" एक मसनदी ने कहा—"अगर तुम्हारी तरफ से किसी मर्द ने यह कोशिश की होती......."

"सब्र करो !" रोशन बोली—"मेरा कोई भाई नहीं, कोई चाचा, कोई मामा नहीं। बदला लेनेवाले मेरे भैया ज़िंदा थे, लेकिन...लेकिन इस कातिल के साथी नागरनायक की साजिश से वह भी मार डाले गए !"

मसनदी चुप रह गए, उन्होंने मुबारक की ओर देखा।

मुबारक ने कहा—"इस बात का फैसला मैं खुद ही कर सकता था, लेकिन अपने पर लगाए गए इस इल्जाम की जाँच करने के लिए मैंने जिर्गा

बुलाया है। मेरा जवाब यही है कि इल्जाम एकदम गलत है। यह औरत मेरी मँगेतर थी। इससे मेरी शादी होनेवाली थी। इसलिए इसके वालिद के खून करने का, मेरे लिए कोई कारण न था।"

"यह तुम कहते हो ?"

"हाँ मैं कहता हूँ। और इस पर तुम्हें विचार करने का मौका मिले, इसलिए दो-तीन सवाल तुम्हारे सामने रखता हूँ। तुम्हारे वालिद का खून करने में मेरा प्रयोजन क्या ? तुमने कहा, उनकी दौलत के लिए। लेकिन तुम से मेरी शादी हो जाने पर, वह दौलत तो मुझे मिल ही जाती। इस एक सवाल पर तुम गौर करो। दूसरा सवाल भी तुम ध्यान से देखना, अगर मैंने तुम्हारे वालिद का खून इकबाल को खुश करने के लिए किया, तो इकबाल क्यों मेरे वालिद का खून करता और मेरी दौलत लूट लेता ? तीसरा सवाल यह है कि अगर सुलतान फिरोज़ को खुश करने के लिए, मैंने तुम्हारे वालिद का खून किया तो सुलतान फिरोज़ मुझे हाथी के पैरों नीचे कुचलने का हुक्म क्यों देता ?"

रोशन खामोश रही।

"और एक और बात—सुल्तान फिरोज़ से जाकर कह देना कि सुल्तान के काम एक औरत से नहीं हो सकते—फिर चाहे वह तुम हो, या अनवरी बेगम ! उनको पूरा करने के लिए खुद सुलतान को ही आना पड़ेगा !"

"और अगर सुलतान की सुलताना आए, तो क्या नहीं चलेगा ?" पीछे से आवाज़ आई।"

सब ने चौंककर पीछे देखा तो, अनवरी बेगम खड़ी थी। उसके साथ में सैयद मंजूरशाह था और पीछे-पीछे लगभग एक सौ हथियारबंद पिंडारी थे।

"गिरफ्तार करो इस नापाक बागी को और इन मसनदियों को।" अनवरी बेगम ने हुक्म दिया।

मंजूरशाह ने कहा—"मसनदी, खबरदार, कोई हथियार उठाए और नाहक खून बहे, इसके पहले मेरी बात सुनकर, समझ लो !"

"कौन ? सैयद मंजूरशाह ?"

"हाँ मुबारक मियाँ ! अब सिर्फ सैयद ही नहीं, मगरूर का सुलतान सैयद मंजूरशाह !"

इस बात को सुनकर सब को आश्चर्य हुआ।

मंजूरशाह कहने लगा—"मसनदियो, मेरी बात सुनिए। मगरूर के पहाड़ी पिंडारियो, मेरी बात सुनिए। इस नापाक और नालायक बागी के लिए हमें आपस में लड़ने का कोई मतलब नहीं। मदुरा के सुलतान से हमारा क्या झगड़ा था ? मगरूर की आज़ादी का। मगरूर पर होने वाले अन्याय के बारे में मगरूर के खिलाफ इसीलिए हमारी बगावत खड़ी हुई थी। अब इसका फैसला हो गया है—सुलतान फिरोज़ मगरूर की आज़ादी को मंजूर करता है। और अपने सारे हकूक छोड़ता है। आज से मगरूर की सल्तनत मदुरा की सल्तनत से अलग होती है। और पहला सुलतान मुझे बनाया गया है, इसीलिए पिछले मामलों की इंसाफ करना मेरा काम है। सुलतान हमारी दोस्ती चाहता है और मैंने उसकी दोस्ती को कबूल किया है। इस दोस्ती का पहला सबूत बागी मुबारक को पकड़ कर सुलतान के हवाले कर देना है।"

कुछ देर चुप रह कर मंजूरशाह दो कदम आगे बढ़ा और बोला—"जानते हैं, यह बलवाखोर कौन है ? रोशन ने आपको बहुत कुछ बतला दिया है। ज्यादा जानना चाहते हो, तो अनवरी बेगम से पूछिए। अनवरी बेगम ने जो प्रस्ताव इसके सामने रखा था अगर इसने उसे स्वीकार किया होता, तो आप सबका फायदा हो जाता। आपकी जमीनें वापस मिल जातीं और सभी हमदीन चैन से रहते। लेकिन जानते हैं, इसने उस प्रस्ताव को क्यों नामंजूर किया ?"

"किस लिए ?"

"इसलिए कि यह ज़ुद्दीनों का जासूस है। यह काफिरों से मिला हुआ है। यह इस देश पर हिंदुओं का राज्य चाहता है और इस मुल्क की मस्जिदों और मदरसों को उखाड़ देना चाहता है। और यह इस देश में लहरानेवाला और एहसानशाहों की जवाँमर्दी से ऊँचा उठा हुआ आधे चाँदवाला हरा

झंडा उतारकर फेंक देना चाहता है, क्योंकि यह इस मुल्क पर उस लँगोटिया साधु और उसके विजयधर्म का भगवा झंडा फहराना चाहता है।"

कोई कुछ न बोला। मंजूरशाह कहता गया—

"मुबारक मियाँ, यह जिर्गा है? तुमने ही इसे बुलाया है, न? अब जवाब दो।"

मुबारक धीरे-धीरे उठकर खड़ा हुआ और बोला—"क्या जवाब दूँ? मैं देख रहा हूँ कि अनवरी बेगम तुम तक पहुँच गई हैं।"

"इसमें अनवरी बेगम की कोई बात नहीं। बात हमदीनों की है। तुम......तुम विजय धर्म के साथी हो या नहीं?"

"मैंने इस बात को कभी नहीं छिपाया, मंजूरशाह! यह बात जग-जाहिर है और मैं फिर से इसकी घोषणा करता हूँ। जब मैं इस टोली का अगुआ बना था, तब भी मैंने इस बात की घोषणा कर दी थी। मंजूरशाह, यह बात भी सच है कि इस दुनिया में मैं और वह एक साथ नहीं रह सकते। खुदा के दरबार में भी इतनी जगह नहीं कि हम दोनों साथ-साथ रह सकें। मंजूरशाह, आज तुम मेरे खिलाफ आवाज़ उठा रहे हो और जिर्गे से मेरा इंसाफ चाहते हो, लेकिन भूल न जाओ कि कल तक तुम भी मेरे साथ में थे और मेरे हमराही थे?"

"झूठ, एकदम झूठ!" मंजूरशाह ने अनवरी बेगम की ओर देखा—"बेगम साहिबा, एकदम झूठ है। मैं सैयद......ऐसे मुरीदेशैतान का हमराही कैसे हो सकता हूँ?"

अनवरी बेगम ने कहा—'यह तो कहेगा ही, क्योंकि यह इन सभी भोले लोगों को उलटे रास्ते पर ले जाना चाहता है। लेकिन ये लोग ऐसे नहीं हैं कि ग़लत राह पर चलें। ये जानते हैं कि हमारा मज़हब ऐसा है कि उसके बंदे को दूसरे मज़हब की ओर देखने की जरूरत नहीं पड़ती और मेरे और तुम्हारे बीच तो किसी तरह की उलझन नहीं पड़ सकती और जब मुझसे तुम्हारा कोई वैर नहीं तो सुलतान फिरोज़ से क्योंकर हो सकता है? सब एहसानशाहों के गौरव और अरमानों के खाकसार बन्दे हैं। हमारी शमशीर

को खुदा की शान मिली है। सारे मुल्क की आँखें हम पर लगीं हैं। खलीफाओं की दुआएँ हमारे साथ हैं। मंजूरशाह, आप क्योंकर एक नापाक और नालायक बलवाखोर की बातों का जबाब दे रहे हैं? आपके हाथ में मगरूर की सल्तनत की शमशीर है। तुम्हारे बाजू में सल्तनत की हुकूमत की ताकत तैयार खड़ी है। याद रखिए, यह बलवाखोर बाप का बलवाखोर बेटा है। यह तो अकेला है, मगर साँप का फन है, इसे पैरों के नीचे कुचल ही देना चाहिए!"

"मगरूर की सल्तनत के पिंडारी दोरंगियों को मैं हुक्म देता हूँ कि इस बलवाखोर को कैद कर लो। और इसके हाथ-पैर बाँध कर, इसे अनवरी बेगम के सुपुर्द कर दो। सुलतान फिरोज इसको दी हुई सजा पर फिर से अमल करेंगे।"

"और रोशन का क्या किया जाए?"

"रोशन......रोशन के वालिद मेरे रिश्तेदार थे इसलिए रोशन की सलामती मेरी जवाबदारी बनेगी। यह हमेशा मेरे साथ रहेगी।"

मंजूरशाह ने हाथ उठाया, उसके इशारे पर उसके एक सौ सिपाही आगे बढ़े। मुबारक के साथी किंकर्त्तव्यविमूढ़-से देखते रह गए। मंजूरशाह के सिपाहियों ने मुबारक को बाँध लिया और उसके साथियों के हथियार छीन लिए।

मंजूरशाह बोला—"ले जाओ, रोशन को। इसकी शादी की तमाम तैयारियाँ जल्दी की जाएँगी। यह मेरी बेगम बनेगी। खुद अनवरी बेगम इस शादी की रश्म अदा करेंगी।"

फिर अनवरी बेगम की तरफ मुड़कर मंजूरशाह कहने लगा—"चलिए सुलताना साहिबा, अपना अधूरा समझौता पूरा करेंगे और मदुरा के सुलतान के पास मगरूर के सुलतान की तरफ से बिरादरी का पैगाम भेजेंगे।"

लेकिन मंजूरशाह की बातों पर अनवरी का ध्यान न था। उसके कान हवा के सुरों को सुन रहे थे। उसकी आँखें दूर क्षितिज की ओर टकटकी लगाकर देख रही थीं।

"सुनिए ! ज़रा ध्यान से सुनिए !" वह बोला—

दूर-दूर से हवा में एक कम्पन सुनाई दे रहा था, जैसे सैंकड़ों घोड़े आ रहे हों !

वह कम्पन स्वर निकट और अधिक निकट आया। और भी निकट आया !

अब तो पहाड़ियों की धारों पर जैसे सूरज चमक रहा हो, वैसे भाले और शमशीरें चमकने लगीं।

उनके पीछे घुड़सवार थे।

फिर पहाड़ी ढाल पर वह सेना नीचे उतरने लगी और पहाड़ी की पीठ के पीछे ओझल हो गई !

"फौज ?......किसकी फौज ?" मंजूरशाह के ओठ काँपने लगे।

अनवरी बेगम ने कुछ जवाब न दिया।

फिर से पहाड़ी के उठाव पर फौजें नज़र आईं और समगति से चलने वाले घोड़े नज़र आए।

अब तो साफ दिखाई दे रहा था—एक हज़ार सैनिकों की यह तुरुष्क सेना थी। एकदम समीप आ गई थी। लेकिन यह किसी की समझ में न आया कि यह यहाँ क्यों आ रही है ?

सेना के आगे-आगे पहाड़ जैसा एक आदमी था। अनवरी बेगम ने उसके पास जाकर पूछा—"यह किसकी फौज है ? कहाँ से आ रही है ? और कहाँ जाएगी ?"

"दौलताबाद के सूबेदार इस्माइल मुख की फौज है यह। मदुरा के सुलतान फिरोज सूबेदार साहब के दामाद हैं। उनकी मदद के लिए जा रही है। आपकी तारीफ ?"

"मेरा नाम अनवरी बेगम है। मैं मदुरा की सुलताना हूँ।"

"दौलताबाद के सूबेदार का हुक्म है कि अगर मगरूर के पहाड़ी इलाके में रास्ते में अनवरी बेगम से मुलाकात हो जाए तो फौज इन्हें सौंप देना। इसलिए यह फौज मैं आपके हवाले करता हूँ।"

अनवरी बेगम ने फौज को देखा। पिंडारियों को देखा। मंजूरशाह की ओर देखा। मुबारक की तरफ देखा। रोशन को देखा।

और उसके चेहरे पर लहू को जमा देनेवाली हँसी छा गई—

"बहादुर मुखिया ! तुम्हारा नाम ?"

"खाकसार को मलिक अबूराज़ी कहकर याद फरमाया जाता है।

"तुम......तुम वारंगल के सूबेदार तो नहीं ?"

'जी, वे मेरे वालिद हैं। मैं दौलताबाद के सूबेदार की फौज का सिपहसालार हूँ। खाकसार सूबेदार साहब इस्माइल मुख की एक दुख्तर से शादी शुदा है।

"बहुत अच्छा। मेरे खाविंद सुलतान से तुम्हारी बहुत पटेगी। और अगर तुम्हारी मदद और जांनिसारी रही तो हम शम्बूरराय को शिकस्त देनेवाली विजयनगरी सेना के राई-राई जितने टुकड़े कर देंगे।"

"सुलताना साहिबा ! तुर्कों के सामने काफिरों की क्या गिनती ? पिछले दो सौ सालों में क्या उन्होंने कहीं मुकाबला किया है ? उनकी किस्मत में तो हमेशा तुर्कों की गुलामी ही लिखी है।"

"आमीन !"

"आमीन !"

"मलिक, तुम्हें मेरा हुक्म है कि इन सब को कैद कर लो, अगर कोई सामना करे तो उसे कत्ल कर डालो ! मारूर का मुल्क और वहाँ की पहाड़ियों पर सुलतान फिरोज की तरफ से कब्जा करो। कोई मुकाबला करे तो फौरन कत्ल कर डालो।"

"मुझे......मुझे......मुझे भी बेगम साहिबा ? हमारा समझौता ? ......आपका वायदा......"

"मेरा वायदा ?......मेरा वायदा एक बेवकूफ को मिला था......अरे बेवकूफ मंजूरशाह......तुझे इतना भी समझ में न आया कि एहसानशाह की औलाद किसी फकीर के साथ सल्तनत का हिस्सा बँटाती होगी ?......मैं तो तुझे खुश रखना चाहती थी, दौलताबाद की कुमुक आने तक। अगर

मुबारक मान लेता तो उसे भी खुश रखती। लेकिन इसे या तो मेरा भरोसा नहीं था या यह मेरा खेल समझ गया। तू नहीं समझा...हा...हा! मलिक अबूराजी! देख लो इस फकीर को, यह बेवकूफ......सुलतान फिरोज़ की आधी सल्तनत का मालिक बनना चाहता है! इसे ज़रा कसकर बाँधना!"

इस बीच पिंडारियों में कत्लेआम मच गया। मगरूर की पहाड़ियों में उनका भयंकर संहार हुआ। और उस कहानी को कहने के लिए बहुत थोड़े पिंडारी अपनी जान बचाकर भागे!

बाकी सभी, दो सौ तैंतीस पिंडारी वहीं सो गए, कयामत तक जिब्रिल की आवाज़ की राह देखने के लिए।

"ले चलो इस मुबारक को! जब कोई सुलतान अपने तख्त से उतरकर किसी को अपना बिरादर मानकर बात करे तब उससे किस तरह बात करनी चाहिए, इसे इतनी भी तमीज़ नहीं। यह सुलतान फिरोज़ का सज़ायाफ्ता भगौड़ा कैदी है। इसकी सजा पूरी होगी। और सुलताना से किस तरह का व्यवहार किया जाए इतनी तमीज़ भी जिसे नहीं, ऐसे इस सैयद फकीर को भी ले चलो! मलिक अबूराजी, इन तीनों कैदियों से ज्यादा कीमती दूसरी कोई भेंट तुम मदुरा के सुलतान को नहीं दे सकोगे!"

२३ ★ मुबारक की मुक्ति

मौत के उस मैदान पर रात छा गई। खा-पीकर सिपाही आराम करने लगे।

मौत के उस मैदान से भयंकर आवाजें आ रही थीं। गिद्ध, उल्लू, सियार और दूसरे जंगली जानवर तरह-तरह की अपनी आवाजों से उस मैदान की, मसान की शांति को बहुत खौफनाक बना रहे थे।

घने पेड़ों की घटाएँ अँधियारी रात को और अँधियारी बना रही थीं।

बेगम और मलिक कैदियों की नजरबंदी की चर्चा कर रहे थे। उनकी बहस का विषय यह था कि किस तरह इन पर ज्यादा सख्ती की जाए और इन्हें कड़े से कड़े पहरे में रखा जाए।

आखिर किस की अक्लमंदी काम आई, कौन जाने, मगर इंतजाम यों हुआ कि मलिक अबूराजी और अनवरी बेगम की चारपाइयों के बीच में एक पाए से रोशन का एक हाथ और दूसरे से दूसरा हाथ बाँधा जाए और फिर चारपाइयाँ जितनी दूर रखी जा सकें, उतनी दूर रखी जाएं!

बेंत-जैसे एक झाड़ की डालियाँ स्थितिस्थापक होती हैं और उतनी ही लचीली भी होती हैं। उसी झाड़ की ऊपरी डालियों को दो-दो आदमियों ने अपने जोर से उतना झुकाया जितना झुक सके और फिर एक डाली से दोनों हाथ और सामने की झाड़ की दूसरी डाली में दोनों पैर बाँधे गए। इससे

डालियाँ जब कमान की तरह उछलकर खिचती हैं, तब कैदी के हाथ पैर भी खिचते हैं। फिर तो उसके भाग जाने का कोई भय नहीं रहता। वह भागने की कोशिश भी नहीं कर सकता।

मुबारक और मंजूरशाह को इसी तरीके से बाँधा गया।

रात हुई। अर्ध रात हुई। रात सो गई। पवन सो गया। जल सो गया। लोग सो गए। सब तरफ शान्ति छा गई!

मुबारक को नींद नहीं आ रही थी। उसकी कलाइयों और उसकी पिंडलियों पर खिचाव का भारी जोर पड़ रहा था!

बेंत-जैसी वे डालियाँ अपने झुकाव को छोड़कर मूलस्थिति में आने के लिए जोर मार रही थीं। यही जोर कैदी की कलाइयों और पिंडलियों को अनन्त पीड़ा पहुँचा रहा था। मुबारक यह अनुमान लगा रहा था कि मरने से पहले, ज्यादा से ज्यादा कितनी पीड़ा पहुँचाने पर आदमी बेहोश हो जाता है!

उसका एक-एक अंग, एक-एक जोड़ विकराल शक्ति द्वारा, खींचे जा रहे थे! बड़े-बड़े हाथी मानो उसके हाथ-पैरों पर खड़े थे। भूखे-प्यासे बाघ और चीते मानो उसके हाथ-पैरों को चबा रहे थे।

बड़ी वेदना के कारण उसे बड़ी प्यास लगी थी और कण्ठ सूखा जा रहा था।

वह झाड़ तो जैसे कमान बन गया था। दोनों ओर की डालियाँ अपना अपना जोर लगा रही थीं। उसका शरीर एक लकीर की तरह खिचा हुआ था। हाथ-पैरों में अंगारे जल रहे थे।

मुबारक करवट नहीं बदल सकता था। चालीस हाथ ऊँचा वह बँधा था और अपनी आँखों को तनिक भी झुका कर नहीं देख सकता था। लेकिन वह नीचे की आवाजें सुन रहा था।

धीरे-धीरे नीचे वाले सैनिक सो गए थे। कहीं कहीं से नकवों की आवाजें आ रही थीं।

अपने कैदियों को इस तरह लटकाने का तरीका तुर्कों ने भील-मीणों से सीखा था। भील इसे अनादि काल से जानते थे। तुर्कों ने मीणों के कई आचार-विचार भी अपना लिए थे। कैदियों को रखने का यह तरीका उन्हें बहुत पसन्द आया था। इसमें न चौकी की ज़रूरत थी न पहरे की। कैदी सलामत रहता था और हरगिज भाग न सकता था। या तो वह वेदना-वश वेसुध हो जाता या मर जाता। तुर्कों को इस से कहीं कोई हानि नहीं थी।

इसलिए मगरूर की पहाड़ियों से, बेंत जैसे झाड़-पेड़ों के जंगल में से होकर मलिक अबूराजी अपने कैदियों को इसी भाँति मदुरा ले जा रहा था।

अपने तम्बू में वह चैन से सोया था। लगभग एक हजार घुड़सवार दोरंगी और जाँनिसार उसके आसपास फैले पड़े थे। पिण्डारियों का खात्मा हो चुका था और मलिक अबूराजी यह मानने को राजी न था कि एक भी पिण्डारी बच कर भाग सका है। शायद कोई बचा-खुचा अपनी जान लेकर भागा हो, तो लौट कर इधर देखने की उसकी हिम्मत न थी।

दो दो सुल्तानों के बाजुओं में चुभनेवाला मगरूर का अड्डा उसने साफ़ कर दिया था। हाँ अगर यह पिण्डारी सावधान हो जाते, पड़ौस की पहाड़ियों में बिखर जाते तो महा मुसीबत माथे पर मँड़राती, मलिक के हज़ार सिपाहियों में से एक भी जिन्दा न लौटता!

लेकिन अनवरी बेगम ने इस बात की ज़िम्मेदारी ली थी और इसे पूरा किया था। उसने यह तरीका अपनाया था कि दौलताबादी सेना का, पहाड़ी इलाके में पिण्डारियों से सामना न होकर, खुले मैदान में हो, जहाँ मगरूर बसा हुआ है। वहाँ आसानी से सभी पिण्डारी मैदान में मिल जाएंगे।

अनवरी बेगम ने और कौन सा उपाय रचा, यह तो वही जाने, उसके बारे में बात करने के लिए मदुरा तक की लम्बी राह पड़ी थी।

आज पिछले दस सालों से जिस काम को कोई पूरा न कर सका था, जो काम खुद मलिक काफूर और खुशरू खाँ के लिए भी कठिनाइयों का कारण बन गया था और मलिक काफूर को तो मगरूर को छोड़कर, कावेरी के किनारे किनारे दो सौ कोस का चक्कर काटकर, भी रंगून के निकट

कावेरी में उतरना पड़ा था। खुशरू खाँ गुजराती और मलिक गाजी दोनों की कूच को मगरूर ने रोक दिया था। ऐसे मगरूर के मगरूर पिण्डारियों को मलिक अबूराजी ने कत्ल कर दिया था, लेकिन कत्ल और फतह से पूर्व के दाँव-पेचों का यश अनवरी बेगम को मिलना चाहिये।

हाँ, हाँ, मगरूर का पतन हुआ था। जिसे मगरूर ने मलिक काफूर के भी दाँत खट्टे कर दिये थे। खुशरू खाँ के पैरों में बेड़ियां डाल दी थीं। मदुरा के सुल्तानों की बगल में हमेशा खंजर की नोक छुआई थी, आज इसी मगरूर का दिमाग़ मिट्टी में मिल गया था।

असह्य पीड़ा मुबारक को पीड़ित कर रही थी। दूसरे किसी भी आदमी को यह बेहोश कर देती लेकिन मुबारक को अभी होश था।

उसके अंग अंग में, रोम रोम में, वेदना की वह्नि सुलग रही थी। उस वह्नि में से जैसे धुँआ उठ रहा था और उस धुएँ में से जैसे एक मुख की रचना हो रही थी। होठ दबाकर मुबारक ने इस मुख को एकटक देखा!

वही सफेद बाल...बुढ़ापे की वही रेखाएँ....भाल और गाल पर झुर्रियाँ...वही लम्बा गोरा चेहरा....वही लम्बी नाक...वही चौड़ा कपाल ...वही मधुर हँसी...यही उसके वालिद का चेहरा !......

यही अकाल मृत्यु प्राप्त उसके वालिद का चेहरा। यही शहीद का चेहरा...आज भी जैसे अपने कातिल का इन्तज़ार कर रहा है...।

जैसे यह चेहरा ध्यानपूर्वक मुबारक को देख रहा था....और उसकी वेदना को शोषित कर रहा था। उसके वालिद अपने कत्ल का बदला ले रहे थे।

मुबारक क्योंकर पीड़ा को याद रख सकता है? क्योंकर कायर हो सकता है?...अभी तो उसके वालिद की मौत का बदला बाकी है। अभी हिसाब बाकी है...मुबारक के रोम रोम से, मानो, वेदना का हरण करती हुई एक आवाज़ उठी—'अभी हिसाब बाकी है। बाकी है, बाकी है!'

यह हिसाब भी कितना चढ़ गया था! फिरोज़ एक क्या, तीन जन्म लेकर भी मुबारक का हिसाब नहीं चुका सकता था। इस हिसाव की रकम थी—रोशन!

रोशन चली गई और मुबारक की जिन्दगी में अब जीने जैसा कुछ न रहा था। वह गई। आज उसके दिल में मुबारक के विरुद्ध भयंकर क्रोध भरा था...बचपन से साथ खेले। साथ-साथ में बड़े हुए। जब से कुछ समझने लगे, मानो किस्मत ने ही, ये लेख लिखे थे। मानो इसमें किसी से कुछ पूछना शेष नहीं था। कुदरत की दूसरी बातों की तरह यह बात भी मानो कुदरती तौर पर बनी थी।

इसी वक्त एक दाग़ लग गया। साफ आइने जैसे रोशन के दिल पर किसी के गन्दी साँस की धारा बह गई...और उसे बहानेवाला वही फिरोज़ ऐसे वक्त,....अरे इस वेदना के वशीभूत कैसे कोई हो सकता है? फिरोज़ से नया और पुराना दुहरा बदला लेना है.......।

मेरे वालिद? दुनियाँ में कोई भी बाप उसके जैसा नहीं हो सकता। वह उसकी माँ और उसका बाप भी था। उसकी ज़िन्दगी में मुबारक के सुख के सिवाय दूसरा कोई खयाल नहीं था।

अब भी याद है, जिस दिन उसकी अम्मा बहिश्त-नशीन हुई थीं, सुबह का वक्त था और घर में कई आदमी थे। एक बुढ़िया मुबारक को बुलाकर उसके वालिद के पास ले गई।

वालिद की आँखें भीगी थीं और उन भीगी हुई आँखों के साथ उनको हँसी आई—

"जाओ बेटा, मौसी के साथ चले जाओ। तुम्हारी अम्मा परगांव जा रही हैं। मैं इन्हें पहुँचाकर आता हूँ।"

वह चला गया। पड़ोसी के घर की खिड़की में बैठे नाश्ता करते हुए, उसने बुढ़िया से पूछा था—"मेरी माँ कहाँ जा रही है?"

"परगाँव। अपने बाप के घर।..." बुढ़िया ने आँखें पोंछते हुए कहा था। उसकी माँ परगाँव जा रही थी और लोग सब रो रहे थे...।

एक बड़ी पेटी घर से बाहर निकाली गई और उसके पीछे पीछे उसके वालिद और दूसरे कई लोग बाहर गये।

उसने उस बुढ़िया से पूछा था—"क्या इसी तरह परगाँव जाते हैं?

वालिद जब कई बार परगाँव जाते हैं, दूर या नज़दीक के गाँवों में जाते हैं तो, पालकी या घोड़े पर सवार होकर जाते हैं। फिर अम्मी जान क्यों इस तरह जा रही हैं ?"

"ऐसा न कहो बेटा ! तुम्हारे वालिद बेपार के लिए बनियों के पास जाते हैं, इसलिए घोड़े या पालकी पर बैठकर जाते हैं। मगर बाप के घर तो इसी तरह जाया जाता है !"

"तो जब मैं अपने बाप के घर जाऊँगा तब......।"

"तुम्हारे वालिद तो यहीं हैं बेटा, क्योंकर उनके पास जाना पड़े ?"

बहुत देर बाद इसके वालिद लौटे। उन्होंने उसे गोद में उठा लिया और रोना शुरू कर दिया।

बहुत दिनों के बाद मालूम हुआ कि माँ कौन से गाँव गई है ? किन्तु उसके पिता ने किसी दिन माँ का अभाव उसे खलने न दिया। उनका रोज़गार-व्यापार, काफिले और वणिक्—सभी मुबारक के चैन और आराम के आसपास छोड़ दिये गये।

ऐसा उसका वालिद, फिरोज़ के पाप के प्रतिफल मारा गया। अगर फिरोज़ ने उसे अपने हाथों कत्ल किया होता, तो भी फिरोज़ को वह उतना कातिल न मानता ! लेकिन उसका कत्ल इसलिए हुआ कि फिरोज़ सल्तनत चाहता था। यह फिरोज़...यह सल्तनत...मुबारक के जीवन का अब अन्य प्रयोजन क्या रह गया है और जो शेष रह गया है, वह रोशन का...और फिरोज़...फिरोज़ और अनवरी, उतनी ही कातिल, अनवरी बेगम और फिरोज़...बेंत जैसे उस झाड़ की डालियाँ उस पर अगम अत्याचार कर रही हैं.......लेकिन फिरोज और उसकी बेगम तो इनसे भी ज्यादा खूनी और अत्याचारी हैं।

यकायक मुबारक चौंका।

अपने दिवास्वप्न अथवा अतीत के अंधकार में से वह बाहर आया। उसे बेभान न होकर, भारी विषम वेदना से टक्कर लेना था।

पास के पेड़ पर बँधा हुआ मंजूरशाह तब तक चिल्लाता रहा, जब तक

वह बेहोश न हो गया। उसके बाद भी वह धीमे धीमे कराह रहा था लेकिन मुबारक अपने मुँह से एक नन्हीं-सी भी आह निकालकर, अनवरी बेगम को सन्तोष प्रदान करना नहीं चाहता था! वह बेहोश न ही होना चाहता था। और होश की हालत में अपनी वेदना पर पुकार भी न मचाना चाहता था। बेहोशी में कराहना नहीं चाहता था, इसलिए वह अपने भूतकाल को कुरेद-कुरेद कर ऐसे कंकालों को जगा रहा था, जो वेदना को निगलते रहें!

फिर भी...फिर भी वह बेहोश हो रहा था...उसके पिता का प्रेमपूर्ण प्रतिबिंब....माता की स्मृति में से आर्द्र मुखमण्डल....अपने पुत्र के मृत्युदण्ड को सुनकर न्याय का प्रार्थी वह फिरोज़ के प्रासाद के निकट स्थित ...अश्रुस्नात मुख...श्वेत केश....रेखाएँ और झुर्रियाँ...

उसके बजाय...उसके बजाय अब तो यह कोई दूसरा ही चेहरा दृष्टिगोचर हो रहा था। उसके बाल सफेद न थे, काले थे...झुर्रियाँ नहीं थीं...स्वच्छ और चिकना था...पुरुष का नहीं नारी का मुखड़ा था... वालिद के बजाय अम्मा का....यह क्या उसकी माता का चेहरा....

अथवा वह बेहोश हो रहा है?....या उसने जो सुना था, सच था? जब मौत आती है, चेतावनी देने के लिए किसी अज़ीज की रूह कब्र से उठकर आती है... उसी तरह...

धीरे धीरे वह चेहरा मानो झाड़ की शाख पर चढ़ा। शाख पर अचानक इतना भार? होठ चढ़ाकर उसने चीखा...।

नहीं, वह बेहोश तो नहीं होता...तब?

धीरे-धीरे उस चेहरे के पीछे एक हाथ उठा।

धीरे धीरे उस चेहरे के पास दूसरा हाथ उठा।

'मुबारक मियाँ!' आवाज़ आई।

उसका शरीर तन रहा था। और तन गया।

"चुप रहना। होश में हो तो, खबरदार। घबराना मत।" फिर से आवाज़ आई। चेहरा पीछे हट गया। कुछ देर तक ऐसा कुछ होता रहा, जिसे वह समझ न सका।

अचानक उसके दोनों पैर छूट गये।

निपट अचरज से उसके कण्ठ में एक चीख उठी और उठकर वहीं बैठ गई। दोनों बगलों में आग की चिनगारियां उठती प्रतीत हुईं ! पर छूटते ही शरीर झूलने लगा। तभी किसी जोरावर आदमी ने उसे थाम लिया।

और चिनगारियां अब जैसे बुझ गई !

कुछ अँधेरे और कुछ उजियाले में उसे बड़ी बिल्ली की सी हलचल नज़र आई।

उसके हाथ भी मुक्त हुए मगर उसकी सुधि चली गई।

जब फिर से उसे भान आया, वह मुक्त गगन की छाया में, एक सोते के किनारे, हरी घास पर लेटा था। उसके हाथ-पैर के घाव शीतल प्रतीत हो रहे थे।

उसने देखा—अभी अंधकार है। अभी भी रात है और विशालकाय व्यक्ति और एक नाजुक नारी उसके समीप बैठे हैं।

"अब तुम स्वस्थ हो ? क्या अब हम आगे बढ़ सकते हैं ?

"कहाँ ?"

"दौलताबाद के सूबेदार के दामाद अबूराज़ी और अनवरी बेगम के पड़ाव से जितनी दूर सम्भव हो, उतनी दूर !"

"क्या हम पड़ाव के नजदीक हैं ?"

"उनका पड़ाव उस टेकरी के पार है।"

"हमें कितना समय लगा है ?"

"एक घड़ी से अधिक नहीं। क्यों ?"

"तुम कौन हो ?"

"महामात्य माधव के आदेश पर हम आपके सहायतार्थ आए हैं।"

"महामात्य माधव !! लेकिन, वे तो चंद्रगुट्टी के दुर्ग में हैं।"

"थे। अब तो वे टोंडाईगढ़ से भी आगे आ चुके हैं। दौलताबादी कुमुक मगरूर के मार्ग से आ रही है और उससे मिलने के लिए अनवरी बेगम

मदुरा से प्रस्थान कर चुकी है, ये समाचार मिलते ही महामात्य ने मुझे और इस देवी को आदेश भेजा।"

"तुम........तुम......कौन हो ? यह देवी कौन है ?"......

"ये देवी मगरूर की रहनेवाली हैं और इस प्रदेश की प्रति-अंगुल भूमि से परिचित हैं। यहाँ के एक-एक पेड़ और झाड़ को जानती हैं, तभी महामात्य ने इन्हें और मुझे आदेश दिया। इनका नाम है—कर्नाटकी आनंदी।"

"मुझ पर आपका यह दूसरा एहसान है।" मुबारक ने कर्नाटकी से कहा।

"यह एहसान मेरा नहीं, महामात्यजी का है। मैं तो उनकी चिट्ठी की चाकर हूँ। उन्होंने हमें एक स्वप्न प्रदान किया है। उस स्वप्न को धरती पर प्रत्यक्ष अंकित करने के लिए हमने अपने शीश उनके चरणों में चढ़ा दिए हैं।"

"अवसर मिलने पर मैं पुनः उनकी सेवा में कृतज्ञता प्रकट करूँगा।" मुबारक ने सामने देखकर पूछा—"और आपका शुभ नाम ?"

"मुझे अब भी नहीं पहचाना, मुबारक मियाँ ?"

"जी नहीं !"

"हम तो कई बार मिले हैं। साथ भी बहुत रहा है हमारा।"

"आवाज कुछ पहचानी-सी प्रतीत होती है।"

"मेरा नाम नागरनायक।"

"नागर नायक ? ना...गर...ना:..य....क !! यह कैसे हो सकता है ?"

"क्यों नहीं हो सकता ? क्या तुम्हारी सहायता के लिए आना, मेरा धर्म नहीं ?"

"लेकिन आपके सामने कई जरूरी काम हैं !...आप ! एक महान् सेना के सिपहसालार...महामंडलेश्वर के भाई...कुमार कम्पन ! और..."

"फिर भी मुबारक मियाँ !...कुमार कम्पनराय, बड़ी सेना का सेनापति...चाहे वह कुछ भी हो, सिपहसालार हो, महामंडलेश्वर हो, दुर्गपाल हो...फिर भी कुमार कम्पनराय नागर नायक को कैसे भूल सकता है ? और नागर नायक मुबारक मियाँ को कैसे भूल सकता है ?"

"आपका उपकार अपार है! आपने मुझे एक बार नहीं, अनेक बार मौत के मुख से बचाया है। आपके सिर पर आज अनेक कठिनाइयों के नग्गारे बज रहे हैं! आपके उत्तरदायित्व अनेक हैं। कई चिंताएँ हैं। फिर भी, उन सब के बीच में आपने एक सौदागर के बेटे को याद रखा। इसके लिए आपके-जैसे समर्थ सेनापति और वीर पुरुष का मैं हृदय से आभारी हूँ। मुझ-सा अदना आदमी आपके एहसान का बदला कैसे चुका सकता है?"

"मुबारक मियाँ! कुमार कम्पनराय के सामने चाहे जितने काम और उत्तरदायित्व हों, वह अपने मित्र को नहीं भूल सकता!"

"आप मुझे मित्र कहते हैं? आप तो तुर्कों को जीतने के लिए चले हैं और मैं एक तुर्क हूँ!"

"कुमार कम्पनराय किसी तुर्क को जीतने के लिए नहीं निकला है! वह किसी तुरुष्क सल्तनत के विनाश के लिए नहीं बढ़ रहा है। चाहे महामात्यजी से पूछ लीजिए। वे कहेंगे कि हमारा जंग तुर्कों से नहीं, तुर्कों के काले कारनामों से है। तुर्क यदि शांति से रहें तो हमारा उनसे कोई वैर नहीं है। उसके मजहब या जीवन-व्यवहार के विरुद्ध हमें भी कोई शिकायत नहीं है। विजयनगर साम्राज्य में सैंकड़ों तुर्क रहते हैं, किसी ने उन्हें आज तक नहीं सताया। किसी ने उनके निजी मामलों में दखल नहीं दिया। इंसान इंसानियत से रहे—यही हमारा विजयधर्म है!"

"मैं आपकी इस बात से परिचित हूँ। मैं इसे कभी नहीं भूलूँगा! अब आप पधारिए। मेरे कारण आपको इतना कष्ट उठाना पड़ा। समय आपका नष्ट हुआ। मैं आपका कृतज्ञ हूँ। अब आपको अधिक रोकना नहीं चाहता। इस अँधेरी रात में आपने जो खतरा उठाया है, उसके लिए मैं आपका बहुत-बहुत आभारी हूँ। अधिक आपको रोकना सौदागर के एक लड़के की बेअदबी कही जाएगी! मुझे भी काम है।"

"कौन-सा काम है?"

"मंजूरशाह अभी कैद में है। आज नहीं तो, किसी एक दिन तो वह मेरा साथी था। और, रोशन भी अभी कैद में है।"

"मैंने तो सुना था कि तुम्हारे और रोशन के संबंधों का अन्त आ चुका है ?"

"आपकी बात सच है । मैंने जो अपराध नहीं किया, मुझ पर उसी का आरोप लगाया गया है ! रोशन यह जान ले कि आरोप झूठा है, जानकर उस पर अफसोस करे, इसलिए रोशन को भी बंधन से मुक्त करना ज़रूरी है ......"

"तुम मंजूरशाह को छुड़ाना चाहते हो यह मैं समझ सकता हूँ, लेकिन रोशन को..."

"मैं और रोशन बचपन के मित्र हैं ! वह मुझे अपराधी मानती रह जाए और मर जाए...बँधी रह जाए और मर जाए, यह कैसे हो सकता है ? और जिस तरह उसे बाँधा गया है, उस तरह मौत ही उसका अंजाम है ।

"लेकिन, जिस ख़तरे से हमने तुम्हें बचाया है, उसी ख़तरे की खाई में तुम फिर से गिरना चाहते हो ?"

"आप निश्चिंत रहें, सिपहसालार ! मुबारक सिपाही नहीं, तो सौदागर ज़रूर है । कोई उसे एक बार धोखा दे सकता है, दुबारा नहीं । आप यहाँ से बिदा हो जाएँ तो मेरे मन को चैन मिलेगा । अपने खतरे का मुझे उतना भय नहीं है, जितना आपके खतरे की कल्पना से मैं काँप उठता हूँ !"

"लेकिन तुम......?"

"मेरी फिक्र न कीजिए । आपने जिसे अपना मित्र कहा है, वह मूर्ख या गँवार नहीं है । सिपाही नहीं, तो सौदागर अवश्य है—मैंने अभी कहा है । ....और कब्र से ज़िन्दा निकलनेवाले आदमी का गुरिल्ला-युद्ध आपने अभी नहीं देखा है ।"

२४ ★ वनमानुष

"मुझे नींद नहीं आती !" अनवरी बेगम ने आखिर ऊबकर कहा।

बात सच थी। अनवरी बेगम को नींद न आए, ऐसी ही घटनाएँ हुई थीं। इस भयंकर नारी ने दूर-दूर की जो योजनाएँ बनाई थीं, लगभग सभी पूरी हुई थीं। उसका गणित ठीक था ! उसका दिल खुशी से उछल रहा था और जैसे उसने उसकी नींद को उसके मोटे शरीर से बाहर निकाल दिया था !

उसने मरण-दाँव लगाया था। मदुरा की सल्तनत को स्थायित्व देने के लिए जीवन मरण का अंतिम जुआ खेला था। और उसके पाँसे पौबारह पड़े थे, फिर इस खुशी में उसे नींद कैसे आ सकती थी ?

महत्त्वाकांक्षाओं और आशाओं से छलाछल उसके मस्तिष्क में बड़ी-बड़ी सम्भावनाएँ उठकर खड़ी हो गई थीं। आज न सिर्फ़ मदुरा के बचाव का रास्ता खुल गया था, नई और अनसोची फतहयाबियों की दिशाएँ खुल गई थीं !

आई तो वह थी, हारे हुए जुआरी की तरह अंतिम पाँसा फेंकने के लिए, परंतु उसकी आशा के विपरीत पासा सीधा और सही पड़ गया था !

इधर टोंडाईगढ़ का पतन हो गया था। हज़ार-हज़ार सालों से जिस अजेय दुर्ग को कोई जीत न पाया था—कोई पांड्य, चोल या चेर या कोई

दामिल इस दुर्ग को पराजित न कर सका था। ऐसे दुर्ग और उसके स्वामी शम्बूर राय का पूर्ण पतन हो चुका था ! और शम्बूर राय मारा गया था !

और जैत्र प्रस्थान करनेवाले विजय नगर की सेना के सेनापति कुमार कम्पनराय अब अपनी सेनाओं को मदुरा की ओर बढ़ाए जा रहे थे !

मदुरा की सीमाएँ सुलग्न रही थीं। प्रतिदिन सल्तनत की सीमाएँ सीमित और सीमित होती जा रही थीं। रोज़-रोज सरहदी शरणार्थियों के काफ़िले और काफिले मदुरा में आ रहे थे !

अकल्पित और विकराल आपत्ति आ रही थी। मदुरा घनघोर संकट से घिरा था।

मदुरा की सल्तनत मानो भूकम्प के धक्कों से बार-बार काँप रही थी ! मगरूर की पहाड़ियों के पिंडारियों ने मदुरा को लूट लिया था और मदुराई सेना को तितर-बितर कर दिया था। अमीर और मलिक कई काम आ गए थे और खुद सुल्तान गयासुद्दीन दमग़नी भी अपनी जान खो चुका था !

अलबत्ता, सुलतान गयासुद्दीन अपनी जान से जाए, इसमें आपत्ति नहीं हो सकती थी। क्योंकि सुलतान फिरोज़ का सारा कुचक्र सुलतान दमग़नी के विनाश के लिए था। अपने वारसे में यही ऋण उसे मिला था। पिंडारी फिरोज़ के हथियार बनकर आए थे, लेकिन यह हथियार अधिक कष्टकर साबित हुआ और पिंडारियों का मुखिया इकबाल खुद ही सुलतान बन बैठा !

मदुरा लूटा गया।

सल्तनत की नींव लड़खड़ा रही थी। इकबाल भी मार डाला गया। फिरोज़ गद्दी पर बैठा।—यह सब तो जिस तरह होना था, हुआ। किंतु दुर्भाग्य यह था कि मदुरा की सेना छिन्न-भिन्न हो गई थी।

और इसमें बघार देने के लिए जैसे मुबारक मगरूर की पहाड़ियों में जा घुसा बैठा था। उसे हाथी के पैरों के नीचे कुचला जा रहा था कि वह सैनिकों की गफलत का लाभ उठाकर भाग खड़ा हुआ ! वह भाग निकला तो बड़ी बात नहीं, मगर मगरूर की पहाड़ियों में उसने पिंडारियों को जमा किया। मदुरा की सल्तनत के अधिकार में था मलाबार, मगर मुबारक

ने सारा व्यवहार विनष्ट कर दिया। उसने तो मदुरा का जीवन सूत्र ही काट डाला !

पूर्व की ओर, बंगाल की तरफ़ से मदुरा को मदद मिलती थी। इन दोनों में चाहे जितने बखेड़े हों, जुद्दीनों के खिलाफ़ वे एक थे। लेकिन, इरंगुल (वारंगल) पर काफ़िरों का कब्जा हुआ और वहाँ की सूबेदारी खत्म हो गई। कृष्णाजी नायक, वहाँ काफ़िरों का राजा बना। वह तो समुद्र पर पहरा बिठाकर बैठ गया !!

विजयनगर की रियासत को एक शक्ति मिलने लगी। कर्नाटक के आस-पास के राजा-महाराजाओं से झगड़नेवाले होयसल राज्य में रंग, रूप और आकार ग्रहण कर, समस्त पूर्वी घाट पर अपनी छाया फैलाकर, वह तो कावेरी के उस पार आकर खड़ी हो गई ! नायक उसमें शामिल हो गए। और अब तो उसे पूर्व समुद्र का अधिकार मिला और आधिपत्य भी ! इसलिए वह राह भी बंद हो गई !

अब बच रहा सिर्फ़ एक रास्ता—पश्चिम की जानिब का। खम्भात और भरौच की राहें भी रोक ली गईं ! बीच होनावर में विजयनगर की दरियाई फौजें पड़ी थीं ! इस दरियाई फौज का सारा आकार-प्रकार ही नया था ! सब कुछ नया था। दो सौ वर्ष तक तुरुष्कों से जो सहस्रों युद्ध हुए, उन में आज तक किसी ने तुरुष्कों से दरियाई युद्ध नहीं लड़ा था ! दरियाई मार्ग में बाधा उत्पन्न न की थी !

आज तो विजयनगर की नौ सेनाएँ पूर्व और पश्चिम सागर पर तैर रही हैं। एक ओर लखन नायक दरियाई बाघ के समान तुर्कों को नज़र आया। दूसरी ओर सोवन्ना नायक दरियाई तूफ़ान कहलाने लगा।

और तुरुष्कों के लिए दरियाई द्वार, दरियाई मार्ग बंद हो गए !

अब एक ही मार्ग बाकी बचा था मलाबार का द्वार ! पश्चिम घाट के उस पार, समानान्तर चलकर घाट के भीतरी मैदान में बैठने के लिए मगरूर के पहाड़ी इलाके की राह चला जाए ! लेकिन कम्बख्त मुबारक ने अब यह राह भी रोक ली थी !

बड़ी कोशिशों के बाद चालाक कासिद दौलताबाद पहुँच सके थे। और उन्होंने दौलताबाद के सूबेदार इस्माइल मुख को सारी खबरें दी थीं। और विजय नगर के विस्तार पाते साम्राज्य के विरुद्ध सहायता माँगी थी !

दौलताबाद के सूबेदार इस्माइल मुख को मदद देने में कोई उज्र न था, क्योंकि वह जानता था कि सम्भव है किसी दिन, उगते हुए सूर्य की भाँति विकासवान्, विजयनगर साम्राज्य तुंगभद्रा को पार कर जाए ! उसने तो नए-नए काफ़िरों को शह दी है और रायरेखा का प्रचार किया है !

सुलतान मुहम्मद तुग़लक़ के समान विचारवान् और स्वार्थवान्, दूरंदेश और बारीक नजरवाला दूसरा सुलतान अब तक दिल्ली के तख़्त पर बैठा न था ! उसने बड़ी उम्मीदें बाँधी थीं विजयनगर का विध्वंस करने की। लेकिन बेचारा वारंगल, भरौंच, मालवा और गुजरात की बगावतों से परेशान और तंग था।

एक काफ़िर नायक ने तो दोस्ती का स्वाँग रचकर, इस्लाम स्वीकार कर, दिल्ली की सल्तनत पर कब्जा कर लिया था—खुशरु खाँ गुजराती ने ! उसने अमीर-अमीर में मलिक-मलिक में और हमदीनों में ऐसे स्वार्थभेद, मतभेद और मनभेद खड़े कर दिए कि तुरुष्कों की हमदीनी एकता और बिरादरी सिर्फ कहानी की शक्ल में ही रह गई ! इस शख्स ने ऐसा-कुछ शाप माँगा कि दिल्ली सल्तनत के अमीर और मलिक बरसों तक आपस में लड़ते-झगड़ते रहे ! दो में से एक जो अधिक बलवान् होता, सल्तनत के खिलाफ़ बग़ावत का नारा बुलंद कर देता !

गुजरात में मलिक तग़ी रहमान, साधु टाँक बलवाखोर बन गया था ! मालवा में मलिक बाज़ खान और तुग़लक़ खान बाग़ी बन गए थे। सिंध में तालपुरा लोग अपनी अमीरात रक्षित रखने के लिए हुकूमत की मुखालफत कर रहे थे। सौराष्ट्र में धनमेर कोली और मोखड़ाजी गोहिल ने जंग का रास्ता अपनाया था !

और इस सारी परिस्थिति से परे, उत्तर की ओर मुगलों की डकैतियाँ बढ़ती जा रही थीं। धर्म-मजहब, जाति-पाँति, मत-पंथ, सम्प्रदाय अथवा

हमदीन या ज़ुद्दीन का भेद देखे-परखे बिना ही, वे तो हरेक घर और आदमी पर डाका डाल रहे थे और हरेक को लूटने को तैयार थे !

उस नायक खुशरू खाँ गुजराती की नापाक हरकतों में जैसे कोई कमी रह गई थी, गुजरात में सुलतान अलाउद्दीन ने जो बरबादी की थी, उसका बदला मानो खुशरू खाँ के लिए अब भी पूरा न हुआ था, इस तरह उसने तो सुलतान अलाउद्दीन का सारा खज़ाना, जाने कहाँ गायब कर दिया ! पाताल में उतार दिया !!

हजार साल तक इस मुल्क की प्रजा को बुरी तरह बराबर लूटा गया था, उस लूट का धन—हजारों-हजारों गाड़ियाँ भर-भर कर सोना, चाँदी और जवाहरात कहाँ चले गए ? खजाना कहाँ ओझल हो गया, आज तक पता ही न लगा !

बेचारा मुहम्मद तुग़लक़ धन की कमी से परेशान था ! उसने इस खजाने की खोज कराने में कोई कमी न रखी। सैकड़ों मकानात खोदकर ज़मींदोज़ कर दिए गए ! सारी जमुना नदी का पानी उलीच दिया गया !! और सुलतान अलाउद्दीन के महलात मिट्टी में मिला दिए गए, मगर ख़ज़ानों का पता न लगा !! एक छदाम भी न मिला !! मलिक और अमीर मदद के लिए तैयार न थे। मलिक वाजखान ने कहा था—"हम दौलत लेने के लिए आए हैं, देने के लिए नहीं !"

—ऐसा ही स्वार्थरंग चढ़ा था !

इसलिए सुल्तान मुहम्मद तुग़लक अब बाहरी सेना की भर्ती नहीं कर सकता था ! और न ही वह विजयनगर के विरुद्ध युद्ध की घोषणा ही कर सकता था !

और दौलताबाद का सूबेदार इस्माइल मुख हाथ पर हाथ घर कर बैठा रह गया था। खुद सुल्तान इस वक्त दौलताबाद में था, लेकिन वह क्या करता ? चाहे व्यवहारी हो या वणिक्, कुरम्बा हो या विनोदी, सुल्तान हो या सौदागर—दौलत के बिना सभी दरवेश !........

इस कारण, दौलताबाद का स्वार्थ इसी में था कि विजयनगर की पीठ

के पीछे मदुरा की सल्तनत कायम रहे। फिर सुलतान चाहे जो हो, सल्तनत तो एक रखेली की लड़की की ही थी न !

इस्माइल मुख ने मदद के लिए कुमुक भेजी। इस कुमुक को मगरूर की पहाड़ियों में से निकाल लेने की जिम्मेदारी मदुरा की रही। अगर कुमुक पहाड़ियों के पार न पहुँच सकी तो, फौरन लौट जाएगी—इस्माइल मुख का यह जवाब था !

अतएव पहाड़ियों को पार करने के अनेक उपायों पर बहस हुई, कुछ उपाय ढूढ़े गए, मगर बेकार समझ कर छोड़ दिए गए। तब अनवरी बेगम ने यह राह अपनाई।

तब तो, उसके गणित के अनुसार मुबारक को येन-केन-प्रकारेण मनाया जा सकता था ! उसे सल्तनत और सुलताना दोनों का आधा मालिक बनाने को वह तैयार थी ! यदि अभिवचन देने से ही काम न बन जाए तो, वह अपने वचन को प्रत्यक्ष व्यवहार का रूप देने को भी तत्पर थी !

इसी हेतु वह रोशन को भी अपने साथ ले गई थी !

अनवरी बेगम के दिमाग में एक बात बस गई थी और, फिर उसमें, दूसरी बात के पैठाने का अवसर ही न था ! मदुरा की सल्तनत का स्थापक जलालुद्दीन एहसानशाह था, अतः सल्तनत यह उसके पूर्वजों की, वंशजों की ही है, और उन्हीं के अधिकार में रहनी चाहिए।

इस उद्देश्य से वह मुबारक के पास आई थी। मुबारक और फिरोज के पारस्परिक द्वेषों से वह अपरिचित न थी ! फिरोज ने मुबारक को गज-पद-द्वारा कुचलवा देने का हुक्म दिया था। मगर उससे मुबारक किसी तिलस्मी तरीके से बच निकला था। यह बात वह जानती थी, फिर भी उसे मना लेने के लिए आई थी !

इस मनुहार में वृद्धि करने के लिए, इसमें स्वर भरने के लिए, वह रोशन को अपने साथ लाई थी। किसी भी प्रकार, दौलताबादी कुमुक के गुज़र जाने तक, मुबारक को रोक कर रखा जा सके,

किसी भी भाँति मुबारक को राज़ी कर लिया जाए ! जरूरत पड़ने

आगे आने के लिए जोर लगाने लगे। आगे वाले पीछे जाने के लिये सिर मारने लगे। इस तरह घटनास्थल पर दौड़-धूप मची और अव्यवस्था फैली।

इकबाल की आवाज़ किसी ने सुनी भी हो, तब भी उसे दाद देने के लिये कोई रुका नहीं। इकबाल को धीरे-धीरे कटु सत्य समझ में आ गया कि उसकी फौज का भय अब ओझल हो गया है, भय का लोगों का पहला श्वास पूरा हो चुका है और अब दूसरा श्वास शुरू हो गया है।

यों तो महाराज चन्द्रशेखर को मदुरा में कोई जानता नहीं था। बेचारा यह अधभूखा ब्राह्मण तुर्कों के बीच में और बहुजन समाज के उन लिंगायतों के बीच में एक ओर पड़ा रहता था, जो ब्राह्मणों के प्रति अपने तिरस्कार की प्रतिस्पर्द्धा में तुरुष्कों को भी नीचा दिखाते थे। चन्द्रशेखर से कोई पूछता न था कि तूने कुछ खाया है या नहीं? कोई न पूछता था कि आज की भिक्षा पूरी तरह मिली या नहीं? वह तो श्रीरंगमंदिर के शेषनामदेव धाम में अकेला पड़ा रहता। उस मंदिर में जहाँ सूबेदार रहता था, गोमांस खाता, शराब पीता और वेश्याओं के नाच-गान देखता-सुनता। सूबेदार ने यहीं हजारों स्त्रियों की लाज लूटी थी और हजारों का शील भंग किया था। अब यहाँ श्रीरंगनाथ की मूर्ति न रही थी। यह स्वर्णदेव मूर्ति कहाँ गई थी, यह कोई नहीं जानता था। कोई कोई कहता था कि इस मूर्ति को वेदान्त देशिक महाराज ले गये थे और इस समय उनके अवसान के पश्चात्, विजयनगर साम्राज्य के महामात्य माधव के पास सुरक्षित है। कोई कहता कि मदुरा के पहले सूबेदार और पहले सुलतान जलालुद्दीन एहसानशाह ने उसे गला दिया है। कोई यह कहता, कोई वह कहता। ये जो कुछ कहें किंतु एक बात सच थी कि इस वक्त मन्दिर में मूर्ति जैसा कुछ भी न था और इस खालीखट मन्दिर में, जहाँ एक बार भगवान् श्रीरंगनाथ की मूर्ति विराजमान थी, उस स्थान पर आजतक महाराज चन्द्रशेखर प्रदीप प्रज्वलित करता रहा है। और सुबह शाम और सारा दिन सारी रात वहीं बैठा रहता है!

यह काम सहज ही नहीं बन गया था ! समर्थ संगीत सेविका कर्नाटकी आनंदी को इसके लिए अपने-आपको बेचना पड़ा था ! और अपना तन बेचकर उसने बदले में इतना ही चाहा था कि उसका ख़रीददार—सूबेदार मंदिर में रहना छोड़ दे ! वहाँ चन्द्रशेखर को मंदिर में रहने दे और दीपक जलाने की आज्ञा दे दे !

महाराज चन्द्रशेखर को देखकर तुर्क मज़ाक उड़ाते। लिंगायत अपमान करते। कोई उसे भिक्षा नहीं देता ! दुबला-पतला, काला-लम्बा, सूखी हुई हड्डियों वाला वह ढाँचा निरन्तर श्रीरंग के पुनरागमन की प्रतीक्षा करता ! वह तो जैसे शबरी का दूसरा अवतार था ! सिर पर शिखा गले में तुलसी की कंठी, खुला नंगा तन, कमर में लंगोट-जैसा छोटा-सा वस्त्र ! निराशा और दरिद्रता की प्रतिमा-समान—यह महाराज चन्द्रशेखर !

लेकिन आज इस ब्राह्मण का रूप-स्वरूप पलट गया था ! हाथ में लम्बी लाठी और कन्धे पर पत्थरों से भरा थैला, बगल में गुलेल—इस सज्जा में वह सारी रात मदुरा की गली-गली घर-घर घूम गया था !

उसने सोते हुए लोगों को जगा दिया था। जागते हुए लोगों को बैठा दिया था और बैठे हुए लोगों को खड़ा कर दिया था। खड़े हुए लोगों को चलता कर दिया था और चलतों को दौड़ा दिया था !

आज मानो सारे मदुरा में वही अकेला था। सारा मदुरा उसकी जय-जयकार कर रहा था—तुरुष्क और अजम; अरब और अफ़ग़ान; लिंगायत और पांड्य; सौदागर और वणिक्; इदांगी और वालांगी; सेट्टि और कुरुबा; वेलालूर और कम्पू सभी के मुँह पर 'चंद्रशेखर महाराज की जय' का नारा था और सभी के हाथ में गुलेल और पत्थर थे !

खुद बिखर कर, पिण्डारियों को गुलेल के पत्थरों से मारना और भाग जाना ! ....अरे यह, इतनी सीधी-सी बात, किसी की भी समझ सूझ में पहले क्यों नहीं आई ? कई लोगों को आश्चर्य था ! वे चाहे जब एकत्र हो सकते थे, भाग सकते थे और फिर से एकत्र हो सकते थे, कहीं कोई असुविधा या तकलीफ नहीं थी। लोग गली-गली और मुहल्ले-मुहल्ले के जानकार थे !

और पिण्डारी बड़ी सड़कों के सिवाय कहीं जा न सकते थे, गलियाँ उनके लिए अन्धी दीवारें थीं !

लोगों को मार्ग मिल गया था, साहसी और असाहसी, धैर्यवान और अधीर, नर और नारी, बूढ़े और जवान, मानो सब इस एक खेल में लग गए थे। तमाशे के मैदान में उतर आए थे !

पिण्डारी जहाँ जाते, फँस जाते ! अनजान और अंधे आदमी एक समान होते हैं ! अगर वे सड़क पर खड़े रहते तो गलियों में से लोगों की टोलियाँ बढ़ आतीं ! आगे देखते तो पीछे से, पीछे देखते तो आगे से ! गली में अगर वे घुस जाते तो हरएक आदमी ओझल हो जाता और पीछे से दूसरी गली के लोग निकल आते !

इस तरह कुछ मर गए ! कुछ घायल हुए। और इस भूलभुलैया में से कैसे निकला जाए, पिण्डारियों के लिए यह परेशानी बहुत बड़ी थी ! यह तो अभिमन्यु के चक्रव्यूह से भी कठिन चक्रव्यूह और युद्ध था।

क्रोध और आवेशपूर्वक इकबाल हाथ मलता था, चिल्लाता था ! पिण्डारियों को, लौटाकर मुख्य मार्ग पर आने के लिए प्रेरित कर रहा था परन्तु कोई उसकी सुनता नहीं था ! सुनने पर उसकी बात पर अमल नहीं कर सकता था ! धीरे-धीरे एक-एक पिण्डारी बिछुड़ गया, अलग होकर अकेला रह गया ! और जो अकेला पड़ गया था, वह लाठियों और पत्थरों की वर्षा में लहू-लुहान हो रहा था !

पन्द्रह-बीस आदमियों की एक टोली साथ में लिए चन्द्रशेखर इकबाल के सामने आया। पिण्डारियों के रक्त से स्नात उनके वस्त्रों को देखकर इकबाल को भ्रम हुआ कि वह मनुष्यों के समूह को नहीं, बाघ और चीतों के झुंड को देख रहा है !

और अपने घोड़े पर बैठकर, वह भाग चला, राह में जो कोई प्राणी आया, उसे कुचलता हुआ। गुलेल के पत्थर उड़ रहे थे, उनकी वर्षा से अपने हृदय की धड़कन को वह कठिनाई से रक्षित रख रहा था ! वह तो चला .... भाग चला !

एकाएक इकबाल का घोड़ा भयंकर चीत्कार के साथ, आकाश में उछला और उछल कर नीचे गिरा। किसी नें अपनीं कटार फेंकी थी और वह घोड़े की गर्दन में मूठ सहित घुस गई थी ! फव्वारे की तरह घोड़े के बदन से लहू की धार उड़ी। लहू देखकर घोड़ा पागल हो गया। तभी उसके दूसरे पैर पर दूसरी कटार का वार हुआ ! फिर से वह उछला और मरणान्तक चीख के साथ जमीन पर गिर पड़ा ! उसके पेट-नीचे इकबाल का पैर दब गया !

"शाबाश बेगम शाबाश !... शाबाश मलिका, शाबाश ..., बस कटार चलाना आप ही जानती हैं.......?"

इस पुकार को सुनकर आसपास की भीड़ ने कटार चलानेवाली को देखा—कटार चलानेवाली थी अनवरी बेगम ! पुकार कर तारीफ़ के पुल बाँधनेवाला था उमर कोतवाल !

उमर के कमरबंद से तीसरी कटार खींचकर, उसकी मूठ दाहिने अंगूठे से चलाकर अनवरी बेगम ने कटार फेंकी। अपने सम्पूर्ण आकार में गोल-गोल घूमती वह कटार, तीर की तरह छूटी और इकबाल की छाती में घुस गई ! अनवरी ने अपने अंगूठे से कटार को इतना चक्कर दिया था कि इक्बाल के शरीर में प्रविष्ट होने पर भी वह चक्कर खाती रही और मूठ पर इकबाल के कपड़े गोल गोल लिपट गए !

भैंस और हिरनी के मिश्रण पर अनवरी को मानो गढ़ा गया है, उमर को यही खयाल आया और वह डर गया—"बाप रे !" उसके कंठ से अनायास निपट अचरज का स्वर निकल गया !

दरमियान, अनवरी बेगम, उसके शरीर के साथ असंगत प्रतीत होने-वाली चपलतापूर्वक दो कदम उछलकर आगे बढ़ी। उसका चपटा और मोटा चेहरा अधिक भयंकर बन गया ! मक्खन-सी उसकी गोरी काया जैसे लाल सिंदूर से रँगी थी ! सिर के केश पकड़कर उसने इकबाल के सिर को सीधा कर दिया और तलवार के एक ही झटके से उसे उतार लिया। उतार कर नीचे फेंका; नीचे फेंक कर ठोकर मारी !

"उमर कोतवाल," अनवरी ने कहा—"आओ, ठोकर लगाओ!"

उमर कोतवाल ठोकर मारने के लिए तैयार हुआ। ऐसा अवसर मिलने पर वह छोड़नेवाला नहीं था! अब तक जिस अनवरी बेगम को वह मात्र मांस, वासना और दिवा-स्वप्न देखनेवाली अबला मानता आया था, उस का यह बेढब रंग-ढंग देखकर उमर नायक का रोम-रोम, हड्डी-हड्डी काँप उठी! वह मूक ही नहीं, मूढ़ भी बन गया!

"उमर कोतवाल!" अनवरी ने कहा—"लाओ अपना भाला!"

भाले की नोक पर इकबाल का सिर चढ़वा कर अनवरी ने भाले को ऊँचा उठा दिया—"देखिए, रईसो, देखिए, मदुरा की सल्तनत के वफ़ादार रईसो देखिए! देखिए...देखिए मुरीदेशैतान इकबाल का सिर भाले पर चढ़ा है। मैंने चढ़ाया है!....देखिए, कहिए सुलतान मलिक फिरोज़ ज़िंदा बाद!...मलिक फिरोज़ ज़िंदाबाद! मदुराई सल्तनत के एकमात्र और सच्चे वारिस, सल्तनत के एकमात्र हकदार...मलिक फिरोज़...जिनकी बेगम—अनवरी बेगम....

"मैंने इकबाल को कत्ल किया!....मैंने उसका सिर भाले पर चढ़ा दिया है, देखनेवालो, देख लो! परखनेवालो परख लो!...अपने सुलतान फिरोज़ की जय हो!...सल्तनत के हकदार सुलतान फिरोज़ की जय.... सुलतान फिरोज़ ज़िंदाबाद!...."

फिर तो उस खौफनाक झंडे के नीचे सभी अमीर जमा हुए। तुर्क, अरब, अजम, सिद्दी, अहलसुन्नति....सभी अनवरी बेगम के आसपास झुण्ड बनाकर खड़े हो गए!

और लूट? उसका क्या हुआ? इकबाल के पिंडारियों में से कोई बच कर नहीं जा सका। उनकी लूट और उनकी लाशें मदुरा की गली-गली की धूल में रौंदी गईं।

इस कोलाहल में मलिक फिरोज़ ने बाहर निकलना उचित न समझा था। उसमें हिम्मत तो थी परन्तु उसे यह पसन्द न था कि मदुरा के भावी सुलतान का शरीर गलियों में अकारण जख्मी हो।

और उसे इस समय प्रसंग भी मन-चाहा मिला था। हाँ, मन-चाहा! मृत सुलतान गयासुद्दीन की बेगम...द्रौलताबाद के तुरुष्क सूबेदार इस्माइल मुख की बेटी....प्रौढ़ आयु का, रुक्ष, संस्कारहीन, और जंगली—वह सिपाही चंद रोज के लिए गद्दी छीनकर सल्तनत का उपभोग कर गया। किंतु उसकी दृष्टि में शबनम में निखरी हुई उस गुलाब की कली-सी युवती उमरावज़ादी का कोई मूल्य न था। मलिक फिरोज़ में इस प्रकार के मूल्यांकन का दृष्टिकोण था। अपने जीवन में उसे जो दो-एक गुण प्राप्त हुए थे, उनमें एक यह भी था।

अतएव मलिक फिरोज़ अपनी हवेली में ठहर गया था। बड़े से बड़े जहाज़ को सागर के ज्वार के विरुद्ध रोक कर रखनेवाले लंगर की सापेक्ष सुकुमारता विस्मयकारिणी होती है, उसी प्रकार, मुट्ठी-भर हड्डियों की कोमल मांसल सुल्ताना ने पहाड़ के समान फिरोज को रोककर रखा था। फिरोज़ रुकता है, इसमें उसकी सम्मति थी या नहीं, फिरोज़ को रोकने की इच्छा थी या नहीं, तब यह सवाल फिरोज़ ने भी न पूछा था। और आज तक इतिहास ने भी नहीं पूछा है।

उसके शयन-कक्ष के द्वार को किसी ने खटखटाया। पल भर के लिए फिरोज के मन में संशय हुआ कि उसके अनुमान से अधिक विलम्ब हो चुका है और इसलिए इकबाल के पिण्डारी उसे बुलाने आए हैं!

फिर से द्वार खटका। यह खटखटाहट उसे जैसे जल्दी दरवाज़ा खोल देने के लिए हुक्म दे रही थी।

जल्दी से उसने सुलताना के शरीर पर कपड़ा और बुर्का डाल दिया। फिर जल्दी-जल्दी कपड़े पहने और दरवाज़ा खोला और खोलते हुए कहा—"मुझे वक्त का ख़याल नहीं रहा। देरी हो गई! अभी आया!"

और दूसरे ही पल उसकी आँखें विस्मय से फैल गईं, खून से लथपथ कपड़ों वाली अनवरी बेगम, उसके सामने खड़ी थी!

"माबदौलत शाहेमलाबार आलीजाह, जहाँपनाह सुलतान फ़िरोज़ को ताज़ीम!"

"फिरोज़ घबरा गया—यह कोई स्वप्न था ? मज़ाक था ?...अथवा पूर्वाधिक अवधि के मौन का विस्फोट था ?

"बेगम........."

"मेरे सुलतान, मेरे मलिक, मेरे शौहर ! आपकी इस बेगम नें शैतान इकबाल को कत्ल कर दिया है और उसके सिर को भाले पर चढ़ा दिया है। इस वक्त उसके सिर को मदुरा का हरेक आदमी देख रहा है ! तमाम पिण्डारियों का काम तमाम हो चुका है !"

"बेगम, बेगम, तू यह क्या कहती है ?"

"आज मेरी खुशी का ठिकाना नहीं है। आज मदुरा का तख्त हरामखोरों के पंज़े से आज़ाद हो गया है। आज उस पर, उसका सच्चा वारिस, मरहूम सुलतान का भाई......मेरा भाई......मेरा शौहर बैठता है।"

हर्षावेश में जैसे वह बेसुध होने जा रही थी और उसकी देह मृत्तिका पिण्ड के समान प्रकम्पित हो रही थी। उसके चेहरे का रंग उड़ गया था और आँख के कोने सहज भींग गए थे। किंतु दूसरे ही पल उसने इस कमज़ोरी को भी झटक कर दूर कर दिया।

"मेरे खाविन्द ! अब देर न करें। ऐसी बातों में देर करना ठीक नहीं। जल्दी से काजी को बुलाइए। जल्दी से आपकी तख्तनशीनी हो। मस्जिदों में आपके नाम का खुतबा पढ़ा जाए। जल्दी कीजिए !"

परिस्थितियों में हुए अचानक परिवर्तन के कारण जिसे कोई खास लाभ न हुआ था और न होनेवाला था, वही उमर कोतवाल आगे आया और बोला—"लेकिन काज़ी ही कहाँ है ? काजी उमरावखान तो मारे गए !"

"सल्तनत खुद चलकर सामने से आ रही है, तब भी क्या मैं एक औरत, तुम मर्दों को सुलतान बनना सिखाती रहूँगी ? अरे, काज़ी न हो तो किसी आमिल को बुलाओ, किसी मौलवी को बुलाओ। दूसरा कोई न हो तो सैयद मंजूरशाह को बुलाओ !" मलिक फिरोज के हुक्म की राह देखे बिना ही उमर कोतवाल फौरन बाहर निकल गया।

अनवरी बेगम ने कहा—"सुलतान, अब सुस्ती छोड़िए। मदुरा के सभी

रईस इस वक्त बाहर आ गए हैं। कई पिण्डारियों का अंत आ चुका है और बचे हुए भाग खड़े हुए हैं। जल्दी से बाहर निकलो और इस फतह की ख्याति को अपना लो और मदुरा के रईसों के सामने जाहिर करो कि तुमने इकबाल और उसके पिण्डारियों को मदुरा से, मारकर बाहर निकाल दिया है और सुलतान गयासुद्दीन के सच्चे वारिस के रूप में आपकी तख्तनशीनी हो रही है!"

मलिक फिरोज ने अपने पीछे कमरे में देखा।

अनवरी ने कुछ इंतज़ार, कुछ उतावली और कुछ चिढ़ से कहा—"यह वक्त अंदर देखने का नहीं है। ज़रूरत बाहर नज़र डालने की है। यह बेगम भागकर जानेवाली नहीं। यह हमारी सलामती और शांति की बहुत बड़ी अमानत पूँजी है। विजय नगर को चुप रखने की चाबी है। आप बाहर आइए। कपड़े बदलने की ज़रूरत नहीं है। खून से रँगी हुई मेरी यह तलवार उठाओ और इसी वक्त बाहर निकल आओ।"

"लेकिन, मंजूरशाह को बुलाया गया है, उसका क्या होगा?"

"जब मंजूरशाह आएगा उसे जामा मस्जिद और तमाम मस्जिदों में आपके नामका खुतबा पढ़ने का मैं हुक्म दूँगी। सुलतान, आप वक्त की कीमत नहीं पहचान रहे हैं! आपकी फतह पर दूसरा कोई दावेदार उठ खड़ा हो, इसके पहले ही अपना दावा आप सभी रईसों के सामने रख दीजिए!"

मलिक फिरोज समझ गया। वह बाहर आया। खून के धब्बों से भरा बेगम का घोड़ा बाहर खड़ा था, वह उस पर सवार हो गया। उसके चार-पाँच दोरंगी उसके साथ-साथ चले।

श्रीरंग मंदिर के सामने जहाँ इकबाल ने सुलतान गयासुद्दीन दमगनी का सिर भाले पर चढ़ाकर, लोगों के देखने के लिए रख दिया था, वहीं इकबाल का सिर भी भाले पर टाँग दिया गया था। मदुरा के रईस एक ही दिन में सल्तनत के दो-दो दावेदारों के सिर पास-पास लटके हुए, देख रहे थे। सब के चेहरे व्याकुल और विमूढ़ थे। किसी को कुछ समझ न आता था कि अब क्या होगा?

"सुलतान फिरोज ! सुलतान फिरोज़ !!" एक आवाज़ उठी। रईस सुनते रहे। देखते रहे !

घोड़े पर सवार मलिक फिरोज़ आ रहा था।

फिर लोगों ने उसके दाँव को देखा-परखा और राहत का अनुभव दिया। फिरोज़ ने भी लोगों से 'सुलतान फिरोज' का जय-जयकार कराया—

"प्यारे रईसो, आज इस सल्तनत के पापों का नाश हो गया है। पाक परवरदिगार खुदाताला ने मेरी तलवार को कीर्ति दी है और मैंने दुश्मनों का नाश कर दिया है। दो शैतान जो मेरे तख्त की इज्जत और शान को बेरौनक करना चाहते थे, खत्म हो चुके हैं और मरहूम सुलतान का तख्त आज नूरेरोशन हुआ है। अब सारा इंतज़ाम इसलामी कानून के मुताबिक होगा। जिन लोगों को इंसाफ नहीं मिला है, उन सब को इंसाफ मिलेगा। हमारे मरहूम भाई के अमीरों, अमलदारों और सौदागरों को जो-जो ज़ुल्म और परेशानियाँ बर्दाश्त करनी पड़ी हैं अब वे सब खत्म हो जाएंगी। जाइए, मौज़ मनाइए। खुशी मनाइए। परेशानी के दिन पूरे हो चुके हैं। तुम्हारे सुल्तान का तुम्हें यह वचन है कि जिस परवरदिगार ने उसे मदद दी है, वह उसका बेवफा नहीं बनेगा। दुश्मनों का खात्मा करने के लिए जिस खुदा ने उसे अक्लमन्दी और सब्र दी है, उसी खुदाताला ने उसे अपने अज़ीजों की दोस्ती बढ़ाने की, हमदीनों को आबाद रखने की और गैरदीनों को दबाकर रखने की अक्ल हिम्मत और ताकत दी है। और आगे भी देता रहेगा !"

मलिक फिरोज मदुरा के रास्ते-रास्ते पर घूम गया। उसने कदम-कदम पर पिण्डारियों के, पड़े हुए शव देखे। धीमे-धीमे वह मानो गहन विचार में खो गया। धीमे-धीमे उसके चेहरे पर एक प्रकार की विचित्र मुस्कान छा गई—ये वही पिण्डारी थे, जिनकी सहायता माँगने के लिये वह मंजूरशाह के पास गया था और जिन्हें उसने हथियार दिये थे। यही हथियार सुल्तान गयासुद्दीन ने उसे दिये थे और यही गयासुद्दीन के विनाश का कारण बने...! आज उन्हीं पिण्डारियों के शवों को देखकर वह चकित था।

"आइये सुल्तान, हमारी कोशिशें कामयाब हुईं ! जिस तरह हमने सोचा था, उस तरह नहीं तो दूसरी तरह वे पार हुईं !"

मंजूरशाह ने 'हमारी' शब्द पर जोर देते हुए कहा। सुल्तान ने मुस्करा कर जैसे इसे स्वीकार किया।

"सैयद साहब, हार और जीत तो मालिक की मर्जी है, लेकिन हमारी कामयाबी, जरूर हमें ताजगी देती है।"

"आपकी हुकूमत के लिये खुदा से दुआ माँगता हूँ !"

"मालिक की जैसी मर्जी। वह अपनी बेहद अक्लमंदी से सिपाही को सुल्तान बना देता है। और जो किसी को सिर नहीं झुकाते, ऐसे सुल्तानों को फाँसी के सामने सिर झुकाने को मजबूर कर देता है। यह सब खुदा की कुदरत है।"

"जी ! उसकी कुदरत के बिना तो खलक में एक पत्ता भी नहीं हिल सकता...आपने मुझे याद फरमाया ?"

"हाँ, मदुरा के सुल्तान के रूप में आप मेरे नाम का खुतबा मदुरा की जामा मसजिद में पढ़ेंगे।"

फिर सुल्तान ने अनवरी बेगम के सामने देखा और कहा—"सुल्ताना साहब, हमारा पहला फर्ज, सुल्तान के काजी की पसन्दगी का काम है। हमारे एक वफादार शागिर्द को इस ओहदे पर बैठाते हुए मुझे बहुत खुशी हो रही है।"

पलभर के लिए सुलतान फिरोज झिझका और मंजूरशाह उसकी तरफ देखता रहा। सुलतान अनवरी बेगम को देखता रहा और क्षणभर के लिए उसके चेहरे पर विचित्र स्मित लहरा कर लौट गया।

"आइये अनवरी बेगम, अपनी पसन्द में मेरा हाथ बटाइए। सुलतान के काजी की पसन्दगी बहुत सोच-विचार कर करनी चाहिए। चूंकि रईसों पर भी काजी का हुक्म चलता है और सल्तनत के कारोबार का भी वह पेशवा है, इसलिए इस ओहदे के लिए मैं उमर कोतवाल का चुनाव करता हूँ।"

"उमर कोतवाल ?......"

अनवरी के मुँह से निकला। विस्मय से उसने फिरोज के कान में पूछा—"सैयद मंजूरशाह नहीं ?"

"अगर तुम्हारी यही मर्जी हो तो........।"

"नहीं, लेकिन....।"

सिर्फ अनवरी बेगम सुन सके, इतने धीमे स्वर में फिरोज ने कहा—"सुल्ताना, इससे ज्यादा मैं आपकी जाँनिसारी की कद्र कैसे कर सकता हूँ ?"

उमर कोतवाल निपट अचरज से देखता रह गया—"लेकिन मेरी कोतवाली...।"

"हमारी सल्तनत में काज़ी और कोतवाल के ओहदों पर एक ही आदमी रह सकता है और काम कर सकता है। अगर कोतवाली के काम में तुम्हें मददगार की ज़रूरत हो तो, खुद ही पसन्द कर लेना।"

मंजूरशाह का चेहरा रुई की पूनी जैसा सफेद और फीका पड़ गया।

सुलतान फिरोज ने उमर कोतवाल से कहा—"मगरूर की मसनद काजी के काम के लिए, आपको दी जाती है उमर कोतवाल !"

"और मैं....... मुझे.......।" लगभग चीख के समान स्वर में सैयद बोल उठा। सबका ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ।

सुलतान ने तनिक भी रुके-झुके बिना, जवाब दिया—"तुम तो सैयद हो। क्या आज तक कोई सुलतान किसी सैयद को कोई इनाम देने की हिमाकत कर सका है, कि मैं करूँ ? लेकिन हम तुम्हें सैयद के तौर पर तुम्हारे फर्ज से तुम्हें आगाह कर देते हैं — मगरूर में रईसों और यतीमों के कई बच्चे हैं। उन्हें मगरूर जाकर आप तालीम दीजिए। वहाँ मदरसे को सँभालिए। आप सैयद हैं, आमिल हैं, बच्चों को आप कैसी तालीम देते हैं, यह देखने के लिए हम एक बार मगरूर आएंगे।

अपनी मनोकामना के महलों के खण्डहरों में खड़े हुए। मंजूरशाह ने सिर झुकाया। उसके देखते दो-दो बार राज्यपट परिवर्तन हुए, किन्तु वह खुद तो तेली के बैल की तरह, जिस हालत में था, उसी में रहा !

उसने दाँत पीसकर, होठ दबाकर जरा उतावले स्वर में कहा—"और सुलतान साहब, कर्नाटकी आनंदी ?"

"कर्नाटकी ?" सुलतान ने आँखें तरेर कर कहा—"किसकी कर्नाटकी आनंदी की चर्चा कर रहे हैं, सैयद ?"

"शाही महल जब इकबाल के अधिकार में था, हमने उसकी खोज करवाई थी; कर्नाटकी आनंदी वहाँ नहीं थी। मदुरा में कहीं उसका पता न चला ! न जाने कहाँ गई ? जमीन उसे निगल गई या क्या हुआ ?"

"आपने पूरी जाँच ?..."

"मदुरा के सुलनान के सामने, एक नाचनेवाली की तलाश और जाँच करने के बजाय, और भी कई जरूरी काम हैं ! सैयद मंजूरशाह, आप मगरूर जाने के लिए कब रवाना हो रहे हैं ? वहाँ का मदरसा आपकी राह देख रहा है !"

बेचारा मंजूरशाह !!

१५ टोंडाईगढ़ में

ऊँची एक टेकरी पर एक चबूतरा बना था। उसके निकट बरगद का एक अति विशाल पेड़ अपनी छायाएँ फैलाए खड़ा था। ऐसा लगता था मानो अनादिकाल का कोई जोगीन्दर अपनी जटाएँ बिखराए अचल खड़ा है! कोई कहता था, चबूतरा हनूमान का है। और किसी का खयाल था कि यह किसी पुराने पीर की दरगाह है। कोई कहता, युगों पूर्व ईसाई साधु थॉमस यहाँ आकर मर गया था, उसी की यह कब्र है।

जो हो, सो हो!

दक्षिणापथ के समस्त रमणीय स्थानों में रमणीय स्थल था टोंडाईगढ़! और टोंडाईगढ़ का अति रमणीय स्थल यही था! एकान्त स्थल की तलाश करनेवाले प्रेमियों के लिए यह संकेतभूमि थी!

और टोंडाईगढ़ किसी अर्धसंस्कृत, लुटेरे राजा की राजधानी की अपेक्षा वेदकाल के किसी महर्षि के आश्रम-सा प्रतीत होता था! किसी झगड़ैल बालक ने मुट्ठी भर कंकर उछाल दिए हों, इस तरह जमीन पर दो-चार-छः सौ हाथ टेकरियाँ फैली पड़ी थीं! प्रत्येक टेकरी पर एक आवास बना था। टेकरियों की चोटियों, ढालों और तलहटियों पर शीशम, सागौन, पीपल और बरगद के बड़े-बड़े पेड़ लहरा रहे थे! उनकी छाया सघन और रहस्यमयी थी!

इस सुघन तरुराजि के बीच, जिस पर कैठिनाई से, एक बार एक आदमी चल सकता था, ऐसी एक पगडंडी बनी थी। एक से दूसरे आवास की ओर जाने पर एक टेकरी का ढाल उतर कर, दूसरी टेकरी का ढाल चढ़ना पड़ता था! इन टेकरियों की गोद में बहनेवाली पर्णा नदी से मिलन के लिए व्याकुल, वर्षा-जल के छोटे-छोटे जलस्रोत थे। टेकरियों के कतिपय गड्ढों को कई झाड़ियों ने ढँक लिया था, इनमें से कई कँटीली भी थीं।

वर्षा वेला में समस्त टोंडाईगढ़ वाहन-व्यवहार-विहीन हो जाता था! पर्णा नदी की बाढ़ पर सारा गढ़ मानो सैकड़ों हरे-भरे द्वीपों का विस्तृत क्षेत्र बन जाता था। तब दो-दो, चार-चार दिन तक आदमी घर से बाहर नहीं निकल सकते थे।

भांति-भांति के पंछीगण—मयूर, तोता-मैना, हंस और अन्यानेक अपने मधुर कलरव से सारे गढ़ को सदैव गुंजित करते थे। वर्षाकालीन विविध स्रोतों की जलध्वनि तूफ़ानी समुद्र-तरंगों के शोर की तरह, दूर-दूर तक सुनाई देती थी!

देवता भी जहाँ आकर, निवास करने के लिए, ललचा जाएँ, ऐसा यह टोंडाईगढ़ शम्बूर देश की राजधानी था। यहीं रहकर शम्बूरराय पाँच सौ गांवों के अपने मंडल का शासन करता था—यह मंडलांचल नीलगिरि के पूर्वी प्रदेश से लेकर, पूर्वी घाट सहित दक्षिणापथ के बीच के वनों और ऊँची टेकरियों तक फैला था! और शम्बूरराय—जैसे किसी रमणीय वनराई में विहार करनेवाले विहंगों के मध्य में, उनके शिकार का लोभी बाज बैठा है!

अपने आस-पास के भू-भाग से पाँच सौ हाथ ऊँचे स्थान पर बैठा शम्बूरराय किसी महर्षि के तपोवन के समान फैले हुए टोंडाईगढ़ का पहरा देता था! यत्र-तत्र आँखों को प्रिय लगनेवाले पंछी गण कर्णप्रिय कूजन करते थे!

यह तो किसी गंधर्व का क्षेत्र था, उसके दल के रियाज करने का स्थल था या कि जोगीन्दर की समाधि के लिए उपयुक्त परम शान्त स्थान!

लेकिन मुबारकखान और रोशन के दिलों में इस वक्त जरा भी शांति न

थी। उन्हें देखकर विदित होता था : एक दूसरे के दुःख में सहानुभूति प्रकट करनेवाले दो व्यक्ति बैठे हैं; पुरानी प्रीति के प्रेमीयुगल का ध्यान नहीं आता था !

"इतनी दूर से मैं आया हूँ......फिर भी तुम चुप हो रोशन ?"

"क्या कहूँ, मुबारक ? मेरे वालिद......." रोशन ने दाँत पीस कर कहा—"तुम्हारा आना मुझे अच्छा लगा है, जैसे मेरा दिल लौट आया है। ....लेकिन, तुम किस तरह की खबर लाए ?......हाय......उस हरामजादे पिण्डारी इकबाल ने मेरे वालिद को मार डाला ! मैं क्या कहूँ ?..."

"इतना ही बाकी रहा कि उसने मेरे वालिद का कत्ल नहीं किया ! ...रोशन !"

"मैं सोचती हूँ, मुबारक, यह साजिश किसकी है ?....किसकी हो सकती है ?...सुलतान गयासुद्दीन दमग़नी नालायक आदमी हो सकता था मगर उसने मेरे वालिद पर मेहरबानी रखी, मेरे वालिद उसके काज़ी थे ! लेकिन इकबाल ? उसके बजाय दूसरा आदमी तो नहीं है कातिल ?"

"रोशन, यह तो, भला, मैं कैसे कह सकता हूँ ?...मेरे वालिद...!"

"मुबारक गुस्ताखी माफ करना ! लेकिन इस कत्ल में तुम्हारे वालिद की भी कोई गलती है, यह तुम्हें नहीं लगता ? क्या यह सच है, जैसा कि मेरे मौसा कहते थे, तुम्हारे वालिद ने ही इकबाल को रुपया-पैसा दिया था ?"

"अगर यह बात सच हो तो, तुम्हारे वालिद के खून से मेरे हाथ सने होने चाहिए, ऐसी सूरत में, मैं तुम्हें क्यों कर मुंह दिखा सकता था ?"

"मुबारक, तुम मुझे दिलोजान से प्यार करते हो ?"

"क्योंकर आज यह पूछ रही हो !"

"तो, जिसके हाथ मेरे वालिद के खून से सने हुए हैं, उस इकबाल के वकील बनकर तुम यहाँ कैसे आ गए ?"

"तुम्हें देखने के लिए, तुमसे मिलने के लिए ! इस भयंकर वक्त में तुम्हारे पास रहने के लिए !"

"हाँ बेटी, मैंने सोचा कि मैं खुद ही जाकर अपनी बेटी को अच्छे समाचार दूँ।"

"अच्छे समाचार ! क्या इस दुनिया में अब मेरे लिए कोई अच्छे समाचार भी हो सकते हैं ?"

"बेटी, जो होना था, हो गया। किस्मत के सामने तो कोई नजूमी या कोई बादशाह भी लाचार होकर खड़ा रह जाता है।"

"मौसा जी, यह बात सच है, होनहार होकर रहती है। तब हमारे पास चारा नहीं रहता। लेकिन फिर ऐसे आदमी के लिए अच्छे समाचार हो ही क्या सकते हैं ?"

"पगली है मेरी बेटी, किस्मत खुदा की चोट है और समाचार तो ज़िन्दगी की रोज़मर्रा घटनाओं की पल्टी हुई काया है। जिस पर किस्मत का कोड़ा पड़ा है उसके लिए बुरे समाचार नहीं होते हैं। समाचार होने पर, अच्छे ही हो सकते हैं। अल्लाह के इंसाफ का तराज़ू इस तरह एक समान रहता है।"

"ऐसे कौन-से समाचार हैं कि आपको खुदाई इंसाफ के तराज़ू की याद आई ?"

"तेरे वालिद की हत्या करनेवाला इकबाल भी मारा गया है और मदुरा के तख्त पर मलिक फिरोज़, सुलतान फिरोज़ एहसानशाह के नाम से गद्दी पर बैठा है।"

"इकबाल मारा गया ? उस कातिल का कत्ल हुआ ? मौसा, आपकी खबरों से मालूम होता है कि किसीने अपने हाथ में खुदाई इंसाफ की शमशीर को ले लिया है ?"

"मलिक फिरोज़ ने, सुलतान फिरोज़ एहसानशाह ने।"

"खुदा आपकी सल्तनत को सलामत रखे।" रोशन ने कहा।

"शम्बूरराय के पास सुल्तान का वकील आ पहुँचा है। सुल्तान तुम्हें मदुरा बुला रहा है। तुम्हारे वफादार वालिद की नौकरी के ऐवज उनकी तमाम दौलत और जागीर, वह तुम्हें सौंपना चाहता है। इसलिए तुम सफ़र

के लिए तैयार हो जाओ और मुबारक खान, शम्बूरराय ने आपको याद किया है। हम इसी वक्त उसके पास जाएँगे।"

मुबारक रोशन के चेहरे पर एक नज़र डालकर आदिलशाह असली के पीछे-पीछे चला। मुबारक के मन में विकट व्यथा उत्पन्न हुई थी। आज तक वह रोशन के चेहरे की भाषा का एक-एक अक्षर पढ़ सकता था, लेकिन आज वह उस भाषा को पढ़ न सका। रोशन के वालिद का क़ातिल भी कत्ल हो चुका है और खुदा का इंसाफ शैतान तक पहुँच गया है। इस बात ने उसके मन में कौन-सा भाव पैदा किया, यह वह समझ न सका। उसने विचार किया कि औरत का दिल अँधेरे कुएँ की तरह है। उसकी गहराइयाँ नापने का काम एक सिपाही का नहीं है। और अपने दिल को समझाने की कोशिश की, लेकिन उसका दिल समझा नहीं।

"मैंने जो कुछ कहा, उसे तुमने अच्छी तरह समझने की कोशिश नहीं की है, मुबारक मियाँ! या तुमने मेरी बात की गहराई को नहीं देखा है।"

आदिल शाह उसे कुछ कह रहा था और वह बात उसे समझनी चाहिए थी।

"जी।" मुबारक खान ने अपने मुर्झाए हुए दिल को बलात् वश में किया।

उसने चौंक कर आस-पास देखा। जब तक उसके आँख और कान उसके मन की अंधियारी गली में भटक रहे थे, तब तक वे टोकरी के सिरे से नीचे उतर आए थे।

"जी, गुस्ताखी माफ़! लेकिन मेरा दिल आपकी अजीब खबर से...मानो ...मानो....ताज्जुब में पड़ गया।"

"सच है, हरेक सुननेवाला दुहरे ताज्जुब में पड़ जाता है—एक तो समर्थ सुल्तान गयासुद्दीन को इकबाल-जैसे पिण्डारी ने कैसे मार डाला? और दूसरे, यह कि मलिक फिरोज ने इस खूनी पिण्डारी का मुकाबला कैसे किया? एक ही दिन में दो-दो सुल्तानों का कत्ल होना, मामूली बात नहीं है! घटना इतनी अजब है कि इसकी थाह पाना मुश्किल है। लेकिन कहा

है कि जिसका अंजाम अच्छा, उसका सब कुछ अच्छा। आखिरकार असली वारिस सुलतानी खानदान तख्तनशीन हुआ है।"

"जी, यह बात भी बड़ी अजब लग रही है ? कैसे यह हुआ ? मलिक फिरोज़ तो बिल्कुल कैदी की हालत में थे। और मैंने अपनी आँखों उनकी हालत देखी है !"

"जो कुछ हो। उमर नायक तो मलिक फिरोज की बहादुरी का बखान कर रहे हैं !"

"उमर नायक ? उमर कोतवाल ?......ये...ये।"

"हाँ, उमर नायक सुलतान फिरोज की सल्तनत के काज़ी बन गए हैं और सुल्तान के वकील की हैसियत से यहाँ आए हैं।"

मुबारक की मुस्कान रहस्यमय बनी—"वही आया है !"

"क्यों ?"

"वह उसका दूसरा दिल है, दूसरी जान है।"

मुबारक ने अपनी मुस्कान को अधिक रहस्यमयी बनाया।

"तुम नौजवान हो, खानदानी हो। रोशन के मरहूम वालिद की इच्छा थी कि रोशन की शादी तुमसे हो। रोशन भी इस बात को जानती है और उसे यह स्वीकार भी है, यह मैं भी जानता हूँ। इसलिए मैं तुमसे दिल खोल कर कुछ कहना-सुनना चाहता हूँ।"

"जी।"

"परन्तु तुम बेभान हो। मेरी बात नहीं सुनते। रोशन के वालिद के कत्ल के बाद, उनकी दौलत चली जाने पर, तुम्हारा दिल बदल तो नहीं गया ?"

किसी नशेबाज के गाल पर एक तमाचा पड़ने पर जिस तरह उसका नशा सारा काफूर हो जाता है, उस तरह मुबारक के होश ठिकाने आ गए। चौंककर वह बोला—

"गुस्ताखी माफ, बेअदबी भी माफ, लेकिन मुझे यह बात अपने खानदान की बेइज्जती मालूम होती है। मेरे वालिद सौदागर हैं और मैं सिपाही हूँ। सौदागर की कभी दो जबान नहीं होती और सिपाही कभी बेईमान नहीं होता। लेकिन आप हमारे खानदान की खूबी से वाकिफ नहीं हैं।"

"मैं हसन सौदागर को नहीं पहचानता हूँ, लेकिन ऐसा कौन हो सकता है जिसने इस मशहूर सौदागर का नाम न सुना हो ? मैं तुम्हारे वालिद की तारीफ से वाकिफ हूँ। लेकिन आज का जमाना ऐसा है कि कई जगह, कई खानदानों में वालिद की खानदानियत बेटे-बेटी तक नहीं पहुँचती !"

"आप मेरी चर्चा कर रहे हैं या मलिक फिरोज की, यानी सुलतान फिरोज एहसानशाह की ?"

"हाँ, अब तुम कुछ समझे। अभी ही मैं कह रहा था। इसी बात-चीत के लिए, दूसरा कोई सुन न ले, इसलिए दमे का मैं बीमार इस ऊँची टेकरी तक चढ़ कर आया। वैसे मेरी तन्दुरुस्ती और तबीयत ऐसी ज़हमत उठाना पसंद नहीं करती, लेकिन मैं ये बातें उमर कोतवाल की गैरहाज़िरी में करना चाहता था, इसलिए मुश्किल से भी यहाँ आ पहुँचा।"

"जी।"

"मैंने जो कुछ कहा, उसे तुमने नहीं सुना। मैंने सोचा कि तुम मेरी बात सुनना नहीं चाहते।"

"बेअदबी माफ कीजिए ! मेरा दिल बेचैन था। अब ऐसी गलती, फिर नहीं होगी।"

"तो सुनो, तुम जानते हो, रोशन के वालिद काजी उमरावखान ने रोशन को यहाँ मेरे पास क्यों कर भेजा था ?"

"जी, लोगों के मुँह से तो बहुत-कुछ सुना है, लेकिन असल बात क्या है, यह मैं नहीं जानता।"

"तो सुनो, मलिक फिरोज पर काजी उमरावखान का जरा भी भरोसा नहीं था। फिरोज के तौर-तरीके उमरावखान को नापसन्द थे। लेकिन यह सियासी सवाल था। मलिक फिरोज के भाई सुलतान नासिरुद्दीन को मारकर, सुलतान गयासुद्दीन दमगनी मदुरा के तख्त पर बैठा था। काजी उमरावखान सुलतान गयासुद्दीन का ईमानदार नौकर था। इसलिए मलिक फिरोज सुलतान गयासुद्दीन की तरफ वफादार न था। उमरावखान भी इस बात को जानते थे। फिर भी उन्होंने सुलतान के गुस्से से मलिक फिरोज को बचाया और यहाँ तक कि फिरोज को मगरूर की सूबेदारी दिलाई।

"अपने मरहूम भाई के कत्ल को भूल जाए या मदुरा की सल्तनत का अपना दावा छोड़ दे, और इस हद तक मलिक फिरोज झुक जाए, यह आशा तो काजी उमरावखान को भी न थी। काजी उमरावखान बहुत समझदार और अक्लमंद आदमी था, आमिल था। एक-दूसरे के दिल ज्यादा फट जाएँ, यह काजी की मर्जी न थी। वे तो हमेशा दो दिलों को जोड़ने की कोशिश में ही रहते थे।

"मुबारकखान, मेरी बात सच मानना, काजी मेरे साढ़ू थे, इसीलिए यह सब नहीं कहता, लेकिन कई सालों की जान-पहचान पर मैं तुम्हें अपनी बात कह रहा हूँ—उमरावखान काजी की मौत मदुराई सल्तनत के लिए मुसीबत साबित होगी।"

"जी!"

"इसलिए मलिक फिरोज अपनी जाहिर चाल छिपाने के लिए, टेढ़ी चाल चल रहा है। उमरावखान काजी का दिल दरिया था। और सुलतान गयासुद्दीन की कई बुराइयों के बीच एक अच्छाई भी थी, उमरावखान काजी से बिना पूछे वह राजकाज में एक कदम भी आगे या पीछे नहीं रखता था। इसलिए वे मलिक फिरोज पर सुलतान गयासुद्दीन की नाराजगी के अपने मकसद को अमल में लाने से कई बार रोक सके थे।"

"जी, आप जो कुछ कहते हैं, सच है। कई लोगों को इस बात पर ताज्जुब है।"

"उमरावखान काजी के दिल में इन्साफ की जितनी कद्र थी, उतनी ही अगर राजकाज में गहरी अक्लमंदी होती.......लेकिन इन्सान में जो गुण नहीं है, उसका अफसोस करने से क्या फायदा? उस में जो कुछ है, हमें तो उसी की कद्र करनी चाहिए।"

"बेशक!"

मुबारक समझ नहीं पा रहा था कि बात किधर जा रही है। उमराव-खान काज़ी के कत्ल की घटना मुबारकखान के लिए इतनी पेचीदी और स्मृतियों से भरी हुई थी कि वह सारी घटना को भूल जाना चाहता था।

ऐसी हालत में, यह बुजुर्ग—बुजुर्ग-जैसा साथी, इतनी लम्बी-लम्बी चर्चाएँ कर रहा था कि जिनका पार पाना मुश्किल था !

"जी ।"

"मैंने तुम्हें अपनी बात-चीत इतने विस्तार से इसलिए सुनाई कि तुम अच्छी तरह समझ सको कि उमरावखान काज़ी मलिक फिरोज़ के प्रति कभी भी अन्याय करना नहीं चाहते थे !"

"जी ।"

"इसलिए काज़ी उमरावखान के जीते जी, मन में उनके दहशत पैठ गई थी, जिसका मैं तुम्हें इशारा कर रहा हूँ—काजी उमरावखान को मलिक फिरोज की गृहस्थी की चालबाजियों पर पूरा-पूरा शक था। तुम तो, उमराव कोतवाल को जानते हो !"

"जी हाँ। जैसा कि आप कहते हैं, उमर मलिक फिरोज़ के, आज के सुलतान फिरोज़ एहसानशाह के घर-संसार की चाल का वह सिर्फ एक प्यादा था !"

"हाँ, अब तुम मेरी बात-चीत के दौर को समझे। बाहरी लोगों की बातें ठेठ मदुरा की सल्तनत की सीमाएँ पार कर हमारे जनानखाने तक आ पहुँची हैं कि सुलतान फिरोज के हरम में उमर कोतवाल रहस्यमय आदमी है।"

"जी। मदुरा में हरएक आदमी इस सचाई को जानता है कि सुलतान फिरोज़ और उनकी चचेरी बहन अनवरी बेगम की शादी किसी आपसी मोहब्बत का नतीजा नहीं है, लेकिन एक खानदान की दो शाखाओं को जोड़ने का एकमात्र तरीका है। दोनों मियाँ-बीवी एक-दूसरे की जानकारी से ही अपने-अपने रास्ते पर चल रहे थे।"

"ठीक है। अनवरी बेगम का रास्ता उमर कोतवाल का रास्ता है और इन्हीं उलझनों के बाद आखिर में मलिक फिरोज़ का रास्ता रोशन की तरफ फैल रहा था...।"

"रोशन की तरफ ?" राहगीर मुसाफिर जिस चीज़ को रस्सी समझ

रहा था, वह काला नाग निकलती है, और उसे जो त्रास और गुस्सा आता है, वही मुबारक के दिल और जिगर में पैदा हो गया और उसकी ग्रीवा में एक तेज़ लकीर सी खिंच गई।

"अब तुमने कुछ मुद्दा समझा है। उमरावखान का अन्देशा सच था। इतना सच कि उन्होंने अपनी आँख की पुतली बेटी को अपनी मौसी के पास भेज दिया, यानी मेरे हवाले कर दिया।"

"तो...तो...तो...आप फिर उसे वहीं क्यों भेज रहे हैं?"

"यही चीज मैं तुम्हें समझाने की कोशिश कर रहा था—अगर रोशन के वालिद की जमीन और जायदाद—सुल्तान लौटाना चाहता है तो कानूनन मैं रोशन को रोक कर नहीं रख सकता। कानून का यह भी हुक्म है कि फर्जमंद मजलूम आदमी की दौलत को अगर कोई कातिल हड़प कर गया हो और सुल्तान ने उस कातिल को कत्ल कर दिया हो और फर्जमन्द के वारिसों को दौलत या जायदाद वापस देना चाहता हो तो वारिसों को चाहिये कि उसे स्वीकार करें, अन्यथा सुल्तान की बेअदबी मानी जाएगी और मदुरा का सुल्तान चाहे जो हो, शम्बूरराय या उसके वजीरेआजम के बस की बात नहीं है कि सुल्तान की बेअदबी करें। यह तो तुम्हें मालूम ही है कि विजयनगर का महामंडलेश्वर बुक्काराय हिन्दू-साम्राज्य का झण्डा लेकर गाजी बनने के लिए मैदान में आ डटा है। हमें खबर मिली है कि उसकी फौजें उसके भाई राजकुमार कम्पनराय और वजीरेआजम के भाई सेनापति सायण की राहबरदारी के नीचे कूच का डंका बजा चुकी हैं। उत्तरपर्णा और दक्षिणपर्णा के बीच में उनका चन्द्रगुट्टी का किला इतना मजबूत है कि इस किले को पारकर आज तक एक चिड़िया भी इधर से उधर नहीं फड़क सकी।"

"पानी...पानी...?"

"जरा सब्र करो। असल बात यह है कि जिस तरह शेर के डर से हिरन और चीते एक हो जाते हैं, उस तरह साम्राज्यविस्तार की बाढ़ ज्यों-ज्यों नजदीक आ रही है, त्यों-त्यों शम्बूरराय और मदुरा के सुल्तान

को आपसी दूरी दूर करनी चाहिए। विजयनगर के विरुद्ध हम तैयार नहीं हैं, सो बात नहीं—वन के पेड़ पेड़ और डाली डाली पर हमारे दोरंगी बैठे हैं। हमारा ख़याल है कि विजयनगर की फौजों को चन्द्रगुट्टी से टोंडाई-गढ़ तक पहुँचने में कम से कम सौ साल तो लग ही जाएँगे। हमारी ज़मीन पर उनके हाथी और घोड़े काम न आएंगे। उनकी बिरंगियाँ हमारे अरण्यों में मात्र अरण्यरोदन का काम करेंगी। फिर भी हम मदुरा के सुल्तान की हमदर्दी खोना नहीं चाहते। इसलिए इसलामी कानून के मुताबिक सुल्तानी दरख़्वास्त के जवाब में हम ना नहीं कर सकते।"

"यानी अपनी राजकीय सुविधा के लिए आप एक मासूम लड़की का बलिदान दे सकते हैं, यही न ?"

"अभी तुम बच्चे हो, अरे जवान, अगर इतनी ही बात होती तो मैं तुम्हें यह लम्बी दास्तान क्यों सुनाता ? तुम यह जान लो कि रोशन अब मेरी अपनी ही बेटी है।"

"फिर ?"

"इसलिए तुम से शिफारिश करता हूँ। तुम रोशन से विवाहित हो—मान लो, हो। तुम्हारी शादी भी यहीं हो जाएगी। तुम सिपाही हो। यह तुम्हारी बीवी है। तुम इसकी हिफाज़त कर सकते हो और करोगे। अगर सुल्तान फिरोज़ इसलामी कानून के मुताबिक चलना चाहता हो तो, उसे मौका देना पड़ेगा, वरना चाहे जैसे भी तुम रोशन को लेकर, यहाँ लौट आना।"

"जी हाँ। लेकिन उसकी आवाज़ कहती थी कि उसे कुछ समझ में नहीं आया है।"

"मुबारकखान, तुम अभी जवान हो! संसार और राजकाज की भूल-भुलैया से अनजान हो। हमने तो इन्हीं हालतों में अपने बाल सफेद किये हैं। इसलिए जहाँ तुम्हें हमारी बात समझ से बाहर मालूम होती हो, वहाँ तुम्हें हमारी राय पर यकीन लाना चाहिये। फिर भी आखिरी फ़ैसला तो तुम्हारे हाथ रहेगा। अगर मदुरा में तुम्हें कोई अन्देशा हो, तो तुम यहाँ

चले आना। मुबारकखान, अभी तुम नवजवान हो, और सारी दुनिया तुम्हारी है, इसलिए खतरे का सामना करना सीखो। खतरे के बीच में जीना सीखो। दहशत को अपने पर सवार न होने दो, तुम दहशत पर सवार होओ।"

कहकर आदिल शाह खड़ा हो गया। उसने बात अपनी आगे बढ़ायी—"चलो, तुम्हें शम्बूरराय के पास ले जाने का फर्ज मेरा है। उमर कोतवाल जो खरीता लाया है, उसका जवाब तुम्हारे जरिये भेजा जाएगा, इसलिए तुम्हें हमारी हिफाजत और हमारा सहारा भी मिल जाएगा और सुल्तान फिरोज एहसानशाह के दरबार में दर्जा भी मिलेगा।"

तलहटी की हरी-भरी वनराइयों की पगडंडियों पर, प्रकृति की ताज़गी और शोभा के बीच में चलते हुए, राजकाज और मानव-मन की आशंकाएँ भी टेढ़ी-तिरछी लग रही थीं। शिरीष और वनगंधा के फूलों के बीच में, आकर और धतूरे की कमानों के बीच में, वे मानों किसी बड़े राजकाज के बजाय, वनविहार के लिए चल रहे हैं, ऐसा प्रतीत होता था।

शम्बूर देश के शासक का निवास-स्थान किसी चीते की बदबूदार गुफा के बदले नन्दन कानन-सा लगता था, मानो प्रकृति ने आशीविष, फणधर के लिए केवड़े के बगीचे की रचना की है।

एक ऊँची से ऊँची टेकरी पर शम्बूरराय का महल बना हुआ था। टेकरी का ढाल बड़े-बड़े पेड़ों की घनता से सटा हुआ था। उनमें होकर पतली सुनहरी रेखा-जैसी पगडंडी सर्पाकार और गति से चली गई थी। टेकरी पर एक ज़बर्दस्त बरगद का पेड़ था, उसे देखकर ऐसा लगता था मानो जब से धरती पैदा हुई, तब से यह भी अपनी जगह अड़ा-खड़ा है। लोगों का यह कहना था कि पुराणकाल में रामावतार युग में यह वटवृक्ष गृद्धराज जटायु जी का आवास-स्थल था।

यह वटवृक्ष इतना पुराना और मोटा था कि यह खबर न पड़ती थी कि कहाँ इसका तना है, कहाँ शाखाएँ हैं और किधर इसकी जटाएँ हैं। प्रकृति ने इसकी छाया में एक हजार आदमी के बैठने-योग्य रंगमंडप बना दिया था।

छायातल स्वच्छ था और जमीन पर एकदम काले शीशे-जैसे चमकदार पत्थरों का फर्श बना दिया गया था। बड़ की जटाएँ और डालियाँ जैसे विभिन्न कक्षों और खण्डों को अलग करती थीं*।

अपने इस रंगमंडप में शम्बूरराय दरबार लगाकर बैठा था। शम्बूरराय —वर्त्तमान शम्बूरराय का नाम चम्पकराय था, किन्तु कई लोग उसे इस नाम से नहीं जानते थे—के दरबार में लम्बी-चौड़ी बातें नहीं होती थीं। राजनीति की उलझनों का वहाँ काम न था, बस कहाँ लूट मची, कौन लूटा गया, क्या लूट में मिला?—यही समाचार आते थे।

आदिलशाह असली शम्बूरराय के वजीरे-आज़म थे। शम्बूरराय को किसी वजीर की जरूरत नहीं थी, लेकिन ज्यों-ज्यों विजयनगर की साम्राज्य-स्थापना की आँधी शम्बूरप्रदेश की सीमाओं को लड़खड़ाने लगी, और वहाँ से कावेरी के उस पार मदुरा की उस सल्तनत को थरथराने लगी, त्यों-त्यों मदुराई सुलतानों को शम्बूरप्रदेश के उपयोग का महत्व समझ में आया कि यह देश विजयनगर के वारों को अपने पर झेलकर मदुरा को जीने का मौका दे सकता है और शम्बूरराय समझता था कि वह अपने पृष्ठबल के रूप में मदुरा का उपयोग कर सकता है। मदुरा की दोस्ती रहते कोई उस पर पीछे से हमला नहीं कर सकता। अतएव पुरानी अदावतों को भूलकर दोनों को एक दूसरे का सहारा और संग लाभदायी प्रतीत हुआ था, तभी शम्बूरराय ने आदिलशाह असली को अपना वजीरेआजम बना दिया था।

और शम्बूरराय, आदिलशाह को मदुरा से मिलानेवाली जीवित कड़ी के तौर पर सँभाल कर रख रहा था।

इन चीजों के अलावा, इन विषयों के अतिरिक्त शम्बूरप्रदेश में ऐसा कोई काम नहीं था—जिसे राजकाज कहा जाए। अगर कोई आदमी इतना अक्ल-मंद हो जाए कि खेती करना चाहे तो, राजा को कोई उज्र नहीं था और न

* वेद भाष्यकार आचार्य सायण की वृद्धावस्था इसी स्थान में व्यतीत हुई थी। अपने भाष्य भी उन्होंने इसी स्थल पर बैठकर लिखे थे। उनके अन्तिम संस्कार भी इसी स्थल पर हुए।

ही वह किसी प्रकार का हिस्सा या कर ही लेता था। शम्बूरराय की लुटेरी फौजें उधर ठेठ कलिंग तक, उधर ठेठ समुद्रतट तक और इधर भीतर-भीतर बीदर तक और इधर पाण्ड्य भूमि में कांची और एंजी तक भटकती रहती थीं। इनमें शामिल होनेवाला चाहे जहाँ रह सकता था, राज्य को कोई आपत्ति नहीं थी।

ऐसे साफ-सीधे और सुलझन-सम्पन्न राज्य को वजीरेआज़म तो क्या, एक काजी की भी जरूरत नहीं थी, वहाँ उनका कोई उपयोग ही न था। इसलिए आन्तरिक रूप में राजकीय उपयोगिताहीन वज़ारत का उपयोग आदिलशाह असली कर रहे थे और उसकी नियुक्ति सिर्फ भैदुरा की दोस्ती के लिए थी। आदिलशाह असली के पास उनके अपने गुलाम थे, जिनसे वे खेती कराते। बड़ी-सी एक जागीर दबाकर वह बैठे थे। कभी-कभी वे वीर-वणिकों से सौदे भी कर लेते और यों मौज मनाते।

रामायण में वर्णित गृद्धराज ने मनुष्य देह धारण किया हो, ऐसा शम्बूरराय व्याघ्र चर्म पर आसन मार कर बैठा था। उसके कान हाथी के कानों की तरह मोटे और आगे मुड़े हुए थे। उसकी नाक बहुत लम्बी और गिद्ध की चोंच की तरह मुड़ी हुई थी। उसकी आँखें छोटी पर नोकदार थीं। उसकी जटाएँ घनी, काली और घुंघराली थीं।

उसका शरीर लम्बा और हृष्ट-पुष्ट था। पैरों की एड़ी से लेकर कान के सिरे जितनी लम्बी उसकी कराल तलवार थी। उसका अधोवस्त्र बारम्बार घिसे गये, बादामी रंग के वल्कल से बना था। उस पर कमरबन्द बँधा था। उसकी दोनों भुजाओं पर सह्यवासिनी देवी की मूर्तियाँ अंकित थीं। इस देवी को प्रतिदिन एक पशु का बलिदान देने का राजा का नियम था और यह भी उसका नियम था कि बलि-पशु के लहू से वह अपने कपाल पर टीका लगाता। राजा का रंग शीशम के पेड़ के तने-जैसा काला था। उसकी त्वचा इतनी चमकीली थी, जितनी पानी की सतह पर पड़कर लौटनेवाली सूरज की आभा। ऐसा था शम्बूरराय!!

शिकार की राह देखनेवाले गिद्ध की भाँति अपने आवास में बैठा शम्बूरराय नीलगिरि की तलहटी तक, कावेरी के किनारे-किनारे सागर प्रदेश तक,

बहुत मशहूर था ! अपने लुटेरे जीवन के अधिकारों के लिए फ़ना हो जाने को तैयार, जुनूनी वन्यजाति का यह राजा अपनी जुनूनी जमाअत में भी 'जुनूनी आदमी' कहलाता था !

शम्बूर देश का यह राजा शम्बूरराय—चम्पकराय, अपने दरबार में गिद्ध की तरह बैठा था। उसके साथीगण अपने-अपने पद और ओहदे के अनुसार भाँति-भाँति के वनपशुओं के चर्मासनों पर बैठे थे।

मदुरा के सुलतान के वकील को शोभा दे, ऐसे, व्याघ्रचर्म पर उमर कोतवाल बैठा था। वह कोतवाल था, मदुरा की फौज का फौजदार था। तिहरी पद-मर्यादा को सुशोभित करने के प्रयत्न में अपने जड़मुख पर अनंत गम्भीरता का भार लादने की कोशिश में वह बैठा था !

"आइये, वज़ीर साहब !" शम्बूरराय ने आदिलशाह का स्वागत किया—"बैठिए !"

मुबारकखान की तरफ देखकर शम्बूरराय ने मुबारक की ताजिम स्वीकार करने का कष्ट तक न किया। उमर कोतवाल की ओर देखकर कहा—"यह रहा तुम्हारा कैदी ! सुलतान फिरोज़ एहसानशाह को हमारा 'आदाबअर्ज़' कहना !"

"कैदी ?" आदिलशाह असली ने साश्चर्य कहा—"कैदी ? इसने क्या गुनाह किया है ?"

"इसका गुनाह ? इसके गुनाह के बारे में पूछ रहे हैं, आप ?—इसका गुनाह बहुत खौफनाक है ! वजीर साहब उमरावखान काजी को कत्ल करने का !"

"उमरावखान काज़ी को कत्ल करने का ? तुम होश में हो ? या बेहोश हो ?"

"वज़ीर साहब ! इस गुनाह के कई चश्मदीद गवाह हैं। अधिक क्या ! आप इकबाल के साथी, इस कैदी का चेहरा ही ज़रा देख लीजिए !"

पल भर के लिए मुबारक की नजरों में उमरावखान काज़ी के कत्ल की दुर्घटना घूम गई ! आज तक जो बात उसके खयाल में नहीं आई, उसका

पर अभी मगरूर का इलाका उसके अधिकार में रहने दिया जाए ! ...एक न एक प्रकार से उसे तब तक चुप रखा जाए, जब तक सुलतान फिरोज़ के हाथ मज़बूत न हो जाएँ......यही उसका उद्देश्य था ।

इस उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त भारी मूल्य चुकाना पड़ेगा—यह वह जानती थी । और मुँहमाँगा मूल्य चुकाने के लिए वह स्वयं आई थी !

मगर मामले ने तो और ही रंग पकड़ा !

और अनवरी बेगम का दिमाग़ इस रंग के पंखों पर सवार होकर उड़ने लगा !

यहाँ तो सारा मग़रूर अपना था ! पहाड़ियाँ अपनी थीं ! अब तो दौलताबाद तक की राह निर्विघ्न, सुगम थी ! अनवरी बेगम को अकल्पनीय सिद्धि सुलभ हुई थी !

और जुद्दीन—काफ़िर पिछले दो सौ बरसों में कभी कहीं जीते हैं कि आज ही जीत जाएंगे ? फिर क्यों न दौलताबाद और मदुरा मिलकर विजय-नगर को आपस में बाँट लें ?

और फिर दौलताबाद....और फिर दिल्ली । दौलताबादी कुमुक के सहारे मदुरा की सलामती तो ठीक, यह तो मानो दिल्ली की सल्तनत आ पहुँची ! अब दिल्ली दूर नहीं, ज़रा भी दूर नहीं ! मेघधनुष के रंगों से भरी भरी इन आँखों को तनिक उठाओ, हाथ ऊँचा उठाओ, बस इनसे तनिक ऊँची और दूर ! सूर्यप्रभा की सात-सात किरणों से रँगी हुई दिल्ली यह रही !!

—ऐसे अनेक विचारों के कारण अनवरी बेगम को अपनी सेज पर नींद नहीं आई । वह बैठ गई । सामने चारपाई पर मलिक अब्राज़ी मज़े से सो रहा था । बीच में रोशन पड़ी थी ।

रोशन ! सुलतान फिरोज़ का रंगीन खिलौना !! अनवरी बेगम की शतरंज का एक प्यादा ! सुलतान फिरोज़ इस छोकरी के पीछे दीवाना बन गया !...भला, दीवाना हो जाने-जैसा इस लौंडिया में रखा क्या है ?....फिर भी फिरोज़ अगर इसी बेकार खिलौने से राज़ी रह सकता है तो........फिरोज़ भी कितना मूर्ख है ?.......बाज़ पंछी की तरह, ऊँची नज़र उठा सकता है,

मगर वह तो गिद्ध की तरह नीचे की ओर देखता है! ....फिर भी दिल्ली के सुलतान को शोभा दे, ऐसा व्यवहार......दिल्ली......

छोटे से खेमे की बंद हवा में अनवरी को साँस घुटती-सी लगी। दोनों चारपाइयों के चारों पायों से रोशन के हाथ-पैर मज़बूती से बाँधे गए थे। अनवरी ने अत्यंत कठोरतापूर्वक रोशन के पैर-पर अपना पैर रखा और खड़ी हो गई।

कष्ट की काली चीख रोशन के कंठ से निकली। उसने उठने का प्रयत्न किया पर उठ न सकी, चारपाइयाँ खिंचकर रह गईं। उसकी चीख और चारपाई की हलचल से मलिक भी जाग गया।

"अरी, क्या है? खामोश क्यों नहीं रहती? सोने नहीं देती।" और उसने हाथ के एक झपाटे से रोशन के गाल पर थप्पड़ मारा। मौन-मौन वेदना को सहकर, रोशन मलिक अबूराजी को देखती रह गई!

मूक वेदनापूर्ण उस दृष्टि ने मलिक अबूराजी की निद्रा को तनिक त्रस्त कर दिया—

"अगर ऐसे झंझट सीने पर सवार रहें, तो नींद कैसे आ सकती है? और अगर पूरा आराम न मिले तो सिपाही बच्चा क्या झख मारेगा?"

इस तरह चिढ़कर बड़बड़ाता हुआ, आँखें मलता हुआ, वह अपने बिछौने पर बैठ गया! खेमे से बाहर, दीपक के प्रकाश के उपरान्त, उसे घना अंधकार दिखाई दिया।

"अरे, अभी तो आधी रात है और नींद उड़ गई! इसे यहाँ बाँध कर क्यों रखा है?"

"छूट कर भाग न जाए, इसलिए।"

"इस ज़रा-सी बात के लिए? दूसरी कोई जगह नहीं? इसे उन गुन्डों के साथ बाँधकर लटका देना था! कम-से-कम मेरी नींद तो खराब न होती।"

"मलिक मियाँ! यह लौंडिया तो, मदुरा के सुलतान को हाथों-हाथ सौंपने जैसी है।"

"यह बात है ! तो देखना चाहिए कि यह छोकरी सुलतान की पसंदगी के काबिल है या नहीं। बेकार नींद तो उड़ ही गई है।" मलिक उठा और वह रोशन की रस्सियाँ खोलने लगा।

"अरे, क्या कर रहे हो ?"

"इसके फंदे खोलकर, ज़रा इसकी जाँच करना चाहता हूँ। देखता हूँ, ठेठ दिल्ली तक जिसके रँगीलेपन की धूम है, उस सुलतान फिरोज़ का चुनाव कैसा है ?"

"अगर यह भाग गई ?"

"आपने भी बेग़म साहिबा !...इस मलिक को अभी नहीं पहचाना। एक बार मेरे हाथ में पड़ी हुई चिड़िया, वापस नहीं उड़ सकती। एक बार मेरे फंदे में फँसा हुआ आदमी, फिर चाहे वह जिन्द हो, परी या हूर हो, शैतान या शरीफ हो, भागकर नहीं जा सकता। विश्वास न हो तो पूछ लेना दौलताबाद के सूबेदार से।"

मलिक अबूराजी ने रोशन के हाथ-पैरों की रस्सियाँ खोल दीं—

"बेगम साहिबा, सिपाही की ज़िंदगी रात-दिन मौत से खेलती रहती है। आखिर उसे कुछ राहत और रौनक भी चाहिए ? रोशन को मुक्त कर उसने हुक्म दिया—

"चल री बाँदी, उठ कर खड़ी हो जा !"

रोशन के हाथ-पैर अकड़ गए थे। इससे वह खड़ी न हो सकती थी, होना भी नहीं चाहती थी, चाहे जो हो ! वह सिर्फ़ मलिक अबूराजी को देखती रही, खड़ी न हुई।

अनवरी बेगम को देखकर मलिक अबूराजी ने कठोर परिहास किया—"माफ कीजिए बेगम साहिबा,....मगर औरत की जात,...यों सीधी नहीं चलती।"

और सिर के केश पकड़ कर, मलिक ने रोशन को ऊपर उठा दिया। वह चिल्लाई।

"अब बाद में चिल्लाना !" अनवरी बेगम ने उसकी बगल में एक ठोकर

मारी—"मलिक साहब कहते हैं, उस तरह खड़ी हो जा! या फिर एक ठोकर खाना चाहती है ?"

मलिक ने केश पकड़कर रोशन की बगल में पीछे से चिकौटी काटी। उसकी बड़ी-सी हथेली की लम्बाई में रोशन की कमर आ गई। उसने अपने अँगूठे और अपनी उँगलियों से उसे ज़ोर से जकड़ा। साँचे की पुतली जिस तरह खड़ी हो जाती है, उस तरह, पीड़ा की पुकार के साथ रोशन खड़ी हो गई।

हाँ, अब आई अपनी राह पर! ठीक है, बाल तो लम्बे और काले हैं। चमड़ी भी मुलायम है। लेकिन बेगम साहिबा, इसका रंग ज़रा साँवला है। आपके रंग की बराबरी में इसका रंग साँवला ही कहा जाएगा।"

फिर उसने रोशन की कलाई खींचकर, उसे अपनी ओर खींच लिया। ज़ोर से उसके गालों का बोसा लिया। उसकी चोली में अपनी उँगलियाँ घुसेड़कर, उसे आगे से फाड़ दिया। फिर एक जौहरी की नज़र से उसने कहा—

"वैसे तो अच्छी है! लेकिन सुलतान ने इसे पसंद किया है तो अपना नखरा दिखाकर, यह क्यों भाग रही है? इस बलवाखोर मुबारक के हाथ में यह कैसे पड़ गई ?"

"यह एक लम्बा किस्सा है।"

"रात लम्बी है। नींद उड़ गई है।" मलिक ने कहा और रोशन की कमर पर फिरता हुआ हाथ मोड़कर उसे अपनी गोद में खींच लिया। फिर बेगम से बोला—"मुझे यह किस्सा सुनाइए।"

रोशन ने छूटने का प्रयत्न किया, मलिक ने दूसरे हाथ से उसके लम्बे बाल थाम कर उसे अपनी जकड़ में पकड़ रखा। बोला—

"चुप, बैठी रह, गड़बड़ मत कर! किस्सा सुनने दे।.......बेगम साहिबा एक लहमे के लिए भी, मगर आपका ओहदा हड़प जाने वाली यह लौंडिया है कौन ?"

"मलिक मियाँ!" अनवरी बेगम ने हँसकर जवाब दिया—"मुझे इससे

कोई ईर्ष्या नहीं है। यह तो चलता ही रहता है। मुझे इसका रंजोग़म नहीं है। और अगर ऐसे-ऐसे खिलौनों से सुलतान राज़ी रहता हो, तो उसे यों राज़ी रखने में, मुझे कोई उज्र नहीं। मेरा शौक, इश्क या हवस कहिए—सुलतान का पहलू नहीं, उसकी सल्तनत की हुकूमत और उसकी सलामती है। इसलिए इन मामलों में मेरा कोई उज्र नहीं उठता और न मुझे इनसे कोई तकलीफ ही होती है !"

"सच है बेगम साहिबा, सुलताना को ऐसा ही होना चाहिए। मुझे तो विस्मय है कि यह लौंडिया अपनी बुलंद किस्मत को क्योंकर ठुकरा रही है ? जहाँ इसे खुश होकर जाना चाहिए, वहाँ यह कसकर ले जाई जा रही है ?"

"मलिक साहब, यह लौंडिया बाँदी नहीं है और न बाज़ार से खरीदी हुई बाँदी ही है।......किसी अमीर से जूए में जीती गई औरत भी नहीं है। यह तो है—मदुरा के सुलतानों के काज़ी उमरावखान की दुख़्तर !"

"काज़ी साहब की दुख़्तर ?......मदुरा के काज़ी साहब की ?......तोबा, तोबा !" मलिक ने रोशन के बालों को छोड़ दिया। अब तो कमर पर उसकी पकड़ भी केवल नाममात्र की रह गई।

"तोबा !" उसने फिर से कहा और पूछा—"फिर ?"

"हसन सौदागर का बेटा, यह बलवाखोर मुबारक जिसे आपने गिरफ्तार किया है और इंसाफ के लिए जिसे मदुरा ले जा रहे हैं, इसी मगरूर के डाकू मुबारक से इस लौंडिया की मँगनी बहुत पहले हो चुकी है।"

"फिर ?"

"लेकिन, अब बलवाखोर मुबारक और इस छोकरी की मँगनी टूट चुकी है !"

मलिक ने सिर हिलाकर कहा—"मैं नहीं समझा !"

"मदुरा पर पिंडारियों ने हमला किया। इकबाल ने उसे लूटा और वहाँ कई मलिक और अमीर मारे गए।"

"जानता हूँ !"

"और उस मारकाट में इस लौंडिया का बाप काज़ी उमरख़ खान भी मारा गया।"

"लूट और जंग की क्या बात! उन में तो अच्छे-अच्छे मारे जाते हैं!"

"इस लौंडिया के दिल में एक भूत समा गया—मुबारक ही ने मेरे बाप को मारा है। इसलिए अब उससे मेरी नहीं बनेगी। और फिरोज़ के मन में यह समाया है कि रोशन के बिना उसका इश्क अधूरा है। दोनों दीवाने हैं!"

मलिक अबूराज़ी ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फिराया। अनवरी बेगम की ओर देखा, रोशन की ओर देखा।

मलिक की आँखों में अजब एक लहर उभरी!

"तो मुझे यह लौंडिया, सौगात की शक्ल में, सुलतान के सामने पेश करनी होगी?"

"हाँ!"

"मदुरा के सुलतान हमारे सूबेदार के दामाद हैं और मैं सूबेदार का सिपाही हूँ। अगर सूबेदार का सिपाही सुलतान जैसे दामाद के लिए, कोई सौगात ले जाता है, तो उसे यह जाँच तो जरूर करनी चाहिए कि सौगात सुलतान के लायक है या नहीं? चीज़ नायाब है या बेकार है?"

"हाँ ज़रूर!" अनवरी बेगम ने कहा—"आप इसकी परख कर सकते हैं, कौन रोकता है?"

"आप की मंजूरी है?"

"मैंने तो कह दिया—मेरे मन में किसी तरह की जलन नहीं और यों तो सुलतान फिरोज भी ईर्ष्यालु नहीं है, कि उसे आपकी जाँच और परख के ख़िलाफ उज्र हो!"

रोशन की आँखें फटी रह गईं।

चीख जैसे स्वर में उसने अनवरी बेगम से पूछा—"तुम...तुम आदमी हो या शैतान? तुम्हें शर्म भी नहीं आती?"

"लड़की, तू नादान है......और एक बेसिरपैर और बेवकूफी से भरे हुए वहम के पीछे अपनी ज़िंदगी तबाह कर रही है! मैं सुलताना हूँ! मैं

सुलतान को भी खुश रखना चाहती हूँ, सिर्फ अपने शौहर को ही नहीं। मैं राज्य करना चाहती हूँ, समझी? जो हुकूमत करना चाहता है उसे शर्म नहीं रखनी चाहिए।"

फिर अनवरी बेगम ने मलिक की तरफ देखकर कहा--"मलिक साहब, अभी रात लम्बी है और नींद उड़ गई है। इसलिए जो कुछ करना हो, कर लीजिए। यह काजी की लड़की है, फिर भला आपका काज़ीपन इसे क्योंकर नापसंद होने लगा?"

इतना कहकर अनवरी बेगम ने रोशन को मलिक की पकड़ में और धकेल दिया।

रोशन ज़ोर से चिल्लाई।

मलिक और अनवरी बेगम इस चीख को सुनकर खिलखिलाए, लेकिन यह खिलखिलाहट उनके कंठ में ही अवरुद्ध रह गई।

अचानक मलिक की गर्दन में एक फन्दा पड़ा और किसी ने उसे खींचा। उसने चौंककर पीछे देखा और वह डर गया—नंगी कटार लेकर मुबारक खड़ा था। इसके पहले कि वह कुछ कहे, किसी को पुकारे, उसकी गर्दन का फंदा और कस गया।

बेगम फटी हुई आँखों से देखती रही। तभी, एक बहुत ज़हरीली और अनवरी का लहू ठंडा कर देनेवाली आवाज पीछे से सुनाई दी—

आवाज यह मंज़ूरशाह की थी—"क्यों सुलताना साहिबा?"

और मंज़ूरशाह ने अनवरी बेगम की बगल में ज़ोर की लात मारी। एक चीत्कार के साथ अनवरी बेगम दूर उड़ गई।

उसके साथ ही उछलकर, मंज़ूरशाह उसके सिर पर गिरा और उसने बहुत ज़ोर का एक घूँसा अनवरी बेगम के मुँह पर मारा। लहू की धाराएँ बहाते मुख से अनवरी बेगम के दाँत बाहर निकल पड़े।

"रोशन! अपने कपड़े ठीक कर लो!" मुबारक ने कहा।

और शोरगुल सुनकर, दौड़कर आनेवाले दौलताबादी जाँनिसारों के पैर मँझरात में गूँजने लगे!

२५ ★ मदुरा का मार्ग

दौलताबादी जाँनिसारों ने खेमे में विचित्र दृश्य देखा—उनके नायक मलिक अबूराज़ी को बाँध लिया गया था। उसके हाथ उसकी पीठ से कसकर बाँधे गए थे। ज़मीन पर पड़े हुए मलिक की कमर पर अपना एक पैर रखकर और उसके गले पर अपनी तलवार की नोक छुआए मुबारक खड़ा था।

अनवरी बेगम के हाथ-पैरों को खींचकर चारपाई के पैरों से बाँध दिया गया था। और उसके मुँह पर अपना पैर धरकर, नंगी तलवार लिए मंज़ूरशाह खड़ा था :

"खबरदार!" मुबारक ने कहा—"खबरदार, अगर एक कदम भी आगे बढ़े तो तुम्हारे इस सरदार को पलभर में खत्म कर दूँगा। यह मत भूलना कि यह तुम्हारे सूबा का दामाद है!"

मलिक अबूराज़ी की हालत विकट थी। और मुबारक का दिखावा भयंकर और हठीला था। और अपने सरदार के कत्ल की जिम्मेदारी लेने के लिए कोई जाँनिसार तैयार न था, क्योंकि उच्चाधिकारियों की हत्या के कारणों की सूबेदार और सुलतान बड़ी खोज और जाँच कराते हैं। उनके कई रिस्तेदार होते हैं और उन्हें खुश रखने के लिए, सूबेदारों की नज़र में पाँच-दस जाँनिसारों की जान की कोई कीमत नहीं होती।

शतरंज का दाँव लगा था। जाँनिसार स्तब्ध खड़े थे! बेचारे क्या

करते ? एक भी पाँसा चलने पर पूरा-पूरा खतरा था। मुबारक कहने लगा—"दौलताबादी जाँनिसारो! मेरी बात सुनो। मैं एक ऐसा आदमी हूँ, जो दो-दो बार मौत के पंजे से निकल कर आया है। मैं एक बार नहीं, दो-दो बार कब्र से वापस आया हूँ। मुझे मौत का कोई खौफ नहीं है। फौज का मुझे कोई डर नहीं है। सुलतानों और सूबेदारों का मुझे अंदेशा नहीं है। अगर तुम में से एक भी आदमी एक कदम भी आगे या पीछे बढ़ा, एक भी आदमी ने अपना हथियार तनिक भी हिलाया, तो याद रखना, जिस तरह कसाई बकरे को काटता है, उसी तरह मैं तुम्हारे इस मलिक को काट डालूंगा।"

"और मेरी भी सुन लो, मेरे भाइयो! एक तो मैं सैयद हूँ। इसलिए मुझ पर हाथ उठाने से पहले ज़रा सोच लेना। दूसरे, मैं एक दगाबाज़ औरत से ठगा हुआ और उसकी धोखेबाज़ी का शिकार हूँ, इसलिए मुझे भी मौत का डर नहीं है, लेकिन यह औरत, यह जो यहाँ नीचे गिरी हुई है, जिसके तुम मेहमान बननेवाले हो, यह मदुरा के सुलतान की सुलताना है और इसे तलवार से काटते हुए मुझे कोई रोक न सकेगा, अगर तुम अपनी जगह खड़े न रहे!"

"सुनो, अपने अपने हथियार नीचे रख दो!" मुबारक ने कहा।

किसी को कुछ न सूझा। और कोई कुछ करे, तो कहीं उसके पहले ही यह पागल आदमी मलिक का कत्ल करने में देर न लगाएगा!

एक-एक कर हथियार नीचे रख दिए गए।

"सुनो, तुम सबसे कहा गया है कि मैं बलवाखोर पिंडारी हूँ। लेकिन मेरे हमदीन होते हुए, एक हमदीन सुलतान से मुझे क्योंकर लड़ना पड़ा? यह तो मानो, या समझो कि आज जो मेरी हालत है, कल तुम्हारी होने वाली है! आज मैं बाग़ी हूँ, कल तुम बागी बनोगे। चाहे कोई हमदीन हो या काफिर हो, उसे शैतानों की हुकूमत में बागी बनने के सिवाय कोई चारा नहीं, उसे किसी दूसरी तरह से इंसाफ नहीं मिलता।

"सुनो, मैं तुम्हारे इस मलिक को कत्ल नहीं करूँगा। यह मेरी मर्जी नहीं है। फिर अगर कत्ल करना पड़ा, तो तुम्हारे गुनाह के कारण।

"दो सौ सालों से तुर्क यहाँ रहते हैं, इसलिए अब हमदीन या गैरदीन का भेद देखना उचित नहीं। आज मेरा और तुम्हारा वतन एक ही है। अब मेरा और तुम्हारा वतन दूसरा नहीं। अब इस वतन के रहनेवाले ही तुम्हारे पड़ोसी हैं, दूसरा कोई नहीं। जब कभी तुम्हारी मदद के लिए कोई आएगा, तो ये ही आएँगे, दूसरा कोई नहीं आएगा। जमाना गुज़र गया—तुमने तातार, समरकंद और बुखारा को अपना वतन माना था। और अपने मजहब के बन्दों को तुमने हमदीन माना है। आज तुम्हारे वही हमदीन, उत्तरी हिंदुस्तान में तुम्हारे ही हमदीनों का कत्लेआम कर रहे हैं और उन्हें लूट रहे हैं। मुग़ल शाह तैमूर की फौज़ तो तुम्हारे माने हुए वतन की फौज है, है न ? वह तो तुम्हारा हमदीन ही है ? जाकर ज़रा देखो, उत्तरी हिंद में—तैमूर तुम्हारे ही बिरादरों और तुम्हारे जैसे ही सूबेदारों और जाँनिसारों की खोपड़ियों के मीनार चुन रहा है।

"इसलिए अब तुम हमदीनों और जुद्दीनों के भेद भुला दो। इस बात को भी भूल जाओ कि हमदीन तुम्हारे दोस्त और जुद्दीन तुम्हारे दुश्मन हैं ! इस बात को सूबेदार और सुलतान अमीर और मलिक, तुम्हें भूलने नहीं देंगे, लेकिन तुम भूल जाओ ! तुम्हीं देखो, तुम्हारे दौलताबाद में, तुम्हारे ही गुजरात में, तुम्हारे ही मालवा में, आज कौन किससे लड़ रहा है ? जुद्दीन या हमदीन ?

"जाँनिसारो, सुल्तानों और सूबेदारों के जुल्म इसलिए सस्ते हैं कि तुमने अपनी जानें सस्ते में बेच दी हैं। अपने ही दौलताबाद में तुमने देखा है ? दिल्ली का सुलतान अपने आपको तुम्हारी जान का मालिक मानता है, तुम्हारे ईमान का मालिक बनता है। दौलताबाद में उसके महल के चौक में हर रोज दस से बारह आदमी हाथी के पैरों के नीचे कुचल दिए जाते हैं। उसके महल के चौक में रोज़ रोज़ नए खून से कीचड़ बना रहता है। कौन हैं ये कत्ल होनेवाले ? उन्होंने क्या मांगा है ? वे तुम्हारे हमदीन हैं और उन्होंने केवल इंसाफ की माँग की है। इंसाफ के सिवाय कोई दूसरा उनका सवाल न था और हाथी के पैरों की मौत के सिवाय दूसरा कोई, उनके लिए जवाब न था।"

मुबारक कुछ देर चुप रहा। उसकी चपल आँखें घबराए हुए जाँनिसारों को कनखियों से देखती रहीं। उसने बात आगे बढ़ाई—

"सुनो, मैंने अपनी ज़िंदगी में मदुरा के सुलतान के सिवाय किसी दूसरे को अपना दुश्मन नहीं माना। और क्योंकर उसे दुश्मन मानता हूँ, यह भी सुन लो, मैंने पूरी वफादारी से सुलतान फ़िरोज की नौकरी की है। मैं सौदागर का बेटा हूँ, फिर भी तुम जैसा जानिसार बना। किसलिए? उसने अन्याय को दूर करने का वचन मुझे दिया था। कौन-सा था अन्याय? मदुरा के सुलतानों ने अपने जाँनिसारों को जागीरें दी थीं। उन जागीरों को छीनकर, दूसरे जाँनिसारों को खुश रखा गया। फिर दूसरे से छीनकर तीसरे को दे दी गई। मदुरा के सुलतान ने कुरुबों को बुलाया था और खेती करने के लिए उन्हें ज़मीनें दी थीं। सुलतान ने उनकी ज़मीनें छीनकर, दूसरे लोगों को दे दीं। फिर उनसे भी छीनकर तीसरे को दे दीं। अब उनके बाल-बच्चे भूखों मर रहे हैं। जब उन्होंने इंसाफ माँगा, तो सुलतान ने सेना भेज दी। उस सेना में तुम जैसे जाँनिसार ही थे और उन्हें भी जमीन और जागीरें मिली थीं। कौन जाने अब उनकी जागीरें छीनकर किसे दी जाएँगी?

"हमदीन और गैरदीन ख़यालों को कौन पैदा करता है? हम लोगों को, मुझे और तुम्हें तो अपने अपने धंधे से ही फ़ुर्सत नहीं और हमारा काम सभी तरह के लोगों से पड़ता है। दीन के नाम पर तुम्हारे हाथ में हथियार देनेवाले सूबेदार और सुलतान तुम्हारी बीमारी के वक्त तुम्हारे हाल-चाल पूछने के लिए नहीं आते। तुम्हारे घर की शादी या गमी-मातम में शामिल नहीं होते। आधी रात में तुम्हारी बीवी-बच्चों की पुकार सुनकर कोई सूबा या मालिक दौड़कर नहीं आता, पड़ोस में अगर काफ़िर रहते हैं, तो वे ही मदद के लिए दौड़कर आते हैं, और आएँगे।"

"तुम्हारे सामने हथियार हिलाने या कदम भर आगे पीछे होने की तुम्हारी इजाजत नहीं है, मगर, एक सवाल पूछने की इजाजत मिलेगी?" एक जानिसार ने पूछा।

"पूछो !"

"तो, क्या आप यह चाहते हैं कि विजयनगर की ज़ुद्दीन रियासत आगे बढ़े ? आज वह मदुरा पर काबिज हो, कल दौलताबाद को जीत ले और परसों दिल्ली में अपना झंडा गाड़े, तब भी क्या किसी जाँनिसार को अपना हाथ ऊँचा नहीं उठाना चाहिए ? मुझे तो आपकी बात में यही मतलब मालूम होता है। इस वक्त आपके हाथ बड़े हैं और हम मुश्किल में हैं, लेकिन सच तो यह है कि आपकी बात सुनना भी गुनाह है।"

"सुनो, बिरादर जाँनिसारो ! तुर्कों को यहाँ आए, दो सौ साल गुज़र गए और अब उनका यही वतन है, और दूसरा कोई वतन नहीं है। अगर उन्हें यहाँ रहना है, तो उन्हें दोनों कौमों पर नजर रखनी पड़ेगी। जब तक दोनों को मजहबी आज़ादी नहीं मिलेगी, तब तक दोनों में से किसी के अरमान पूरे नहीं होंगे। हम इन्हीं बातों को नहीं समझते और जब तक हमारे जैसे जाँनिसार मिलते रहेंगे, तब तक सूबेदार और सुलतान भी नहीं समझेंगे। विजयनगर इस चीज़ को समझता है। इसीलिए आज उसका जय-जयकार हो रहा है। किसलिए तुम्हारे सुलतान और सूबेदार आपस में झगड़ रहे हैं ? किसलिए ये एक दूसरे को कत्ल कर रहे हैं ? और इस सूरत के खिलाफ विजयनगर के नायक और राजा आपकी हुकूमत में खुद ही मुल्क को लौटा रहे हैं ? क्या तुमने कभी यह सवाल पूछा है ? जब तक तुम अपने दिल और दिमाग पर ज़ोर नहीं दोगे, तब तक तुम्हें इस सवाल का जवाब भी नहीं मिलेगा। विजयनगर में हमदीन या गैरदीन का कोई फर्क नहीं है। वहाँ गरीब से गरीब कुन्बा को न्याय मिलता है, और उसका जागीरदार या नायक न्याय के कार्य में हस्तक्षेप नहीं कर सकता।... विजयनगर में सबको न्याय मिले, इसलिए, रायरेखा का प्रबंध है। और इस रेखा के कानून को राजा-महाराजा भी मानते हैं। वे भी इसमें बँधे हुए हैं। विजयनगर में किसी की ज़मीन—फिर चाहे वह हमदीन हों या गैरदीन, कदापि छीनी नहीं जाती। और छीनकर, दूसरों को कभी नहीं दी जाती। मदुरा में विजयनगर की फतह ज़रूर होगी; क्योंकि यह फतह किसी राजा की, किसी सुलतान पर फ़तहयाबी नहीं है, किसी फौज की दूसरी फौज पर

फतह नहीं है—यह तो खास खुदाई फरमान के मुताबिक, गैरइंसाफ पर इंसाफ की, अन्याय पर न्याय की, सिफारिश पर प्रबंध की और हैवानियत पर इंसानियत की फतह है !"

सब सुनते रहे।

मुबारक कहता रहा—"मैंने आपसे अपनी बात कह दी। जैसा कि मैंने कहा, मैं सिपाही का बेटा नहीं हूँ, सिर्फ जग और फतह में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं है। मैं तो सौदागर का बेटा हूँ। मैं सल्तनत, उसे कहूँगा, जहाँ इंसान, इंसान की तरह जीता हो, इंसानियत जहाँ पर न गई हो। आदमी जहाँ इन्सानियत से जी सके, और इसके लिये जहाँ पूर्ण प्रबन्ध हो, सल्तनत मैं उसी को कहूँगा, आपकी बात आप जानें। मैंने तो यह बता दिया कि मुझे बगावत क्यों करनी पड़ी। अब तुम्हें जहाँ जाना हो, वहां जा सकते हो। मैं मदुरा जाता हूँ। तुम उतनी दूर, रास्ता छोड़कर हट जाओ, जितनी दूर रहने पर, तुम्हारे जाँनिसार मुझे परेशान न करें! तब मैं तुम्हारे मलिक को छोड़ दूँगा और तब तक वह मेरा कैदी रहेगा।"

"अगर हम इन्हें कैदी की हालत में, छोड़कर चले जाएं तो हमें फांसी दे दी जाएगी। अगर हम इन्हें छुड़ाने की कोशिश करें तो ये मारे जाएंगे और फिर इनके पीछे पीछे हमारी भी मौत आएगी। इसलिए जरा सोचिए, अगर हम आपके साथ मदुरा चल सकें......"

"जरूर चलो, मुझे खुशी होगी।"

"अगर विजयनगरवाले ने हमें परेशान किया तो...?"

"इसका जिम्मा मेरा है।"

मंजूरशाह ने कहा—"दोस्तो, आपकी बातें सुनकर मुझे खुशी हुई है। अब मेरी एक बात सुनकर आपको खुशी होनी चाहिए। शैतान को भी शरमानेवाली और उसे भी दो नई शैतानियाँ सिखा देने में समर्थ, ऐसी इस औरत—अनवरी बेगम का अब क्या किया जाय ?"

"आप जो ठीक समझें करें।"

और सभी जाँनिसार मुबारक को कोर्निश बजाकर वहाँ से चले गये।

"मुबारक मियाँ !" मंजूरशाह ने कहा—"अब आप भी बाहर जाइये ।"

"लेकिन...।"

"खबरदार, तुमने मुझ पर उपकार किया है और मैंने भी तुम पर उपकार किया है। अगर इस वक्त तुम बीच में पड़े तो हम दोनों में से एक की जान चली जाएगी। और मैं तो तुम्हारे साथ मदुरा, देखने के लिए, चलना चाहता हूँ....मेहरबानी करके इस वक्त बाहर चले जाइए।"

मुबारक बाहर निकल गया।

कुछ देर बाद डेरे में से अनवरी बेगम की भयंकर चीखें और चीखें सुनाई दीं।

मुबारक इन्हें तब तक सुनता रहा, जब तक वे सुनाई दीं। इसके बाद वह भीतर गया।

भीतर मलिक अबूराजी बेहोश पड़ा था। एक कोने में रोशन घबराई-सी खड़ी थी।

और मंजूरशाह पागल की तरह, मतवाला होकर अनवरी बेमम को एक कोड़े से पीट रहा था।

मिट्टी के ढेर-सी वह जमीन पर पड़ी हुई थी और उसके कण्ठ में से आहें और सिसकियाँ निकल रही थीं। उसके मुलायम शरीर पर लाल नीली लकीरें पड़ गई थीं।

"सब्र मंजूरशाह !"

"हाँ, अब मुझे चैन मिला। फिर से किसी दूसरे से दगाबाजी करने के पहले यह औरत विचार करेगी।"

और कोड़ा फेंककर मंजूरशाह बाहर निकल गया।

और अनवरी बेगम की नंगी देह पर एक नजर भी डाले बिना, मुबारक भी वहाँ से चला गया।

रोशन उसके पीछे दौड़ी।

"तुम मेरा क्या करना चाहते हो ? क्या मुझे भी इन्हीं कोड़ों की सजा मिलेगी ?" त्रस्तमुख उसने पूछा।

"मेरे लिए इतना ही काफी है कि भविष्य में तुम्हें मेरी निर्दोषिता का विश्वास हो जाए और मैं बेगुनाह हूँ, इस पर तुम्हें यकीन आ जाए। इससे ज्यादा तुम्हें मिले, यह मैं नहीं चाहता।" मुबारक ने कहा।

"मुझे...मुझे मदुरा पहुँचा देंगे ?"

"हाँ ! इस वक्त अनवरी बेगम बेईमानी और दगाबाजी से परेशान है, इसलिए शायद वह तुम्हें सच सच सब कह दे ! अगर तुम मदुरा जाना चाहोगी, तो मैं तुम्हें वहाँ पहुँचा दूँगा। अगर सुलतान फिरोज की शरण में जाना चाहोगी तो मैं तुम्हें वहाँ भी पहुँचा दूँगा। इससे अधिक किसी औरत की मर्जी के मुताबिक कुछ करने की फुरसत मुझे इस वक्त नहीं है। मेरे सामने अभी कई जरूरी सवाल खड़े हुए हैं।"

और बेहोश मलिक अबूराजी को अपने हाथ में उठाकर, मुबारक निकल गया।

२६ ★ मदुरा-विजय

सुलतान फिरोज पिंजरे में बंद चीते की तरह अपने महल में चक्कर काट रहा था। इस समय सल्तनत के ताज के काँटे उसके माथे में बुरी तरह चुभ रहे थे।

इस वक्त सुलतान के दिमाग में एक ही चीज काले-काले धूंए की तरह घहरा रही थी, ज्वालामुखी की भाँति फट रही थी, दावानल की तरह सुलग रही थी !

उसके दादा जलालुद्दीन एहसानशाह ने सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी, जो सिकन्दरसानी कहलाया था, के हाथ से मदुरा की सल्तनत को इस तरह छीन लिया था, जिस तरह कोई शेर के मुँह से शिकार छीन ले !

जलालुद्दीन एहसान ने इस सल्तनत की रक्षा, कलियुग के कालयवन के समान मलिक काफूर के विरुद्ध सिर उठाकर की थी। उसने इस सल्तनत का संगठन, मदुरा के पाण्ड्य नायकों से लड़कर किया था। जुद्दीनों के शंकर के अवतार के समान मान्य दादैया-सोमैया और उनके गरुड़ों के सामने जरा भी न झुककर उन्होंने मदुरा के तख्त को सलामत रखा था। उन्होंने सिंहल-द्वीप के यानी झील के दामिलों के देखते—सेतुबन्ध रामेश्वर के सागर तट पर नमाज पढ़ी थी !

और आज वही सल्तनत जिसे शहीदों की दुआएँ मिली थीं, जिस पर

खुदा का रहमकदम था। और जिसके आगे सिकन्दरसानी, कलियुग के कालयवन और शंकर के अवतारों के आक्रमण भी असफल हुए थे !

आज उसी सल्तनत को एक बिरहमन और एक गड़रिया मिलकर थरथरा रहे थे।

सुलतान फिरोज ने इस सल्तनत के महत्त्वपूर्ण स्थलों पर विचार किया। कावेरी का एक मजबूत मोर्चा था। जिस तरह कोई भीम भुजंगिनी धन की रखवालिन हो, उस भाँति कावेरी नदी सल्तनत की उत्तरी सरहद का पहरा देती हुई बह रही थी—उसके वेगवन्त जल प्रवाह और वात्याचक्र, दो दो वर्षाओं में बार बार उठनेवाली बाढ़ें !......ऐसी कावेरी नदी को पार करनेवाले माई के लाल तो अभी दुनिया में पैदा नहीं हुए।

इस सल्तनत का दूसरा सुरक्षित क्षेत्र था शम्बूरराय का जंगली राज्य। धरती के उदर से उठकर ठेठ सागर के सपाट मैदानों पर उठी हुई, ऊँची ऊँची टेकरियों के प्राकृतिक दुर्गों की लम्बी माला, घने घने वन...इन सभी ने मिलकर पिछले हजार साल से इस वनवासी राज्य की निरंतर रक्षा की थी और कोई इसे हरा न सका था !

दक्खन में बड़े बड़े विकराल विजेता आए ! समर्थ योद्धागण आए ! प्रलय मचाती सेनाएँ आईं किन्तु फिर भी शम्बूरराय के पूर्वजों का सिर न झुका ! अरे, मलिक काफूर, होयसल, सोलंकी और सातकर्णी भी पीछे लौटने को बाध्य हो गए। यही राज्य मदुरा की एक बगल को रक्षित रख रहा था—इस ओर एक चिड़िया भी न बैठ सकती थी, आदमी का तो कहना ही क्या और ऐसी ही उसकी राजधानी टोंडाईगढ़, विगत सहस्र वर्षों में ऐसा कोई वीर या योद्धा पैदा न हुआ जो इस राज्य को जीतकर दिखाता !

इस सल्तनत का तीसरा मजबूत हिस्सा, मगरूर का पहाड़ी इलाका। मदुरा की विकट तहसील मगरूर। यह—पश्चिमी घाट और नीलगिरि की पर्वतमालाओं के मध्य में स्थित थी। इसकी पहाड़ियों को भेदकर, आज तक कोई आक्रान्ता आ न सका था !

दुर्भाग्यवश शम्बूरराय का वज्रगढ़ और ये सारे मोर्चे धूल की ढेर के समान ढेर हो गए ! मगरूर के पिण्डारियों ने मगरूर का नामोनिशान भी न रहने दिया। मंजूरशाह के दिवास्वप्नों ने सल्तनत के पेचों को ढीला कर दिया और मुबारक ने मगरूर के मोर्चे का उपयोग इस तरह किया कि सल्तनत की गर्दन में फाँसी का फन्दा पड़ गया !

टोंडाईगढ़ का पतन हुआ ! खुद शम्बूरराय युद्ध में मारा गया ! उसका राज्य मटियामेट हो गया। टोंडाईगढ़ में दुश्मनों की फौजें आ चुकी थीं और उसके दुर्गों पर विजयनगर के भगवा झण्डे फहरा रहे थे !

और यह घाव गहरा, गहरा और दरदीला था।

पराजय के पहले दौर में सुलतान ने शम्बूरराय के वज़ीरेआजम आदिल शाह असली को हाथी के पैरों तले कुचलवा दिया था। अरे, किसी दगेबाजी के बिना तो इस दुर्ग का पतन नहीं हो सकता। इसलिए सुलतान दगा और दगाबाजी के रहस्यों को समझने की कोशिश कर रहा था।

लेकिन उसके पास और ही खबरें आईं—शम्बूरगढ़ की विजय का मार्ग महामात्य माधव ने बताया था और कुमार कम्पनराय ने उसे जीता था।

सुलतान फिरोज का खयाल है, रामायण और महाभारत की नायक परम्परा कभी कभी इन काफिरों को बड़ी मदद पहुँचाती है। अगर उसका बस चले तो इन दोनों पोथियों को खाक में मिला दे और उनके पत्ते पत्ते को हमेशा के लिए मिटा दे !

ऋषियों को जब तपोभूमि की आवश्यकता थी, राम ने असुर वनों का नाश किया था—आग जलाकर। राजधानी पर नगर बसाने के लिए जगह की जरूरत पड़ने पर अर्जुन ने खाण्डव वन को साफ किया था—आग जलाकर !

और विजयनगर की सेना ने शम्बूरराय की रियासत के रमणीय और घने वनों को जला दिया। रात और दिन, थके या रुके बिना, इस सेना ने अग्निबाणों की अखंड वर्षा की और फिर तो पेड़-पौधे, शाखा-पत्ते और वन समस्त जल जलकर राख हो गए। इतना ही नहीं, अनेक शम्बूर, गौंड, बीदर और गैंडा इस ज्वाला में भस्म हो गए और इस तरह दावानल सुलगाकर

वनों को जलाकर विजयनगर की सेनाओं ने वन में एक जगह रुकी रुकी सी कावेरी को पार किया था।

इन सेनाओं ने काठ के कई दुर्गों को जला दिया था। टोंडाईगढ़ तो जल जलकर हनुमान् के लंकादहन की याद को ताजा कर रहा था।

फिर लड़ने के लिए कोई खड़ा न रहा। चारों ओर खुले मैदान थे। शम्बूरों के लिए ओट न रही, छिपने के लिए जगह न रही, कहीं से भी छिपकर वार-प्रहार करने का अवसर न रहा। उसके स्थान से दूर-दूर मयलापुर और पूर्वसागर तक दृष्टि जाती थी। दूर नैपाल द्वीप और उसके आसपास के द्वीप-समूह दृष्टिगोचर होते थे। टोंडाईगढ़ में अब सदियों पुराने मोटे पेड़ों के जले हुए वनों के सिवाय कुछ न रहा। टेकरियां नग्न हो गईं। घाट खुल गए। छिपी हुई पगडन्डियां नजर आने लगीं। कुमार कम्पनराय के हाथों शम्बूरराय युद्ध में मारा गया।

सुलतान फिरोज ने दाँत पीसकर होठ चबाया। एक ओर सल्तनत के विरुद्ध जीवन-मरण का युद्ध खड़ा था और दूसरी ओर आंतरिक कलह—सल्तनत के झगड़े, पिंडारियों के बखेड़े और प्रजा का असंतोष—इन सबने मिलकर मदुरा की सेना को अर्धपराजित कर दिया था। और अपनी यह फौज अंत तक अपने ही लिए लड़ेगी या नहीं, सुलतान यह भी नहीं कह सकता था!

अपने ऊँचे आवास पर खड़ा हुआ वह चारों ओर नज़रें फैलाकर देख रहा था। उसके सामने कावेरी नदी थी, जिसका एक पहलू तो सुलग चुका था और मगरूर का पहलू भयंकर रूप से खामोश और मौन था।

उसकी बेगम अनवरी बेगम मगरूर गई थी। उसने यह बीड़ा उठाया था कि अपनी सूझ-बूझ के अनुसार, चाहे जिस तरीके से उपाय खोज कर वह दौलताबादी कुमुक को मगरूर की पहाड़ियों से निकालकर, यहाँ तक सही-सलामत ले आएगी। क्या वह इस काम को पूरा कर सकेगी? सुलतान सोच में पड़ा था।

अगर दौलताबादी कुमुक वक्त पर पहुँच जाए तो उसकी फौज में नई ताज़गी और हिम्मत आ जाए।

मदुरा में कत्लेआम शुरू हो गया !

चारों ओर हाहाकार मच गया ! बालक और वृद्ध, स्त्री और पुरुष, ब्राह्मण और वणिक....कोई बच न सका !

नगर में भयंकर कोलाहल फैला था ।

जितने जुद्दीन-काफिर, सेना की चपेट से बच गए वे भागकर, श्रीरंगम् मंदिर में घुस गए । जितने घुस सके, उतने घुस गए !

चंद्रशेखर महाराज के मंदिर के द्वार पर, बाहर से कुल्हाड़े और फरसे बरसने लगे ।

अचानक एक पुकार उठी—

"दुश्मन आए ! दुश्मन आए !!...."

लगभग पांच सौ से अधिक नरनारियों और बालकों के कत्ल के बाद यह पुकार सुनकर, फौज़ के हाथ रुक गए । तब कई सिपाहियों को पश्चात्-बुद्धि का विचार आया—इस कत्ल के बाद, दुश्मनों से अब रहम की उम्मीद कैसे रखी जा सकती है ? और रहम की आशा न रहे तो क्या मुकाबला किया जा सकता है ?

अपने शाहीमहल की ऊँची छत पर खड़ा हुआ सुलतान फिरोज़ मगरूर के मार्ग को अपलक देख रहा था—अगर दौलताबादी कुमुक आ जाए,.... तो उसकी सेना को भी नया उत्साह मिल जाए ।

तब तो यह दुश्मन की फौज का मुकाबला कर सकती है...कुमुक की मदद आ पहुँचे,....कब आएगी ?....कब पहुँचेगी...?....सुलतान के मन में अपार व्यग्रता और बेचैनी थी !

नीचे से भारी शोर-गुल की आवाजें आ रही थीं । लेकिन इस शोर-गुल और इन आवाज़ों से उसका एक रोम मात्र भी विचलित न हुआ था ।

जुद्दीनों ने क्या कभी, कहीं विजय प्राप्त की है ? दो सौ वर्ष के इतिहास में क्या कभी जुद्दीनों ने तुरुष्कों को एक बार भी हराया है ? एक छोटी सी विजय भी कभी पाई है ? कभी यह सुना है ? कभी यह पढ़ा है ? यह तो उसे इतनी चिंता इसलिए है कि उसकी सेना आवश्यकतानुसार

व्यवस्थित नहीं है, किन्तु जब उसे खून की खुशबू आ जाएगी तब तो वह ...खूब लड़ेगी....

और जरा एक बार दौलताबादी कुमुक को पाने दीजिए....,

अचानक उसने एक, अपनी जिंदगी में जैसी कभी न सुनी, ऐसी, अत्यत भयकर हुंकार सुनी ! मानो यह हुंकार हजारों हुंकारों से भरी हुई थी। इस भयंकर हुंकार को सुनकर उसे क्षण भर में महसूस हो गया कि यह न तो किसी आदमी और न किसी पशु की ही है ! किसी गायक के जोरावर कंठ के फूंक से फट जानेवाली बाँसुरी के विद्रोही स्वर-सी यह हुंकार !

सुलतान ने उधर देखा जिधर से हुंकार का स्वर आया था और उसने उस क्षण जो कुछ देखा, उससे तत्क्षण उसका कलेजा बैठ गया, उसकी आँखें फट गईं, वह स्तब्ध खड़ा रह गया !

मगरूर के मोर्चे ने धोखा दिया, टौडाईगढ़ के मोर्चे ने धोखा दिया, तो फिर कावेरी नदी भी क्योंकर पीछे रह सकती है ? कावेरी ने भी मदुरा को धोखा दिया ! कावेरी ने भी रास्ता दे दिया ! अगर कावेरी ने रास्ता न दिया होता तो, यह क्योंकर सम्भव था ?

सुलतान ने देखा कि समस्त शरीर जिनका कीचड़ से सना हुआ है और जो सूर्य की प्रभा में चमकते हुए विशाल काले पहाड़ों-से प्रतीत हो रहे हैं, ऐसे एक हजार हाथी मदुरा के दुर्ग की ओर बढ़े चले आ रहे हैं !

फिरोज की आँखें फट गईं......

हाथी !....विजयनगर की सेना में हाथी हैं, जीलन से मँगाए हुए हाथी हैं...दरियाई राह से आए हुए हाथी हैं, तुंगभद्रा के तटवर्ती वनों में पले हुए हाथी हैं। इन हाथियों को युद्ध का प्रशिक्षण दिया गया है...यह सब सुलतान फिरोज ने सुना था और सुनकर, झूठ माना था !

लेकिन आज वही झूठ पहाड़ जैसा सत्य बनकर, आज उसके विरुद्ध, चढ़ा चला आ रहा था !

धड़िग....धड़िग...धड़िग...धड़िग...दुर्ग के द्वार टूटे...दीवारों से कूदकर सेना भीतर घुसने लगी।

यह फ़ौज...यह हाथी...ये घोड़े...इनके सामने...इनके सामने...

और फिरोज़ भाग खड़ा हुआ। महल की चार-चार सीढ़ियाँ फांदता हुआ भागा। पीछे-पीछे चिल्लाता हुआ उमर कोतवाल भागा!

धड़बड़ाट...तड़बड़ाट...दो घुड़सवार मदुरा छोड़कर भागे...भागे!

इधर विजयनगर की सेना ने मदुरा में प्रवेश किया। उधर सुलतान फिरोज़ और उमर कोतवाल भागे।

दोनों के घोड़े दुर्ग के बाहर भागे जा रहे थे। सामने उन्होंने दौलताबादी कुमुक को आते हुए, देखा! हज़ार घुड़सवार!...

"उमर...दौलताबाद..."

"जी, हुज़ूर...दौलताबाद...."

दोनों दौड़े...दौलताबादी कुमुक की तरफ, उसे चेतावनी देने के लिए कि कुमुक बहुत छोटी है और वक्त निकल जाने पर पहुँची है। अब तो सूबेदार का एक दामाद और दूसरा दामाद—दोनों सही सलामत दौलताबाद पहुंच जाएं, यही काफी है। बाद की बात बाद में!

"हुज़ूर!" उमर ने कहा—"बाकी तो सब ठीक है, लेकिन सूबेदार साहब पूछेंगे कि मेरी लड़की को वहीं छोड़ आए?"

"हाँ....!" फिरोज़ के मन में भी अंदेशा पैदा हुआ..."ससुर की ओट की तलाश और उसकी लड़की को भूल जाएं!"...

तब तक दौलताबादी कुमुक उनके चारों ओर छा गई।

सुलतान की आँखें फट गईं! उमर कोतवाल की आँखें भी फट गईं! दौलताबाद की इस कुमुक का नायक इस वक्त दूसरा और कोई नहीं, खुद मुबारक मियाँ ही था!

"आइए, आइए, आइए, मुबारक ने भयंकर स्वागत किया—"आइए, हमारा दायरा पूरा होने में, सिर्फ आप दोनों की ही कमी थी, वह भी पूरी हुई!"

कुमुक पंखे के आकार में फैल गई।

और सुलतान फिरोज़ और उमर कोतवाल ने अनवरी बेगम और मलिक को कैदियों की हालत में देखा!

"शुक्र खुदा का !" मुबारक ने कहा—"आज मेरा और तुम्हारा हिसाब चुकता हो जाएगा !" फिर बोला—

"उठाइए यह तलवार ! मेरे और तुम्हारे बीच में आज फैसला हो जाएगा !"

फिरोज़ हतप्रभ-सा देखता रहा !

"तुमने मुझ पर झूठे-आरोप लगाए। तुमने मुझसे विश्वासघात किया। खुदा से मेरी एक ही इल्तिजा थी कि एक दिन ऐसा भी आए, जब हम दोनों, मैं और तुम, समान जगह पर खड़े रहें और मैं तुमसे बदला ले सकूं ! आज मेरी वह माँग पूरी हुई। फिरोज़ मियाँ, उठाओ, तलवार ! हम बाकी रहा हिसाब पूरा कर लें !"

बावले-से फिरोज़ ने तलवार उठाई धीरे-धीरे !

धीरे-धीरे उसने म्यान से बाहर निकाली।

"उमर !" उसनें पुकारा। मानो उमर से निजी बात करना चाहता है।

उमर कोतवाल निकट आया। और सुलतान ने उमर पर वार किया—ठीक गरदन पर ! चक्कर खा कर उमर नीचे गिर पड़ा। फिरोज ने तलवार ज़मीन पर फेंक दी ! और अपने हाथ झटक दिए—

"मुबारक ! मेरे मन में तुम्हारे लिए हमेशा मान-सम्मान था ! लेकिन इस नापाक ने मुझे ग़लत राह पर लगा दिया ! इसी ने मुझे झूठमूठ कहा था कि तुमने काज़ी साहब को मारा है। इसके बहकाने पर ही मैं चिढ़ गया था ! बाकी मेरे दिल में तुम्हारे लिए कभी बुरा ख्याल नहीं आया। मैं जानता था कि तुम्हारा खानदान कई पीढ़ियों से वफादार रहा है।" —फिरोज़ जैसे एकदम बदल गया था !

मुबारक अवाक् होकर, यह बात सुनता रहा ! इतना जल्द यह बदल गया !

ज़मीन पर पड़े हुए उमर ने अपना हाथ लम्बाकर, ज़ोर से फिरोज़ का पैर खींचा। फिरोज़ नीचे गिर पड़ा। अपनी शेष समस्त शक्ति का उपयोग

कर उमर ने दोनों हाथों से फिरोज का गला दबाया, ज़ोर से, बहुत ज़ोर से !

"हम...दो...दोनों....एक बेगम के पति...एक पाप...के दो पापी... एक ही बेईमानी के दो करनेवाले....मैं अकेला कैसे जा सकता हूँ...फिरोज़ शैतान...जहन्नुम में जाने पर भी तुझे साथ लेकर जाऊँगा !...हाँ !"....

और उसने फिरोज़ का गला और ज़ोर से दबाया।

फिरोज़ को बचाने के लिए दौलताबादी कुमुक का एक आदमी आगे बढ़ा। मुबारक ने उसे दोनों हाथों के इशारे से रोक दिया।

वह देखता रहा !

कोड़े की मार-सी एक आवाज़ फिरोज़ की गर्दन से उठी—उसकी गर्दन टूट गई।

और उसका निष्प्राण देह उमर के शव की पकड़ में पड़ा रहा !

× × ×

महामात्य माधव ने श्रीरंगम् में श्रीरंगम् की प्रतिमा की पुनःस्थापना की और एक विज्ञप्ति प्रकाशित की—

"किसी भी व्यक्ति को उसके धर्म या आचार-विचार के कारण किसी प्रकार का कष्ट नहीं दिया जाएगा ! सताया नहीं जाएगा। किसी भी धर्म स्थान-देवधाम की पवित्र मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया जाएगा ! न्याय के आसन के सम्मुख सहवर्गी या विधर्मी का भेद नहीं रहेगा। लोगों को ज़मीन जायदाद-जागीर की मुद्राएँ दी जाएँगी और उनके सभी अधिकार नियत कर दिए जाएँगे। मदुरा विजयनगर साम्राज्य का अंग बनकर रहेगा। रायरेखा यहाँ अमल में लाई जाएगी।"

लोक-समूह विसर्जित हुआ।

मुबारक ने विदा ली। उसका घोड़ा तैयार खड़ा था।

वह रवाना होनेवाला था कि एक आदमी आया—

"मुबारक मियाँ !"

"कौन ? आप ?" मुबारक ने साश्चर्य पूछा—

"कुमार कम्पनराय, आप ?"

"कुमार कम्पन नहीं, नागरनायक। आपकी अन्तिम सेवा के लिए उपस्थित हुआ हूँ!"

"मेरी सेवा! आप? आप मेरा मज़ाक तो नहीं कर रहे हैं?"

"मज़ाक नहीं हकीकत है!" नगरनायक ने कहा—"देखिए......यह......!"

एक पालकी आई।

पालकी में रोशन बैठी थी।

"आओ मुबारक! आओ रोशनबानू!"

"मगर, कुमार साहिब!"......

"रोशन को सभी प्रमाण मिल गए हैं कि आप निर्दोष हैं। और बाकी के सबूत पाने के लिए आप दोनों की सारी ज़िन्दगी सामने है।.......मुबारक मियाँ, आप ऐसे ही नहीं जा सकेंगे। महामात्य जी आप दोनों को याद फरमा रहे हैं!"

"मुझे? हमें?"

"हाँ! अब मदुरा की सल्तनत का बंदोबस्त करना होगा—सो, यह काम अकेले तुम्हें सौंपा जाए? या तुम दोनों को संयुक्त रूप से? महामात्य जी जानना चाहते हैं।"

[समाप्त]